CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीदक्षिणामूर्तये नमः

शाण्डिल्य-विद्या

प्रवक्ता

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ

श्री १०८ स्वामी महेशानन्द गिरिजी

महाराज आचार्य महामण्डलेश्वर

प्रकाशक

श्रीदक्षिणामूर्ति मठ प्रकाशन

वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीदक्षिणामूर्तये नमः

श्रीदक्षिणामूर्तिसंस्कृतग्रन्थमाला–१२

शाण्डिल्य-विद्या

प्रवक्ता

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ

श्री १०८ स्वामी महेशानन्द गिरिजी

महाराज आचार्य महामण्डलेश्वर

प्रकाशक

श्रीदक्षिणामूर्ति मठ प्रकाशन

वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

-: प्रकाशक :-
श्रीदक्षिणामूर्ति मठ प्रकाशन
डी. ४९/९, मिश्रपोखरा
वाराणसी-२२१०१०
dakshinamurtimathaprakashan.org
dakshinamurtimath.com

❐

भगवत्पादाब्द : १२३०
विक्रमाब्द : २०७५
खीष्टाब्द : २०१८

❐

मूल्य : ₹ १००.०० (एक सौ रुपये मात्र)

❐

-: मुद्रक :-
श्रीजी प्रिण्टर्स
नाटी इमली, वाराणसी
ई-मेल : shrijeeprint@gmail.com

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ॐ ॥

प्रकाशकीय

अद्वैतसाक्षात्कार परम परुषार्थ का एकमात्र एवं अचूक उपाय उपनिषदों में स्पष्टतः प्रतिपादित है। अनात्म-विद्या भोगोन्मुख प्रवाह वाली है। आधुनिक वैज्ञानिक चिन्तन सूक्ष्म चाहे जितने हों पर सभी का भोग-पक्षीय विनियोग ढूँढा जाता ही है और भोगोपायों के लिये विद्या का उपयोग किया जाता ही है। योग-तन्त्रादि अन्य विद्याओं का भी इसी तरह सांसारिक प्रयोग प्रधानतः देखने में आता है। भेद-सत्यता का ही दूसरा पहलू आत्मा की परिच्छिन्नता है तथा परिच्छिन्न समझा आत्मा अवश्य कामना-कर्म करेगा। निर्विकार एकरस व्यापक स्थितिरूप मोक्ष ही सारी कामना से रहित अतः निर्भोग आनन्द है। ऐसे दृढ साक्षात्कार में अक्षम के लिये वेद ने प्रायः इसी फल के लिये उपासनाओं का भी विधान किया है। शारीरकमीमांसा में लगभग बराबर प्रसंग ज्ञान और उपासना के हैं। उपनिषदों में भी अनेक उपासनाओं का विस्तृत परिचय सुलभ है। गीता उपासना की प्रेरणा प्रदान करती ही है। अतिशुद्धचेता विवेकपूर्ण विरक्त साधनसम्पन्न अधिकारी श्रवणादि से अखण्ड साक्षात्कार पा सकता है, पर जिसमें अधिकार-योग्यता पूर्ण नहीं उसके लिये पारमार्थिक अध्यात्मविकास का उपासना ही उपाय है।

छान्दोग्य-उपनिषत् का व्याख्यान करते हुए भाष्यकार कहते हैं कि शाण्डिल्यादि उपासनाएँ 'कैवल्यसन्निकृष्टफलानि' अर्थात्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रममोक्ष प्रदान करती हैं। इससे अतिरिक्त चित्त को शुद्ध करती हैं एवं अद्वैतज्ञान के लिये उपाकारक संस्कार आहित करती हैं। मधुविद्या, संवर्गविद्या, उपकोसलविद्या, वैश्वानरविद्या, भूमविद्या, दहरविद्या आदि की तरह शाण्डिल्य-विद्या भी छान्दोग्य में ही स्पष्टरूप से प्रकट है। अग्निरहस्य (१०.६.३.२) आदि शतपथ में भी वर्णन है जिस सबका संग्रह ब्रह्मसूत्र (३.३.१०.१९) में किया गया है। छान्दोग्य के प्रधान प्रसंगों में शाण्डिल्यादि विद्याएँ और श्वेतकेतु-प्रजापति आदि ज्ञानप्रकरण सुप्रसिद्ध हैं।

आचार्य महामण्डलेश्वर **श्री स्वामी महेशानन्दगिरि जी महाराज** ने वेदान्तशास्त्र के रहस्यभूत सन्दर्भ सुबोध रीति से व्यक्त कर सर्वसुलभ कराये हैं। इसी क्रम में संवत् २०५५ में देहली में श्री विश्वनाथ संन्यास आश्रम के गीताभवन में महाराजश्री ने **शाण्डिल्य-विद्या** का व्याख्यानों के रूप में उपस्थापन किया था। पट्टलेखों में वे व्याख्यान प्रायः तभी वितरित हो गये थे। प्रारम्भ से ही उन्हें लिपिबद्ध करने का संकल्प था एवं अनेक प्रयास भी हुए पर विघ्नवश कार्य हो न पाया। श्री अशोक गुप्त के अथक तत्पर परिश्रम से गत वर्ष ही यह मातृकारूप में तैयार हुआ। कालक्रम में प्रारम्भिक प्रवचनों के कुछ भाग विगलित हो गये अतः अवशिष्ट अंश का यथोचित समावेश कर यह अतिप्रतीक्षित सद्ग्रन्थ महाराजश्री जी की दसवीं पुण्यतिथि पर प्रकट हुआ है। संस्था द्वारा समर्पित इस श्रद्धाञ्जलि में जिन सबका सहयोग श्रद्धापूर्वक प्राप्त हुआ वे सद्गुरुकृपा के भागी बनें यह भगवान् श्रीदक्षिणामूर्ति से प्रार्थना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन-क्रम

प्रवचन पहला	१
प्रवचन दूसरा	१६
प्रवचन तीसरा	३४
प्रवचन चौथा	५१
प्रवचन पाँचवाँ	६६
प्रवचन छठा	८१
प्रवचन सातवाँ	९७
प्रवचन आठवाँ	११५
प्रवचन नौवाँ	१३५
प्रवचन दसवाँ	१५१
प्रवचन ग्यारहवाँ	१६५
प्रवचन बारहवाँ	१८२
प्रवचन तेरहवाँ	१९८
प्रवचन चौदहवाँ	२१२
प्रवचन पन्द्रहवाँ	२२८
प्रवचन सोलहवाँ	२४५
प्रवचन सत्रहवाँ	२६३
प्रवचन अट्ठारहवाँ	२८०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्रीदक्षिणामूर्त्तये नमः ॥

शाण्डिल्य-विद्या

प्रवचन : पहला

(१.४.९८)

सामवेद की कौथुमी शाखा की छान्दोग्य उपनिषत् के तीसरे अध्याय के चतुर्दश खण्ड के प्रथम मन्त्र का विचार चल रहा है। मन्त्र है—

'ॐ सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत। अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथाक्रतुरस्मिँल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत॥१॥

इसमें महर्षि शाण्डिल्य बतलाते हैं—जो कुछ भी इदं-रूप से कहा जाता है, 'यह' इस प्रकार से जाना जाता है, वह ब्रह्म ही है। 'इदम्' अर्थात् जो 'बाहर' प्रतीत हो। 'बाहर' का मतलब यहाँ केवल शरीर से बाहर ही नहीं समझना। 'मैं' से जो भिन्न है, अलग है, वह सब-का-सब 'यह' शब्द से कहा जाता है। इसलिये ब्रह्मसूत्रभाष्य के प्रारम्भ में ही आचार्य शंकर सारे संसार को दो भागों में बाँटते हैं। यद्यपि व्यवहार में व्याकरण की दृष्टि से हम लोग संसार को तीन भागों में बाँटते हैं : मैं जाता हूँ, तुम जाते हो, वह जाता है। आधारभूत भेद प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष से व्यक्त किया जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंग्रेजी में उलटा कहते हैं—'फर्स्ट पर्सन, सैकिण्ड पर्सन, थर्ड पर्सन'। यह दोनों संस्कृतियों में एक भेद है। हर व्यवहार के अन्दर संस्कृति का हाथ होता है। संस्कृति कोई ऐसी चीज़ नहीं जैसी आजकल लोगों ने समझ ली है कि थियेटर बनाकर खड़ी कर ली जाये। नाच-गान कर लिया, उसी का नाम रखा है 'सांस्कृतिक कार्यक्रम'। संस्कृति वह है जो जीवन के पहलू के अन्दर प्रविष्ट है।

हमारे यहाँ पहले है 'भवति', संस्कृत में पहले पढ़ायेंगे 'भवति' अर्थात् वह है। तब पढ़ायेंगे 'भवसि', तुम हो। तब पढ़ायेंगे 'भवामि' मैं हूँ। मैं हमारे यहाँ अन्त में आता है। उनके यहाँ ठीक इससे उलटा है, पहले आयेगा 'आइ एम' मैं हूँ, तब आयेगा 'यू आर' तुम हो, तब आयेगा 'ही इज़' वह है। वे 'आइ' अहंकार को ही प्रधान रखते हैं। उसके बाद उन्होंने दूसरे जीवों को रखा, उसके बाद 'वह' जो परमात्मा उसे रखा। हमारे यहाँ पहले व्यापक परमात्मा है, तब दूसरे जीव हैं और अन्त में मैं हूँ। इतना ही नहीं, ये तीसरे को कहेंगे तो छोटे अक्षर में लिखेंगे, लेकिन अपने को बड़े अक्षरों में (कैपिटल लैटर) लिखेंगे! उनकी सारी संस्कृति मैं को प्रधानता देने की है और हमारी सारी संस्कृति परमात्मा को प्रधानता देने की है। इदम् के द्वारा जिसको कह रहे हैं, उसको आचार्य शंकर ने दो में इकट्ठा कर दिया—वह और तुम, दोनों को युष्मत्-शब्द से कह दिया।

क्यों दो भागों में बाँटा? उन्होंने बताया कि एक विषय है और दूसरा विषयी। एक जो चीज़ दीखती है, दूसरा जो देखने वाला है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो दीखती है, उसको एक श्रेणी में डाल दिया और जो देखने वाला है, उसे दूसरी में डाल दिया। जैसे उन्होंने दो विभाजन किये, वैसे ही यहाँ दो विभाजन हैं। सारे विषय को इदम्-शब्द से कह दिया। जिसे 'यह' जानते हो, उस सबका कारण ब्रह्म है। कार्यरूप से तो सब अलग-अलग हैं, असद्-रूप से तो सब अलग-अलग हैं, परन्तु कारणरूप से सब एक ही है; क्योंकि सबका सम्बन्ध सद्ब्रह्म से ही है। वही सद्ब्रह्म देखने वाला भी बनता है। देखना उसका स्वभाव है, ज्ञान उसका स्वभाव है, परन्तु ज्ञाता अर्थात् जानने वाला वह कब बनता है? जब कुछ-न-कुछ युष्मत्-प्रत्यय आ जाये। बिना किसी उपाधि के जानने वाला नहीं बनता यद्यपि वह रहता ज्ञानस्वरूप है। आँख है तभी देखने वाला बनता है, परन्तु अंधा व्यक्ति भी जानता तो है ही, रूप को भले ही नहीं जानता। इसी प्रकार कान है तो सुनने वाला, कान नहीं तो सुनने वाला नहीं, परन्तु जानता तो है ही। सुनना भी एक ज्ञान ही है। देखने वाला, सुनने वाला तो तब बने जब आँख-कान इत्यादि के साथ हो; क्योंकि आँख और कान खुद जाने जाते हैं इसलिये वे भी विषय हैं। तुम डाक्टर से जाकर कहते हो 'डाक्टर साहब, मेरी आँख में क्या तकलीफ है ज़रा देखो, मुझे साफ नहीं दीखता'। तुम्हें पता लग ही रहा है कि आँख साफ नहीं देख रही है। यह भी पता है कि डाक्टर को पता लगेगा कि आँख में क्या खराबी है। आँख-कान पता लगते हैं और इनके साथ होकर तुम देखते हो, सुनते हो। परन्तु तुम्हारे बिना आँखें देखने का, कान सुनने का ज्ञान नहीं कर सकते। आजकल पढ़ाया जाता है कि आँख एक फोटोग्राफिक कैमरा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आँख के अन्दर लैंस है, रैटिना स्क्रीन की जगह है। यद्यपि आँख है तो कैमरे की तरह पर बढ़िया-से-बढ़िया, दस लाख रुपये का कैमरा ले लो, वह कभी भी *देखेगा* नहीं। आँख है औज़ार, कैमरा की तरह, पर देखने वाली तब बनती है जब मुझ आत्मा के साथ होती है। कान भी सुनने वाला तब बनता है, जब मेरे साथ होता है। इसी प्रकार से मन भी वैसा ही है जैसे आँख।

ऐसा नहीं समझ लेना कि मन शरीर से अलग ढंग का औज़ार है। विदेशों के अन्दर प्लेटो तो मानता है कि शरीर और मन दोनों ही भौतिक हैं। परन्तु अरस्तु के ज़माने से शरीर और मन को अलग-मानने की परम्परा चली। सारी आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति इस भेद पर आधारित है। उसी की नकल से आज हमें भी लगता है कि मन अलग है, शरीर अलग है। इसलिये कहते हैं 'मन शान्त रहना चाहिये, शरीर से कुछ भी खाओ, नहाओ क्या फर्क पड़ता है। शरीर शरीर की जगह है, मन मन की जगह है'। प्रयोग करो : भाँग की बढ़िया बर्फी बनाकर खाओ। तुम्हारा शरीर खायेगा। फिर तुम क्या बोलोगे, वह हम दर्ज (रिकार्ड) कर लेंगे! तुम्हारे शरीर ने खाया है, तुम्हारे मन में नशा कैसे चढ़ जायेगा? इसका मतलब है कि जो तुम खाते हो उसका असर तुम्हारे मन पर आता है। इसलिये वेद स्पष्ट कहता है 'अन्नमयं मनः' अन्नमय, अन्न से ही मन का निर्माण होता है। जब इस बात का उपदेश शिष्य को दिया, तो उसे भी बात समझ में नहीं आई।

प्राचीन औपनिषद ऋषि आज की तरह नहीं पढ़ाते थे। उनका था प्रयोगवादी शिक्षण। वे मानते थे कि बात जीवन में घटाकर नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देखी तो शिष्य को केवल 'विश्वकोश' बनाने से कोई फायदा नहीं। वर्तमान शिक्षा छात्र को जीता-जागता कोश बना देती है, दुनिया भर की सूचना बताती है। कई बार लोग कहते हैं कि आजकल लोग रामायण, महाभारत बाँचते हैं या टेलिविजन पर देखते हैं, उससे लोगों को काफी पता चलता है। क्या पता चल जाता है? युधिष्ठिर ने क्या किया, कर्ण ने क्या किया, कृष्ण ने क्या किया, राम ने क्या किया। सूचनायें ही मिलीं। क्या इसी का नाम शिक्षा है? क्या रामायण के टेलिविजन पर आने के बाद भाइयों की मुकदमेबाजी कम हुई? भरत ने तो खड़ाऊँ रखकर पूजा की, तुम लोगों के मुकदमेबाजी कम हुई? अथवा रघुकथा के अन्दर देखा कि पड़े धन के बारे में एक कहता है 'मैं नहीं लूँगा, मैं क्यों लूँ'! दूसरा कहता है 'मैं नहीं लूँगा, तेरे लिये आया है'। तो क्या लोगों ने धन छोड़ना शुरू किया कि 'मैं क्यों परिग्रह करूँ, मेरे पास आयेगा तो मुझे दुःखी करेगा'? परीक्षित क्यों बरबाद हुआ? सोने का संग्रह कर लिया था, सिर पर सोने को चढ़ा लिया था, यही कथा है। सोने को सिर पर चढ़ाने से इतना अहंकार हो गया था कि उसने ऋषि के गले में साँप डाल दिया, जिससे उसे मरना पड़ा। इस कथा को सुनकर किसी ने सोने को सिर पर चढ़ाना छोड़ा है? औपनिषद ऋषियों की दृष्टि में इसका नाम शिक्षा नहीं है। किसी को कोश याद करा दिया, इतने मात्र से वह शिक्षित नहीं हो गया। जो बात बताई जाये वह तुम्हारे जीवन में उतार सकें तो तुम्हें शिक्षित किया, नहीं तो तुम जानवर ही रहे। आचार्य शंकर लिखते हैं कि जब तक विवेक नहीं आया तब तक तुम में और पशु में कोई फरक नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

औपनिषद ऋषि ने कहा 'अन्नमयं हि सोम्य मनः' फिर देखा कि शिष्य के मन में बात जम नहीं रही है। उन्होंने कहा 'थोड़े दिन व्रत रख'। पन्द्रह दिन व्रत रखे हो गये, सोलहवें दिन उसे बुलाया, कहने लगे 'वेद के मन्त्रों को बोल कर सुना जो तूने पढ़ रखे हैं'। पन्द्रह दिनों तक कुछ नहीं खिलाया था। खुद जैसा रखते हो वैसा व्रत नहीं समझना। रोज फुलका खाते हो, व्रत के दिन कुट्टु की पूरी खाओगे। रोज दाल खाते हो, उस दिन तालमखाने की खीर खाओगे। अगर औरतों का जोर चल जाये तो बादाम का हलवा भी खायेंगे। ऐसे व्रत की बात नहीं कर रहे हैं। उसने तो कुछ भी मुँह में डाला नहीं, खाली पानी पीता रहा बस, और कुछ नहीं। जब कहा 'सुनाओ' तो उसने कहा 'मैं कोई मन्त्र नहीं सुना सकता! अब तो दाल-भात ही याद आता है'। उन्होंने कहा 'जाकर अच्छे से भोजन कर, आराम कर'। शाम को फिर बुलाया और कहा 'अब सुनाओ' तो उसने दनादन मन्त्र सुना दिये। उन्होंने कहा 'सवेरे कहाँ चला गया था तुम्हारा सब ज्ञान और अब कहाँ से आ गया? अन्न नहीं था तो मन क्षीण होता चला गया। बस एक चिंगारी बची हुई थी षोडशी कला, सोलहवें दिन की। चूँकि वह बची थी इसलिये उसमें अन्न पड़ा तो मन पुष्ट हो गया, सब चीज़ें याद आ गईं'। इस प्रकार निश्चित है कि शरीर, मन और इन्द्रियाँ भौतिक हैं। आजकल जब आदमी का दिमाग गड़बड़ हो जाता है तब बिजली का झटका कहाँ लगाते हैं? शरीर को ही लगाते हैं, उससे कई लोग ठीक भी हो जाते हैं। शरीर का मन पर प्रभाव पड़ता ही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चाहे शरीर के गोलकों की उपाधि हो, चाहे इन्द्रियों की उपाधि हो, चाहे मन की उपाधि हो, हैं सब भौतिक औजार। मन की उपाधि विकसित होगी तो तुम अप्रत्यक्ष पदार्थों को भी जान लोगे, जो सामने नहीं हैं उनको भी मन से जान लोगे। तुम 'जानने वाले' तो तब बनोगे जब तुम्हारे पास इन्द्रियाँ हों, मन हो, बुद्धि हो। ये सब नहीं होंगे तो 'जानने वाले' नहीं रहोगे परन्तु ज्ञान तुम्हारा स्वभाव रहेगा ही। जब गहरी नींद में चले जाते हो तब न इन्द्रियाँ रहती हैं न मन-बुद्धि रहते हैं। वहाँ जानने वाला तो नहीं रहता परन्तु ज्ञान रहता है। इसीलिये उठते हो तो स्मरण होता है; वहाँ ज्ञान था तभी स्मरण होता है। यदि वहाँ ज्ञान नहीं होता तो स्मरण कैसे होता? जिस चीज़ को जाना हो उसी का स्मरण होता है। वहाँ जानने वाले नहीं हो, ज्ञानस्वरूप से हो। जहाँ-जहाँ उपाधि होगी, वहाँ-वहाँ जानने वाले बनोगे। जो ज्ञानस्वरूप है, हमेशा रहने वाला ज्ञान है, वही इस जगत् का कारण ब्रह्म है। ज्ञानस्वरूप सद्ब्रह्म ही जगत् का कारण है। बाकी सब कार्य हैं जो जाने जाते हैं, कारण वह है जो ज्ञानस्वरूप है। ये उपाधियाँ कैसे हो गईं? तुम ज्ञानस्वरूप हो इस बात को जानते नहीं हो, इस बात के जानने वाले नहीं बन पाये हो, इस अज्ञान से बाकी चीज़ें 'उपाधि' बन बैठी हैं। सर्वज्ञात्म महामुनि कहते हैं—

'स्वाज्ञानकल्पितजगत्परमेश्वरत्वजीवत्वभेदकलुषीकृतभूमभावा'।

हो तो तुम ब्रह्मस्वरूप परन्तु अपनी ब्रह्मस्वरूपता को जानते नहीं, स्वाज्ञान है। अज्ञान में बड़ी भारी शक्ति है। लोग समझते हैं, ज्ञान में ही शक्ति है, लेकिन अज्ञान के जैसी शक्ति ज्ञान में भी नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होती। कभी कोई व्यक्ति तुमसे कुश्ती लड़ता हो और किसी दिन वह अच्छी तरह से शराब पी ले तो वह रोज की अपेक्षा और जबरदस्त लड़ेगा। कारण क्या है? 'कहाँ चोट लगेगी, नहीं लगेगी' इसकी उसे कोई परवाह नहीं रहती है। होश में हमेशा आदमी के अन्दर अपना बचाव करने की प्रवृत्ति प्रकट रहने से कुछ-न-कुछ रुकावट करती है। बड़ा भारी दंगल होता है लोकसभा में। अब वहाँ लगा दिया दूरदर्शन ताकि लोग देखें कि वहाँ कैसे-कैसे जबरदस्त लोग हैं। कई लोगों ने विरोध किया कि इस प्रकार का साक्षात् प्रसारण नहीं होना चाहिये। क्यों नहीं होना चाहिये? क्योंकि लोगों को पता लग जायेगा। सोचते थे कि पता होने से कुछ संकोच होगा, दंगल थोड़ा कम हो जायेगा। लेकिन वे होश भूल जाते हैं कि प्रसारण हो रहा है; वैसा ही व्यवहार करते रहते हैं। ऐसे ही जब देवी-देवता चढ़ जाते हैं, भूत-प्रेत चढ़ जाते हैं, तब व्यक्ति इतना प्रबल हो जाता है कि उसको नियन्त्रण करना मुश्किल हो जाता है। लखनऊ में ताजिये निकलते हैं, जिनमें मुसलमान बड़े जोश में होते हैं। उनके कोई बड़े भारी पुरखे थे हुसैन, उनके ही रिश्तेदारों ने मारा था, कोई हिन्दुओं ने नहीं मारा था। आज तक वे बार-बार अपने को मारते हैं, कहते हैं कि 'मैं होता तो ऐसी मार खा लेता लेकिन आपको नहीं मरने देता'। वह जो जोश है, उस जोश में उनके शरीर से जो खून निकलता है उससे उनको कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि उस समय उनको कोई होश नहीं रहता।

चाहे देवी-देवता, भूतप्रेत आदि होवें, चाहे नशा होवे, चाहे किसी विचार को लेकर आदमी उसमें अपने आपको सर्वथा एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर ले, लेकिन अपने शरीर का भान नहीं है, तो जो काम कर जाता है, उस काम को जानकर नहीं कर सकता। इस अज्ञान की शक्ति को ही माया शक्ति कहते हैं।

तुम रोज़ अपने स्वरूप को भूल जाते हो, जब सोने जाते हो; तब अपने स्वप्न के अन्दर कितनी बड़ी सृष्टि पैदा कर लेते हो! श्रुति कहती है कि स्वप्न के अन्दर रथ भी नहीं हैं, घोड़े भी नहीं हैं, परन्तु तुम वहाँ रथ बना लेते हो, घोड़े बना लेते हो, सड़कें भी बना लेते हो। जाग्रत् में वह सब नहीं बना सकते; क्योंकि यहाँ तुम अपने आपको जान रहे हो, अपने स्वरूप का तुमको ज्ञान है। परमात्मस्वरूप का ज्ञान न होवे पर व्यावहारिक स्वरूप का ज्ञान है। स्वप्न के अन्दर तुमको अपने व्यावहारिक स्वरूप का भी ज्ञान नहीं इसलिये वहाँ तुम ऐसी चीज़ें बना लेते हो। जाग्रत् में तुम्हारा पैर कटा हुआ है। डाक्टरों ने उसको बाँध दिया है। हाथों में, पैरों में बेड़ियाँ डाल दी हैं, कहीं खून चढ़ रहा है, कहीं सैलाइन चढ़ रहा है, हिल-डुल नहीं सकते। स्वप्न के अन्दर तुम पहलवानी कर रहे हो, दण्ड पेल रहे हो! क्यों? क्योंकि तुमको अपना भान नहीं कि 'मैं कैसा हूँ इस समय'।

अज्ञान की शक्ति बड़ी प्रबल है इसलिये उसको माया कहते हैं। 'माया' शब्द का अर्थ वह होता है जिसमें से चाहे जितनी भी चीज़ें निकलती चली जायें, परन्तु खत्म नहीं हो। तुमने रस्सी में साँप देखा, दो दिन देखा, छह महीने देखा, तो क्या अब साँप कुछ कम दीखेगा? रस्सी में साँप वैसा ही दीखेगा। बचपन से अब तक तुम स्वप्न देख रहे हो, क्या स्वप्न देखने में तुम्हें कमजोरी आ रही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है? जवानी की शक्ति तो बुढ़ापे में नहीं रही, जवानी में घोड़े की तरह दौड़ते थे और अब लकड़ी लेकर किसी तरह से चलते हो। परन्तु तुम्हारे स्वप्न देखने में कोई कमी नहीं आई। एक महात्मा करीब सत्तर साल के थे, एक दिन कहने लगे 'आज बड़ा भयंकर काम हुआ।' हमने पूछा 'क्या हुआ?' कहने लगे 'मैं बी.ए. आनर्स का पर्चा दे रहा हूँ, पर्चा बहुत कठिन आया है, उसे देखकर मेरा पसीना छूट रहा है।–ऐसा देखा।' आत्मा का, स्वरूप का अज्ञान हो, तो सुख-दुःख कुछ भी पैदा कर सकते हो।

जो भी जड है इस पर परमेश्वर का ही नियन्त्रण है, जबकि जड द्वारा कर्म करने और फल भोगने वाला जीव है। शरीरादि उपाधि एवं बाह्य सामग्री परमेश्वर ने दी, तब जीव ने कर्म किया, जिसका फल ईश्वर देता है। जब तक शरीरादि जगत् हमें न मिले, हम कर्म नहीं कर सकते और बिना हमारे कर्म किये ईश्वर हमें फल नहीं देता है। कर्मफल-स्वरूप हमें साधन मिलते हैं, उनका सदुपयोग-दुरुपयोग जो करें, उसके फलस्वरूप फिर सुखादि मिलेंगे। आत्मस्वरूप के अज्ञान से जगत्, जीवत्व और परमेश्वरत्व कल्पित हैं। जीव ईश्वर चेतन हैं, जबकि जगत् स्वरूपतः जड है। जैसे पत्थर पर बने माँडने (चित्र) में पत्थर दीखता है, वैसे अधिष्ठान चेतन में जीव-ईश्वर दीखते हैं, जैसे वहाँ पेड़-नदी अधिष्ठान के विसदृश दीखते हैं, वैसे अधिष्ठान चेतन में जगत् दीखता है। जगत् स्वरूपतः अध्यस्त है, जीव-ईश्वर संसर्गतः ही अध्यस्त हैं। अतः जीव-ईश्वर की मुख्य एकता कही जाती है, जगत् ईश्वर की बाधपूर्वक एकता कही जाती है। ब्रह्म का स्वरूप सत्-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चिद्-आनन्द है, अज्ञान का स्वरूप असत्-जड-दुःख है। संसार में जहाँ सत्-चिद्-आनन्द दीखें, समझो वे ब्रह्म का रूप है। जहाँ असत्, 'नहीं है' दीखे, वहाँ समझ लो कि माया का रूप है। ज्ञान दीखे तो जानो कि ब्रह्म का रूप है, जडता दीखे तो जानो कि माया का रूप है। सुख दीखे तो ब्रह्म का रूप जानो, दुःख को माया का रूप जानो। मन में सुख-दुःख दोनों दीख जाते हैं, ऐसे ही शरीर में जड-चेतन दोनों दीख जाते हैं। दुःख दीखने में अज्ञान कारण है, सुख दीखने में ब्रह्म कारण है। जो किसी का शरीर दीखता है, वह जड है, लेकिन उसके चलने-बोलने आदि व्यवहार से उसमें चेतन पता चलता है। रेडियो बोले तो भी चेतन नहीं समझते, आदमी बोले तभी समझते हो। कभी भले ही भ्रम हो सकता है। एक बार रेडियो बिगड़ गया, मरम्मत करने वाले ने उसे खोला तो अन्दर से एक मक्खी उड़ गयी। वहाँ एक बच्चा, खड़ा देख रहा था, बोला 'जो गाता था, वह तो चला गया!' उसने सोचा, जैसे हम गाते हैं, वैसे रेडियो के बक्से में मक्खी गाती होगी। ऐसे भ्रमों की बात अलग है, प्रायः जीवित देहों में ही चेतनता का अनुमान होता है। चेतन को गाली दो तो वह थप्पड़ मारेगा, रेडियो ऐसा कुछ नहीं करेगा! जैसे क्रिया से चेतनता का पता चलता है, वैसे उसने सुना अर्थात् उसके ज्ञान से भी पता चलता है। जहाँ जडता दीखे, उसे मायाकार्य और चेतन को ब्रह्म समझो।

दीखता है कि किताब है। इसमें 'है' को ब्रह्म का स्वरूप समझो। किताब जल जाय तो दीखता है 'किताब नहीं है'। 'नहीं है' को मायारूप समझो। मायारूप होने से वह झूठी बात है! राख के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूप में किताब है ही, उसे 'नहीं है' समझना झूठी ही बात है। सब समय, हर व्यवहार में ब्रह्मदृष्टि व मायादृष्टि को स्पष्ट समझते चलो। इसी से वह सम्पन्न हो सकेगा जो भगवान् ने कहा 'सर्वेषु कालेषु माम् अनुस्मर युध्य च'। भगवान् ने कभी-कभी करने को नहीं कहा, सब समय करने को कहा। हर ज्ञान में सत्-असत् हिस्से रहेंगे, जड-चेतन हिस्से रहेंगे, सुख-दुःख हिस्से रहेंगे अर्थात् सच्चिदानन्द और असज्जडदुःख सर्वत्र उपलब्ध हैं। 'अब किताब नहीं है' इस अनुभव में 'अब' अर्थात् वर्त्तमान काल है–रूप से प्रतीत हो रहा है, किताब 'नहीं है'–रूप से प्रतीत हो रही है। 'पत्थर जड दीख रहा है'; 'दीखना' में चिदंश भास रहा है, 'पत्थर' में जडांश भास रहा है। 'कीड़ा काटने से दुःख हो रहा है'; अभी तक सुख था तभी काटने से दुःख हुआ, यदि निरन्तर दुःख ही होता तो उसे पृथक्कर समझ ही न पाते। रोमकूप छिद्ररूप ही हैं पर सदा हैं तो उन्हें रोग नहीं मानते, यदि एक सुईभर का भी कहीं छेद हो जाये तो उसे रोग ही मानेंगे। सुख की पृष्ठभूमि पर ही दुःख का भान होता है। दुःखभान से अतएव सुखका भी स्मरण हो जाता है। जिसने रेडियो, टेलिविजन, गाड़ी, टेलिफोन आदि का उपयोग ही नहीं किया, देखे-सुने ही नहीं, उसे इनके अभाव से कोई दुःख भी नहीं होता। वही व्यक्ति नगर में इन्हें देखे, इनका प्रयोग समझे तो उसे इसका दुःख होता है कि 'मेरे पास ये साधन नहीं।' विषयों के सुख की पृष्ठभूमि हो तभी उनके दुःख का भी अनुभव होगा। सुख ब्रह्मरूप एवं दुःख मायारूप समझते चलना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भेद का आधार यही है कि ब्रह्म का स्वरूप सच्चिदानन्द, और माया का स्वरूप असत्-जड-दुःख है। इस भेद से ही जो अधिष्ठान सर्वव्यापक एक-जैसा है, उसके ऊपर कालिख लग गई है। किंतु इससे क्या ब्रह्म में दोष आ गया?

'स्वाभाविकस्वमहिमस्थितिरस्तमोहा'

स्वभाव से, अपने स्वरूप से तो ब्रह्म अब भी वैसा ही है। जैसे सारा माँडना दीख रहा है लेकिन उसके पीछे जो संगमरमर का पत्थर वह तो वैसा का वैसा है, उसमें कोई फर्क आया नहीं है। दीखता तुमको चित्र है लेकिन वहाँ है तो पत्थर ही, और कुछ नहीं है।

इसी प्रकार ब्रह्म अपनी महिमा में स्थित है। इन सब चीज़ों की महिमा में वह स्थित नहीं है, ये सब ही उसकी महिमा में स्थित हैं। आँख की महिमा इससे है कि मैं वहाँ हूँ। मेरी महिमा आँख के कारण नहीं है। मैं हूँ, इसलिये आँख की महिमा है। मैं अंधा भी होऊँगा तो भी महिमा वाला रहूँगा, तब भी सुननेवाला होऊँगा, सूंघनेवाला, चलनेवाला होऊँगा; परन्तु मेरे बिना इन्द्रियों की कोई महिमा नहीं रह जायेगी। अपनी महिमा में स्थित वह स्वाभाविक रूप से है। इसीलिये वस्तुस्थिति में 'अस्तमोहा' उस परब्रह्म में मोह, अज्ञान सदा अस्त, निरस्त ही है। इसलिये निरन्तर भासमान प्रत्यक् चैतन्य ही उसका स्वरूप है। अत: कहा 'प्रत्यक्चितिर्विजयते भुवनैकयोनिः'।

भुवन मायने संसार, उसका एकमात्र कारण वह परब्रह्म परमात्मा ही है। एकमात्र कारण ब्रह्म किस रूप में सबसे ज्यादा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महत्त्व वाला हो रहा है? प्रत्यगात्मरूप में। मन जानता है, पर जानने वाले उस मन को भी वह जानने वाला है। प्रत्यक् का मतलब है जो हमेशा पीछे से देखता है। घड़ा चमकता है रोशनी से, रोशनी चमकती है आँख से, चाहे ज्येष्ठ का तपतपाता हुआ सूर्य होवे लेकिन आँख की रोशनी न होवे तो सूर्य दीखेगा क्या? घड़ा रखा हुआ है, रोशनी नहीं पड़े तो नहीं दीखेगा, रोशनी हो पर आँख नहीं हो तो भी नहीं दीखेगा। आगे मन होगा तो आँख देखेगी, मन नहीं होगा तो आँख भी नहीं देखेगी।

मन से ही पता चलता है कि मेरी आँख ठीक नहीं देख रही। आँख कुछ-न-कुछ देख रही है। आँख को तो पता नहीं लगता कि 'मैं ठीक नहीं देख रही।' किसे पता लगता है? मन को पता लगता है कि आँख ठीक नहीं देख रही। मन सोच रहा है—इस बात को कौन जानता है? मैं जानता हूँ। मैं उस मन का भी प्रकाशक हूँ। घड़े का प्रकाशक रोशनी, रोशनी का प्रकाशक इन्द्रियाँ, इन्द्रियों का प्रकाशक मन, और मन का प्रकाशक मैं। आगे मैं हूँ इस बात को किस चीज़ से जानता हूँ? अपने आप ही जानता हूँ। उसके लिये किसी चीज़ की जरूरत नहीं पड़ती। मैं का मतलब चेतन समझना, अहंकारात्मिका वृत्ति नहीं। यह जो प्रत्यगात्मा चेतन है, यही सारे संसार का कारण है।

समस्या किसकी है? सारे संसार को, ईंट पत्थर को समस्या नहीं है। समस्या किसकी है? जो अपने को प्रत्यगात्मा-रूप से मैं हूँ, जानता हूँ, उसी की समस्या है। मकान गिर जाता है। ईंट पत्थर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं रोते, मकान जिसका है वह रोता है। तो समस्या संसार में किसी *चीज़को* नहीं है, समस्या तो प्रत्यक्चेतन की ही है। मैं की सारी समस्यायें हैं। वेदान्त कहता है 'भुवनैकयोनिः' कि असली कारण इस सारे संसार का एक 'मैं'। यदि इसकी समस्या हल हो गई तब तो सारी समस्यायें हल हो गईं। यदि इसकी समस्या हल नहीं होती तो चाहे ईंट पर ईंट लगाये जाओ, एक सौ बीस तल्ले का मकान बनाये जाओ, उससे कोई समस्या हल होने वाली नहीं है। समस्या जीव की अपनी है।

भुवन का एकमात्र कारण एक चेतन है, इसी का बंधन है, इसी का मोक्ष है। जब मन शांत होवे तब उपासना होवे।

❖

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन : दूसरा
(२.४.९८)

शाण्डिल्य महर्षि कहते हैं कि यह-रूप से हमें कुछ भी प्रतीत होता है, तो सचमुच में प्रतीति जिसकी हो रही है, वह ब्रह्म ही है। श्रुति स्वयं ही कारण बतलाती है 'तज्जलान्' क्योंकि सब उसी से उत्पन्न हुआ है, अन्त में उसी में लीन होता है और उसी के अन्दर प्राणन करता है, उसी में स्थिति रहती है। प्रायः क्रम होता है जन्म, स्थिति फिर लय। तैत्तिरीय में यही क्रम है। इसीलिये जन्मादिसूत्र में भी भगवान् भाष्यकार ने तैत्तिरीय उपनिषद् को ही लिया क्योंकि सामान्य क्रम यही है। घड़ा पैदा होता है, घड़ा कुछ समय तक मौजूद रहता है, अंत में घड़ा नष्ट हो जाता है। तैत्तिरीय उपनिषद् में बतलाया कि जिससे ये सारे प्राणी उत्पन्न होते हैं, जिसमें स्थित रहते हैं और अन्त में जिसमें लीन हो जाते हैं, वह ब्रह्म है।

यहाँ पर श्रुति ने जन्म, लय फिर स्थिति कहकर प्रसिद्ध क्रम को भंग क्यों किया? स्थिति की विलक्षणता बताने के लिये अन्त में अलग से कहा। हमारी सारी प्रतीतियाँ वर्तमान और जाग्रत् की हैं। हमें सपने में यह पता नहीं है कि यह सपना है, वहाँ यही निश्चय है कि यह जाग्रत् है। हम सुषुप्ति की प्रत्यभिज्ञा करते हैं 'मैं बड़े सुख से सोया था' तो वहाँ उस सोने की भी हम जाग्रत् के रूप में ही स्मृति करते हैं। उसे जाग्रद्रूप की स्थिति क्यों मानें? स्वप्न से जाग्रत् में आने पर जैसे निश्चय हो जाता है कि 'वह सब कुछ नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था', ऐसे सुषुप्ति की स्मृति आती है तो प्रकार यह नहीं है कि 'वहाँ मैं सुख से नहीं था'। यदि सुषुप्ति की प्रतीति स्वप्नरूप में होती तब उसके बाद प्रतीति होती 'मैं नहीं सो रहा था' जैसे स्वप्न से उठकर कहता है 'मैं वहाँ देख नहीं रहा था, सो नहीं रहा था, जान नहीं रहा था'। इस प्रकार सुषुप्ति की प्रतीति नहीं होती कि 'वहाँ मैं सो नहीं रहा था, वहाँ मैं सुख से नहीं था अथवा वहाँ मैं कुछ नहीं जान रहा था ऐसी बात नहीं'। सुषुप्ति जाग्रत् के रूप में आती है, स्वप्न भी जाग्रत् के रूप में आता है और जाग्रत् तो जाग्रत् के रूप में आता ही है। थोड़ा और विचार करो तो जब हमें रस्सी में साँप दीखता है तो साँप किस रूप में दीखता है? सच्चे रूप में ही दीखता है। प्रतीति का यह रूप नहीं कि साँप झूठा है। अतः चीजों की प्रतीति 'है'-रूप से होती है, वर्तमानरूप से होती है, जाग्रत्‌रूप से होती है।

इसलिये जन्म की और लय की प्रतीति भी वर्तमान रूप से ही है। जब हम कह रहे हैं 'बच्चे ने जन्म लिया' तो जन्म की प्रतीति का रूप—अब गर्भ में है, अब सिर बाहर निकल रहा है, अब पैर बाहर हैं। जन्म की प्रतीति एक क्रिया के रूप में नहीं, अनेक अंशों की प्रतीतियाँ है-रूप से, वर्तमान रूप से होती हैं, उन सबको मिलाकर कहते हैं 'जन्म हुआ'। कोई पूछे 'तुम्हारा जन्म कब हुआ?' विचारशील के लिये जवाब देना बड़ा कठिन है! जब पिता के पेट से माँ के पेट में आया तब जन्म हुआ अथवा माँ के पेट से बाहर निकला तब जन्म हुआ, सिर बाहर निकला तब जन्म हुआ, हाथ बाहर निकला तब जन्म हुआ, पैर बाहर निकला तब जन्म हुआ, नाडी कटी तब जन्म हुआ, किस अनुभव को कहा जाये कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बस यही जन्म होना है? शास्त्र की दृष्टि से देखोगे तो पिता के पेट में आने से पहले अनाज में था, अनाज में आने से पहले जल में था, जल में आने से पहले बादल में था, बादल में आने से पहले सूर्य की किरणों में था, सूर्य की किरणों में आने से पहले फिर यहीं पृथ्वी पर था! यहाँ जो कर्म किये उनके द्वारा सूर्य में जाकर जिस-किसी जन्म में जाना है वहाँ से वापस लौटते हैं। इसलिये यदि शास्त्र-दृष्टि से देखें तो हमारा जन्म कभी होता ही नहीं! ऐसे समझ लो : मिट्टी तो हमेशा मिट्टी ही रहती है। मिट्टी का तुमने लोंदा बना लिया तो लोंदे को पैदा किया कह सकते हो, मिट्टी को पैदा किया तो नहीं कह सकते हो। आगे तुमने लोंदे से घड़ा बना लिया तो घड़े को पैदा हुआ कह सकते हो, मिट्टी को पैदा हुआ नहीं कह सकते। मिट्टी अनेक रूपों में जाते हुए मिट्टी ही है। इसी प्रकार मैं जीवात्मा भिन्न-भिन्न शरीरों में जाते हुये वह का वह ही बना रहता हूँ, अनेक रूपों को धारण करनेवाला मैं स्वयं अनेक रूपोंवाला नहीं हूँ। इसीलिये शास्त्रकार कहते हैं कि अनन्त रूपोंवाला परमात्मा एक है। चूँकि सारे अनुभव जाग्रत् में होते हैं, वर्तमान में होते हैं इसलिये उसकी प्रधानता बतलाने के लिए अन्त में स्थिति कही, जन्म और लय भी उसी रूप में हैं।

जो जन्म के बारे में कहा, वह मृत्यु के बारे में भी सोच लेना। मृत्यु का क्षण कौन-सा माना जाये? एक-एक नाडी से प्राण टूटकर आते हैं उन क्षणों को माना जाये, अंत में सारे प्राण एकत्रित होकर हृदय में आ जाते हैं उसको माना जाये? फिर हृदय के अन्दर केवल तेजरूप रहता है, उसे माना जाये? इनमें से किस को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मृत्युक्षण माना जाये? किसी एक को यह कह नहीं सकते कि 'मैं मरा'। यह कह सकते हो 'मेरी नाडी टूट रही है, मैं हृदय में एकत्रित हो रहा हूँ, मैं तेजरूप हो रहा हूँ, अब मैं नये शरीर में भास रहा हूँ', पर होता है सर्वत्र 'है'-रूप से, जाग्रत्-रूप से। जन्म और लय ये दोनों स्थिति से भिन्न नहीं हैं। इसलिये उसकी प्रधानता बतलाकर कह दिया 'तज्जलान्'।

प्रश्न होता है कि ये सब चीज़ें परमात्मा से उत्पन्न हुईं, यह कैसे समझ में आये? नरेन्द्र पुरी स्वामी अपनी टीका में स्पष्ट करते हैं 'पूर्वत्र प्रतीकद्वारेण ब्रह्मोपासनमुक्तम्' इसके पहले बतायी उपासनाओं में परमेश्वर को किसी-न-किसी प्रतीक में माना गया है, किसी विग्रह, मूर्ति में माना गया है। यह दूसरी बात है कि औपनिषद उपासनाओं के अंदर पुरुष-विग्रह की प्रधानता नहीं है, प्रकृति को ही चिह्नों के रूप में लिया गया है। जैसे गायत्री के तीन चरण ब्रह्म के त्रिपाद हैं।

त्रिपाद गायत्री को प्रतीक लेकर उपासना बताई। प्राय: किसी प्रतीक द्वारा उपासना की जाती है। प्रतीक का मतलब होता है, जिससे किसी अन्य के बारे में प्रतीति हो जाये। जैसे चित्र बनाते हो अखबार में, पूरा चित्र नहीं बना पाते हो, तो मनुष्य के सिर का चित्र दे देते हो, किसी नेता का चित्र बनाना हो तो उसकी किसी विशिष्टता को दिखा देते हो, अगर उसकी नाक ज़रा लम्बी है, तो नाक खास लम्बी बना देते हो, उसी से लोग समझ लेते हैं, अत: बाकी और अंग बनाने की ज़रूरत नहीं पड़ती। अगर कोई हमेशा उदास वृत्ति से रहनेवाला है तो एक भारी चेहरा बना दिया चिन्ता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में पड़ा हुआ तो सब समझ जाते हैं कि किसका चित्र है। ऐसे को कहते हैं 'प्रतीक'। इसी प्रकार, परमेश्वर की किसी प्रतीक के द्वारा उपासना बतायी जाती है। 'इदानीं प्रतीकं हित्वा सगुणब्रह्मोपासनं विधीयते' अब शाण्डिल्य-विद्या में प्रतीक को छोड़ करके साक्षात् सगुण ब्रह्म की उपासना बतला रहे हैं। साक्षात् ब्रह्म की उपासना के लिये उसका रूप क्या है? इदम्-रूप से जो दीख रहा है यह सारा जगत् विराट् पुरुष है, ब्रह्म है। इसमें किसी अंग को नहीं लिया, पूरे को लिया है।

सगुण ब्रह्म की उपासना बतला रहे हैं 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' से। वह ब्रह्मस्वरूप कैसे है? इस बात को आगे छठे अध्याय में विस्तार से बतलाना है, उसका यहाँ ज़रा संकेत कर देते हैं। मिट्टी हमें घड़े में, सकोरे में, परई में एक-जैसी मिलती है। सोना कर्णफूल में, गले के हार में, करधनी में एक-जैसा दीखता है। इसलिये सोना और मिट्टी को कारण कहा जाता है, जो सबमें एक-जैसा है। सिकोरा इत्यादि उसके आने-जाने वाले रूप हैं। वह मिट्टी यदि सिकोरे के रूप में बनी तो सकोरे के रूप में दीखी, परई बनी तो उस रूप में दीखी लेकिन दीखनेवाली मिट्टी ही है। इसी प्रकार सोना भी कर्णफूल रूप में दीखा, हार के रूप में दीखा, करधनी-रूप में दीखा, लेकिन क्या दीखा? सोना ही दीखा, भिन्न-भिन्न आकारों को लिये हुये। कारण कौन हुआ? जो सबमें एक है। इसी प्रकार हम सृष्टि में किसी पदार्थ को देखते हैं तो 'है'रूप से देखते हैं। है के रहते ही सब प्रतीतियाँ हैं। सारी ही प्रतीतियाँ 'है'रूप से हैं इसीलिये 'है' कारण हुआ। है को संस्कृत में सत् कहते हैं, सत् मायने हिन्दी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में जिसे 'है' कहते हैं। जहाँ-जहाँ इदम्, अयम् अनुभव होता है, वहाँ भी अनुभव होता है 'यह है'। 'यह' तो बदलता रहता है। कभी घड़ा है, कभी घोड़ा है, कभी घड़ी है; 'यह' तो बदलता रहा, परन्तु 'है' सब जगह एक रहा। इसलिये 'है' हमें कभी घड़ेरूप में दीखता है, तो कभी घोड़ारूप में दीखता है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इसलिये कि सब चीज़ों में 'है' मिलता है। अन्त में जीव किस में लीन होता है? 'है' में लीन होता है। घड़ा कहाँ गया? फूटने पर बची जो यह मिट्टी 'है'। कर्णफूल कहाँ गया? यह सोना 'है'। कर्णफूल का अभाव तो कह सकते हो, परन्तु कर्णफूल 'कुछ नहीं' रहा यह नहीं कह सकते, किसी-न-किसी रूप में रहा। यह वैदिक सिद्धान्त बौद्धों के मत से सर्वथा विपरीत पड़ता है। बौद्ध कहते हैं कि सब चीज़ें 'कुछ नहीं' से आयीं, असत् से आयीं और अन्त में असत् ही रह जाती हैं। हम लोग कहते हैं कि सब कुछ सत् ब्रह्म से आया और अन्त में सत् ब्रह्म ही रह जाता है। 'कुछ नहीं' से 'कुछ' की उत्पत्ति में कहीं भी दृष्टान्त मिलता नहीं। जहाँ कुछ भी पैदा होता है, तो कुछ है, तभी पैदा होता है। इसी तरह जब चीज़ नष्ट होती है, तो किसी-न-किसी अन्य रूप से वह प्रतीत होती है। वेदान्त सिद्धान्त इस अनुभव के आधार पर है। आचार्य शंकर कहते हैं कि अनुभव के आधार पर है और अनुभव में ही इसका समापन है। अनुभव के आधार पर ही यह प्रवृत्त हुई और अन्त में अनुभव कराकर ही समाप्त होती है।

यह केवल किसी काल्पनिक विचारधारा का नाम नहीं है। ज़रा विचार करो, अपने दृष्टान्त से समझो; तुम भी कभी-कभी ईश्वर की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तरह हो जाते हो! कब होते हो ईश्वर की तरह? जब स्वप्न देखते हो। स्वप्न बनाने में तुमको और किसी की ज़रूरत नहीं, तुम खुद ही बना लेते हो। स्वप्न बनाने जाते हो तो सबसे पहले क्या करते हो? सोने जाते हो। जाग्रत् का अनुभव खत्म होगा, नींद आयेगी तब स्वप्न आयेगा, जागते रहोगे, तो स्वप्न आना नहीं है। बढ़िया-से-बढ़िया स्वप्न भी तुम भयंकर परिस्थिति में देख सकते हो। बाजार के अन्दर पाँच पार्टियाँ फेल हो गईं, अपनी फैक्ट्री में आग लग गई, इस स्थिति में भी आदमी नींद में सपना देखता है 'मैंने पाँच फैक्ट्रीयाँ बना लीं और करोड़ों रुपया मेरे हाथ में आ रहा है।' वहाँ कोई रुकावट नहीं और तब भी दीखता जाग्रत्-रूप में ही है। इसलिये यह निश्चय नहीं कर सकते कि दोनों में से कौन-सी स्थिति सच्ची है।

चीन देश के एक बहुत बड़े दार्शनिक हुये हैं, उन्होंने एक जगह कहा : 'एक दिन मुझे रात में सपना आया कि मैं तितली बन गया, उसके बाद उठा तो आदमी हो गया। तब से आज तक सोचता हूँ कि क्या मैं तितली हूँ, जो अपने को आदमीरूप से देख रहा हूँ या आदमी हूँ, जिसने अपने को तितलीरूप में देखा था! यह भी हो सकता है कि हूँ मैं तितली और देख रहा हूँ अपने को आदमीरूप में।' ठीक इसी प्रकार से बहुत से लोगों की शंका होती है, कहते हैं कि श्रवण-मनन-निदिध्यासन किया, जिससे ब्रह्मरूप हो गये; तो क्या पहले जीवरूप थे, जो इस साधना को करते हुये ब्रह्मरूप हो गये? हम लोगों का कहना है कि हम ब्रह्मरूप ही थे, जो अज्ञान के कारण जीवरूप प्रतीत हो गये थे। क्या ब्रह्म जीवरूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से भासता हुआ भ्रान्त है या जीव ब्रह्मरूप से भासता हुआ भ्रान्त है? यह वही शंका है कि तितली देख रही है अपने आपको आदमी या आदमी ने अपने को तितली-रूप में देखा। जवाब इसका बड़ा सरल है। मैं तितली नहीं था, ऐसा निश्चय जाग्रत् में हो रहा है। क्या तितलीरूप में ऐसा निश्चय हुआ था कि 'मैं आदमी नहीं हूँ'? ऐसा कभी नहीं होता। जो सच्चा होता है, उसका बाध नहीं हो सकता। जो झूठा होता है, उसका बाध हो जाता है। 'मैं ब्रह्म नहीं हूँ' ऐसा बाध कभी नहीं होता, विचार करने पर मैं ब्रह्मरूप ही सिद्ध होता हूँ, मैं जीवरूप कभी सिद्ध होता नहीं।

नींद में 'मैं कौन हूँ' इसको तुम भूल गये। भूलने के बाद क्या किया? छिपे हुये संस्कारों को लेकर स्वप्न का निर्माण किया, स्वप्न को बनाया। अत: तुम अपने स्वप्न के ईश्वर हो, स्वप्न की सृष्टि करते हो, ऐसे ही परमेश्वर भी करता है। प्रलय के अन्दर सब चीज़ें परमेश्वर में ही लुप्त हैं। जैसे सपना बनाने के लिये तुम अपने संस्कारों को लेते हो वैसे ही ईश्वर समष्टि जीवों के संस्कार लेकर तदनुकूल सृष्टि का निर्माण करता है। हम क्या हैं, यह भूलेंगे तब स्वप्न की सृष्टि होगी। ठीक इसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा अज्ञान से आवृत हो जाता है, तब सृष्टि होती है।

आज 'गनगौर' का दिन है, राजस्थान में मनाते हैं। इसमें देवी का पूजन होता है। गोबर और पीली मिट्टी लेकर दीवार पर पोत देते हैं, फिर उस पर चित्र बनाते हैं, फिर उसके अन्दर रंग भर देते हैं। ऐसे सारा चित्र बन कर तैयार होता है। विचार करके देखो तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सचमुच सब किसमें है? पत्थर में ही। पहाड़ भी पत्थर होता है, परन्तु उस माँडने में जो पहाड़ दीख रहा है, वह रंग ही है! इसी प्रकार माँडने में शिव-पार्वती बनाते हैं। शिव-पार्वती को 'कपड़े' भी पहनाये जाते हैं। कपड़े पहनाने का क्या उद्देश्य होता है? दो उद्देश्य होते हैं : अपने अंगों को ढाँकना और सर्दी से बचाना। विचार करके देखो, माँडने में जो स्त्री बनी, क्या उसके कोई अंग हैं, जिन्हें वह कपड़ा छिपा रहा है? छिपा किसी चीज़ को नहीं रहा, बस वह वस्त्र ही दीख रहा है। न वह वस्त्र गर्मी पहुँचा रहा है। फिर भी वस्त्र की तरह दीखता है। कहते भी हैं 'अरे, कपड़े की पटली अच्छी नहीं बनाई, इसको ठीक बना। साड़ी की पटली अच्छी नहीं आई, इसे ठीक कर'। जैसे पहले वहाँ दीवाल है ऐसे ही वह सन्मात्र परमात्मा पहले है। फिर जैसे वहाँ गोबर-मिट्टी से ढाँक दिया ऐसे ही यहाँ सद्रूप परमात्मा को अज्ञान से ढाँक दिया गया। जो अज्ञान से ढँका हुआ वह सब चीज़ों के अन्दर रहेगा। आदमी को बनाओगे, औरत को बनाओगे, जानवरों को बनाओगे, चिड़िया बनाओगे, पेड़ बनाओगे, नदी बनाओगे, सबके अन्दर गोबरलिपी दीवाल एक-जैसी ही रहती है। वह मानो सबका नियन्त्रण करने वाली है। इसीलिये अज्ञान से ढँके चेतन को अन्तर्यामी कहते हैं, जितनी चीज़ें बनेंगी, उन सबके अन्दर वह मौजूद है, सब पर शासन कर रहा है, उसके अधीन ही वे सारे कार्य कर सकते हैं। अंकनी से जैसे चित्र बना लिया वैसे ही सारी सृष्टि का परमेश्वर एक ही ईक्षण करता है। हम लोगों के तो थोड़ी-थोड़ी देर के अन्दर संकल्प बनते रहते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं! यहाँ परमेश्वर को भी मनवाला कहा है। अगले मन्त्र में आयेगा 'मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः'। परमेश्वर का मन अर्थात् संकल्प कैसा होता है? एक, अखण्ड होता है। हम लोगों के जैसे संकल्प उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं, उनके ऐसे नहीं हैं। उनका सृष्टि के आदि से अन्त तक जो कुछ है, सबके बारे में एक ही संकल्प है।

ऐसे समझ लो : छोटा बच्चा 'कमल' शब्द को बाँचे, तो पहले कहता है–क। उस समय उसे क ही दीखता है। फिर कहता है–म। उस समय उसे म ही दीखता है। फिर कहता है–ल। उस समय ल ही दीखता है। फिर कहता है–क म ल; अब उसे कमल एक शब्द दीखता है। ऐसे ही दीखता है खि ला है। तब उसे पूरे वाक्य का बोध होता है 'कमल खिला है'। जब तुम बाँचते हो, तब अलग-अलग बाँचते हो क्या? तुमको सीधा वाक्य 'कमल खिला है' सामने आ जाता है। जैसे तुमको सारा वाक्य इकट्ठा सामने आ जाता है, ऐसे ही ईश्वर को सृष्टि के आदि से अन्त तक जो कुछ है, सब इकट्ठा सारा सामने आ जाता है। हम लोगों को टुकड़ों में दीखता रहता है। इसलिये उन्हें सत्यसंकल्प कहा। उसके बाद उस संकल्प के अन्दर विभिन्न रंग भरनेवाला हिस्सा हम लोगों का है। रंग भरकर सृष्टि तैयार हो गई। पहला हो गया सन्मात्र, फिर हो गया अज्ञान के साथवाला, फिर हो गया अज्ञान के साथवाले के ऊपर अखण्ड संकल्प। फिर उसके अन्दर आ गये छोटे-छोटे संकल्प जो हम लोगों के बनते हैं।

रंग शब्द बड़ा विचित्र है। संस्कृत में राग मायने रंग। रंग धातु से राग शब्द बनता है। किसी भी चीज़ की हमें जिससे अभिलाषा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, उसे राग कहते हैं। हमारे अंतःकरण के ऊपर जिस चीज़ का चित्र बहुत अच्छी तरह से गड़ जाता है उसी के बारे में राग हो जाता है। इस बात को आधुनिक व्यापारी खूब समझते हैं। इसलिये बार-बार किसी चीज़ का विज्ञापन देते हुये उसकी अच्छाइयों को बताते रहेंगे। सुनते-सुनते एक दिन आदमी जाकर खरीद लेता है। रोज़ सुनोगे तो धीर-धीरे वह रंग चढ़ जायेगा। पहले सोचोगे कि सही है या गलत। लेकिन रोज़ सुनते रहे तो एक दिन उसे लेने पहुँच जाओगे। तुम्हारे अंतःकरण के ऊपर जो संस्कार दृढ हो जायेगा, वही राग को उत्पन्न करता है। सुखद के रूप में संस्कार हुआ तो राग होगा, दुःखदायी के रूप में हुआ तो द्वेष होगा। दोनों हैं प्रभाव संस्कार के ही। जैसे चित्र के अन्दर रंग भरते हैं, वैसे हमारे राग-द्वेष हैं। ईश्वर-सृष्ट संसार जैसा है, वैसा ही है, हम लोग अपने-अपने राग-द्वेष के कारण उसके अन्दर रंग भरते हैं। किसी चीज़ में राग करते हैं तो किसी से द्वेष करते हैं। श्रुति इसलिये कहती है कि अगर तुम यह समझ लो 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' सब चीज़ें एकमात्र सद्ब्रह्म ही हैं, तो किससे राग करोगे और किससे द्वेष करोगे! अगर यह समझ में आ गया, यहाँ एकमात्र संगमरमर का पत्थर है, न आदमी है न औरत, तो किससे राग या द्वेष करोगे!

एक बार युधिष्ठिर को यज्ञ में पुरुषमृग के दूध की जरूरत पड़ी! एक पशु होता है, जो कुछ आदमी के जैसा होता है और कुछ जानवर के जैसा होता है। जैसे नृसिंह का अवतार है, वैसा होता है। दक्षिण के मन्दिरों में उसका चित्र भी मिलता है। वह होता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है घोर जंगल में। जंगल में जाकर कहाँ से लायें? भगवान् कृष्ण से पूछा। उन्होंने बताया 'अमुक जंगल में वह मिल जायेगा। इतना याद रखना कि वह भगवान् शंकर का परमभक्त है। इसलिये मैं तुझे तीन नर्मदेश्वर लिंग देता हूँ, ये साथ में रखना। जब तुम दूध लेकर वहाँ से निकलोगे तो वह तुम्हारे पीछे पड़ेगा। तुम एक शिवलिंग की स्थापना कर देना। वह शिवभक्त है, शिवलिंग को देखकर बिना पूजा किये आगे नहीं बढ़ेगा। तब तक तुम फिर दौड़ जाना। वह पूजा करके दौड़ेगा, तुमको पकड़ने आयेगा, तुम फिर वहाँ शिवलिंग की स्थापना कर देना। वह उसका दर्शन करेगा, तब तक तुमको भागने का मौका मिलेगा।' इस प्रकार समझाकर तीन शिवलिंग दे दिये। जंगल के बाहर तो वह आयेगा नहीं और जंगल के अन्दर वह प्रबल है, ऐसा करते-करते जंगल के बाहर निकल आ सकते थे।

जैसा भगवान् कृष्ण ने बताया था, वैसे भीम जंगल में गये। जाकर देखा, पुरुषमृग शिवभक्त था ही, उस समय ध्यान में बैठा हुआ था। बड़े खुश हुये भीम कि 'इसको ध्यान में पता नहीं लगेगा, तब तक मैं इसका दूध दुहकर भाग जाऊँगा'। उन्होंने दूध दुह लिया, तब उसे पता लगा नहीं! लेकिन जब भीम भागा तो उसका ध्यान टूट गया, तो भीम बर्तन में दूध ले जा रहा था, उसके पीछे दौड़ा। भीम ने पहला शिवलिंग रखा जब वह पास में आ गया, फिर दूसरा रखा, अन्त में तीसरा रखा। भागते-भागते उसका एक पैर आ गया सड़क पर और दूसरा पैर था जंगल में। पुरुषमृग बड़ा जबरदस्त होता है! उसने झट से पैर पकड़ लिया, भीम ने अपना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दस हजार हाथियों का बल लगा दिया पर कुछ नहीं हुआ! छूटा नहीं। भीम ने भी अपना पैर ऐसा जमा रखा था कि वह दूसरे पैर को अन्दर नहीं ले जा सका। वह जंगल की तरफ खींचे और भीम बाहर की ओर खींचे। थोड़ी देर इस प्रकार से उनमें झगड़ा हुआ, अन्त में पुरुषमृग ने कहा 'तू मेरा भक्ष्य है। मेरा नियम है कि जो मेरे जंगल में आ जाता है, वह मेरा भक्ष्य हो जाता है।' भीम ने कहा 'अब मैं बाहर निकल आया हूँ तो तू ही छोड़ दे। जंगल और शहर, सबके राजा युधिष्ठिर हैं। इसलिये इस झंझट को दूर करने का एक ही उपाय है कि युधिष्ठिर का फैसला ले लेवें।'

उन्होंने युधिष्ठिर से कहा कि फैसला करें। दोनों ने अपनी बातें पूरी तरह से कहीं। सुनकर युधिष्ठिर ने विचित्र फैसला दिया! कहा 'इसमें भीमसेन का कसूर नहीं है और इसका भी कसूर नहीं है। यह दूध के लिये गया तो इसको पकड़ लिया, यह ठीक है। भीम भाग कर बाहर निकल गया इसलिये यह बचे यह भी ठीक है। असली अपराधी तो मैं हूँ, मैंने यज्ञ प्रारम्भ किया जिसमें यह दूध लाने के लिये भीम को भेजा। भीम मेरे कहने से गया है। इसमें भीम का क्या अपराध? अपराध तो मेरा है। इसलिये ऐसा करो कि तुम भीम को तो छोड़ दो और उसके बदले मेरा आधा शरीर ले लो। मेरे आधे शरीर को तुम खा लो, भीम को छोड़ दो।' ऐसा फैसला सुनकर वह डर गया। उसने कहा 'तुम्हारी धर्मनिष्ठा देखकर भीम को तो छोड़ता ही हूँ, और आज से मैंने नरभक्षण करना भी छोड़ दिया! तुम्हें और दूध चाहिये तो ले लो। यह यज्ञ सम्पूर्ण करो।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वस्तुतः जो युद्ध में स्थिर रहे उसे कहते हैं युधिष्ठिर। जैसे जो कुछ भी उस पत्थर के ऊपर लीपा, अंकनी से बनाया, रंग भरे, उन सब परिवर्तनों में एक-सा कौन रहा? पत्थर वैसे-का-वैसा रहा। युधिष्ठिर तो अधिष्ठान की जगह है, युद्ध में स्थिर रहने वाला। पुरुषमृग वह जिसमें आधा हिस्सा पुरुष का और आधा मृग का है। पुरुष का अर्थ होता है पूर्ण। पूर्ण होता है परमात्मा, वह हो गया पुरुष और मृग अर्थात् जानवर। पुरुष चेतन आत्मा-जाति का है, अतः मृग अनात्मजाति का है, यह अहम् है। अहम् और चेतन दोनों मिले हुये पुरुषमृग हैं। अहंकार की वृत्ति अनात्मा होने से जड है और उस वृत्ति में चेतनता का भान होता है, वह पुरुष होने से परमात्मा है। जो पुरुषमृग होता है, उसका दूध चाहिये अर्थात् सारे संसार को पुष्ट करने वाला इस अहंकार का कर्म है। अहंकार मन, बुद्धि, शरीर, इन्द्रियाँ सबको प्रवृत्त करके कर्म करता है। इसके कर्म के अनुरूप सृष्टि होती है। जैसे-जैसे तुम कर्म करोगे वैसी ही सृष्टि होती चली जायेगी। सृष्टि-चक्र जीव के कर्म के बिना नहीं चलता है।

पुरुषमृग के दूध से सारा सृष्टि-यज्ञ तो हो रहा है, परन्तु युधिष्ठिर चाहते हैं कि ऐसा यज्ञ होवे, जिसके अन्दर इस दूध का विनियोग जैसा हमेशा होता है, वैसा न होवे। अभी तो पुरुषमृग के दूध का यही उपयोग होता है कि पुरुषमृग ही उसका भक्षण करते रहते हैं। जिस पशु का दूध होता है, वही उसका भक्षण करता है, पुरुषमृग का दूध पुरुषमृग ही पीता रहता है। अहंकार के द्वारा हम कर्म करते हैं। अहंकार में दोनों हैं, अहंकार भी और चेतन भी; अहम् के द्वारा हम कर्म करते हैं, अहम् के द्वारा ही उसका फल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भोगते हैं। यदि ऐसा यज्ञ होवे कि अहम् का कर्म तो होवे, परन्तु वह कर्म मैं न भोग कर परमेश्वर भोगे, भोक्ता बदल दिया जाय तो विलक्षण उपयोग हुआ। ईश्वरार्पण-बुद्धि से हम कर्म करते हैं तो उस कर्म का फल हमें मिलेगा नहीं, परमेश्वर को प्राप्त होगा।

जिस प्रकार रुद्रीय का पाठ पण्डित जी करते हैं, परन्तु आपसे दक्षिणा लेकर समर्पण कर देते हैं, तो फल आपको मिलता है। पाठ उन्होंने किया, फल आपको मिला। इसी प्रकार कर्म हमने किया और फल-अर्पण ईश्वर को कर दिया। जो 'दूध' अभी काम में आ रहा है जीवचक्र के वही फिर सृष्टि-चक्र से निकलने के काम में आ जायेगा। इसलिये वेद ने कहा कि यज्ञ, दान, तप और अनशन इन सबके कारण मनुष्य के मन में विविदिषा, जिज्ञासा उत्पन्न होती है। यही भगवान् ने गीता में कहा कि अपना-अपना कर्म करते हुये संसिद्धि को प्राप्त करते हैं। अपना-अपना कर्म सब लोग करते ही हैं, संसिद्धि कोई कब प्राप्त करता है? जब भगवान् को अर्पण करता है; क्योंकि तभी संसिद्धिरूप परमेश्वर को प्राप्त करता है। अन्यथा सब अपने-अपने कर्म का फल भोगते रहते हैं। अपने कर्मों के द्वारा परमात्मा की अभ्यर्थना करे तो सिद्धि को, मोक्ष को प्राप्त करता है।

भीम दूध लेने के लिये गया। ईश्वरार्पण-बुद्धि से कर्म कौन कर सकेगा? 'भीम' विचार है। विचार बहुत भयंकर होता है, इतना भयंकर कि विचार करते-करते मनुष्य कहाँ पहुँच जायेगा, इसका कोई ठिकाना नहीं। भगवान् भाष्यकार कहते हैं 'अविचारकृतो बन्धो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विचारेण निवर्तते' अविचार के कारण ही हमारा बन्धन है और कोई हमारे बन्धन का हेतु नहीं है। विचार के द्वारा अविचार से हुआ बन्धन निवृत्त हो जाता है। मनुष्य सांसारिक कार्यों को सोचता है कि कर्तव्य है। विचार करो, जब मरेंगे तो ये कर्तव्य हमारे साथ जायेंगे क्या? जहाँ विचार जाग्रत् होगा वहाँ ये सब चीज़ें अपने-आप उखड़ जायेंगी। भीमरूप शास्त्रविचार ही जाकर दूध लेता है। जब विचार ईश्वरार्पण-बुद्धि से करने जाता है, तबं विचार का पीछा पुरुषमृग करता है : अहंकार पूछता है 'मुझे क्या मिलेगा?' जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों शिवलिंग हैं। जाग्रत् में अहंकार रहता है, स्वप्न में रहता है, सुषुप्ति में भी (बीजरूप से) अहंकार रहता है। जाग्रत् का शिवलिंग स्थापित करो, जाग्रत् का विचार करो। फिर स्वप्न का शिवलिंग स्थापित करो, स्वप्न का विचार करो। तब सुषुप्ति का शिवलिंग स्थापित करो, सुषुप्ति का विचार करो। तीनों अवस्थाओं का विचार करते-करते सर्वथा अहंकार और चेतन ये दोनों अलग समझ आ जाते हैं। एक तरफ वह पुरुषमृग, अहंकार पकड़ लेता है। हमें जब ज्ञान होगा, अहंकार बचेगा कि नहीं बचेगा? पुरुषमृग यही है कि मेरा अहम् बचेगा कि नहीं। इसलिये विचार बड़ा भयंकर, भीमरूप है।

मैं का पता लगना सबसे 'भीम', भयप्रद है। जिस मैं को दो टुकड़ों में अन्य कोई नहीं कर सकता उसे विचार दो टुकड़ों में फाड़ देता है। शिवलिंगों के पास से पुरुषमृग निकला तो हर-एक की पूजा की। अनात्मरूप जंगल और आत्मरूप चेतन के बीच में भीम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के पैर आये। अहंकार अन्त में उस पैर को पकड़ता है, पूछता है 'कौन बद्ध हुआ और कौन मुक्त हुआ?' युधिष्ठिर के पास जाते हैं कि दोनों में किसका अधिकार है। युधिष्ठिर फैसला देते हैं 'न तेरा दोष, न इसका दोष, न चेतन का, आत्मा का दोष है, न अहंकार का अनात्मा का दोष है। आत्मा और अनात्मा को एक करके मिलानेवाली मायारूप मेरा ही सारा खेल है। इसलिये तुम ही मेरा आधा हिस्सा ले लो, ब्रह्म और माया को अलग कर दो।' पुरुषमृग इस बात को समझ लेता है कि ईश्वर के दो हिस्से क्या करे! वह एक ही अखण्ड चेतन अपनी शक्ति से दीख रहा है, उसे चाहे माया नाम से कहो, चाहे ईश्वर नाम से कहो। जैसे खाने की शक्ति है। मान लो हम तुम्हारे घर आये, तुमने कहा 'महाराज, बहुत बढ़िया पकोड़ा बना है खा लो।' क्या हम कहेंगे कि 'अपने खाने की शक्ति भूल आये हैं।' जहाँ भी जाऊँगा, वहाँ मेरी शक्ति साथ ही जायेगी। मैं उसे प्रकट करूँगा तो होगी, नहीं प्रकट करूँगा तो नहीं होगी। खाने की शक्ति तो है, पर यदि नहीं खाना है तुम्हारे घर, तो कह देंगे कि भूख नहीं है। मेरे रहते मेरी खाने की शक्ति कहीं जाती नहीं है। इसी तरह परमेश्वर की शक्ति कहीं दूर होती नहीं है। इसलिये आगे कहेंगे सारे कर्म, सारी कामनायें, सारे गन्ध, सारे रस सब कुछ इसी के हैं। जैसे युधिष्ठिर ने जिम्मा अपने ऊपर ले लिया वैसे ही परमेश्वर कहता है कि मेरी माया के कारण अध्यास होकर यह खेल हुआ, कसूर न इसका, न उसका। विचार पूरा होने के बाद ईश्वर ने सारा दोष अपने ऊपर ले लिया। गीता में भगवान् ने कहा कि मैं सब प्राणियों के अन्दर बैठा हुआ उन सबको घुमा रहा हूँ। प्राणी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सोचते हैं अहंकार के साथ बद्ध होकर 'हम घूम रहे हैं'। वे घूमने वाले बन रहे हैं। वे तो कठपुतली हैं, चलानेवाला तो ईश्वर ही है।

जैसे अन्त में पुरुषमृग ने नरभक्षण छोड़ दिया, ठीक इसी प्रकार जब ज्ञान हो जाता है, तब शरीर भले ही रहे, चेतन और अहम् मिले रहें, लेकिन अब सुख-दुःख का भोग नहीं होगा। जब पता चल गया कि सारा खेल ईश्वर का है, मैं केवल साक्षिमात्र हूँ, तब सुख-दुःख का भोग नहीं होगा। जैसे पुरुषमृग ने नरभक्षण छोड़ दिया वैसे ही जीवन्मुक्त पुरुष सुख-दुःख की प्रवृत्ति छोड़ देता है। इसलिये कहा कि जब यह ब्रह्मस्वरूप को जान लेता है, तब शान्त होकर उपासना में लग जाता है।

❖

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन : तीसरा

(३.४.९८)

शाण्डिल्य महर्षि बतलाते हैं कि जो कुछ भी हमें प्रत्यक्ष आदि दीख रहा है, वह ब्रह्म है। मन और इन्द्रियों का जो भी विषय, वह सब इदम्-शब्द से कहा। इदम् अर्थात् यह। काल की भी हमें प्रतीति होती है कि यह काल है, समय बीत गया। इन्द्रियों से प्रत्यक्ष न होने पर भी मन के द्वारा काल का ज्ञान होता है। अत: वह भी 'यह' के अन्दर आ गया। इदम् के अंत:पाती हो जाने से वह कार्य है, कारण नहीं हो सकता। काल की तरह देश की, आकाश की प्रतीति होती है, स्वभाव की, नियति की, यदृच्छा की प्रतीति होती है। अत: ये सब कार्य हैं, कारण नहीं। किसी आदमी का स्वभाव गरम है, किसी का ठण्डा है। इन सब बातों का ज्ञान किससे होता है? क्या आँख से देख कर पता लगता है? क्या थर्मामीटर लगाने से पता लगेगा कि आदमी गरम है? उसके व्यवहार को देखकर हमें ज्ञात होता है कि स्वभाव गरम है या ठण्डा है। जितना उसको उद्विग्न किया जाता है, पर वह उद्विग्न होता नहीं, तो शान्त स्वभाव वाला पता चलता है। नियति जिसको 'किस्मत' कहते हैं, उसका पता भी देखकर नहीं लगता। कार्य देखकर पता लगता है कि हमारी किस्मत साथ नहीं दे रही। आँख से तो नहीं दीखती, लेकिन मन से पता लगता है। यदृच्छा आजकल का खास देवता है, जिसे अंग्रेजी में 'चांस' कहते हैं। वह भी आँख से तो दिखाई देता नहीं, कार्य से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन उसका अनुमान करता है। ये सब कारण इसलिये नहीं हो सकते कि इन सबका मन अनुभव करता है और मन जिसका अनुभव करता है, वह कार्य है।

साहित्य में कम-से-कम तीन बड़े प्रसिद्ध शाण्डिल्य महर्षि हुए हैं। एक तो जिनका नाम यहाँ वेद में आया है। इनके कुछ अन्य वैदिक सूक्त हैं और एक उपनिषद् भी 'शाण्डिल्य उपनिषद्' प्रसिद्ध है। ये हैं वैदिक शाण्डिल्य। यहाँ इनका नाम है, अन्य भी शाखाओं में आता है। दूसरे पौराणिक शाण्डिल्य हैं। ब्रह्मवैवर्त, नारदीय पुराण आदि के अन्दर शाण्डिल्य महर्षि का वर्णन आया है, जो भगवान् विष्णु के बड़े भारी भक्त हुये हैं। इनके द्वारा शाण्डिल्य भक्तिसूत्र भी लिखे गये हैं। पुराणों में कई जगह उनके लिखे भक्ति-वचन आते हैं। उनका स्वतन्त्र ग्रन्थ 'शाण्डिल्य भक्तिसूत्र' है। तीसरे, पांचरात्र आगम के अन्दर शाण्डिल्य महर्षि का वर्णन आया है, जिसका उद्धरण भगवान् शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में (२.२.४५) लिखा है। तीनों के मतों में भेद हैं, इसलिये तीनों व्यक्ति अलग हैं, परन्तु सभी एक ही गोत्र-परम्परा में हुये।

कल बतलाया था कि पत्थर पर माँडना माँडने से आदमी दिखाई देता है, औरत भी दिखाई देती है, पहाड़, पत्थर, पेड़, नदी सभी दिखाई देते हैं। 'पेड़ दीख रहा है' ऐसा ही बोध होता है। 'यह पेड़ है' इस ज्ञान में 'यह पत्थर है' यह सत्य का ज्ञान नहीं होता। है वहाँ सारा माँडना पत्थर पर परन्तु वहाँ जो पहाड़ में पत्थर दीखता है अथवा नदी के घाट पर बने हुये सोपान, सीढियाँ उन पर पत्थर दीखता है, वह भी अधिष्ठानभूत पत्थर नहीं। जहाँ आरोपित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पत्थर देख रहे हैं, वहाँ अधिष्ठान भी पत्थर है। विचार करो तो अधिष्ठानरूप पत्थर भ्रमरूप में नहीं दीख रहा। अधिष्ठान पत्थर तो चिकना, संगमरमर का है। पहाड़ का पत्थर खुरदरा, ऊँचा-नीचा दीख रहा है, सीढ़ी में लगा पत्थर नीला, लाल दीख रहा है। अधिष्ठान पत्थर तो दीवाल के ऊपर होने से ठीक समकोण बना रहा है, परन्तु जो पत्थर सीढ़ी में दिखाई दे रहा है, वह धरती के समानान्तर है। चित्र में पत्थर तो दीख रहा है, परन्तु जैसा सत्य पत्थर है, वैसा नहीं दीख रहा है। पेड़, आदमी आदि में तो पत्थर का कोई ज्ञान नहीं। इसी प्रकार यह विश्व माँडना माँडा हुआ है, परमात्मा ने। जितनी चीज़ें हैं, सब उसी के अन्दर मँडी हुई हैं, परमेश्वर के ऊपर ही सारा माँडना मँडा हुआ है। इतना याद रखना कि माँडने वाला वही है, जो इसका अधिष्ठान है।

आचार्य वाचस्पति मिश्र कहते हैं 'स्वशक्त्या नटवद् ब्रह्म कारणं शङ्करोऽब्रवीत्'। आचार्य शंकर ने कहा कि अपनी शक्ति से जैसे नट, ऐन्द्रजालिक सारा खेल दिखला देता है, किसी दूसरे की सहायता से नहीं, इसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा अपनी मायाशक्ति के द्वारा इस सारे संसार को प्रकट करता है, उसे किसी बाह्य शक्ति की आवश्यकता नहीं। जो कुछ हमें दीख रहा है, वह सारा उसी परब्रह्म परमात्मा के ऊपर मँडा हुआ है। ब्रह्माजी से लेकर घास के तिनके तक सब कुछ उसी के ऊपर अंकित हुआ है। वह परब्रह्म परमात्मा चेतन है, पत्थर की जगह; जैसे माँडने के अन्दर पेड़ पत्थररूप नहीं दीखता, उसी प्रकार जड पदार्थ ज्ञान वाले नहीं दीखते, चेतनरूप से नहीं दीखते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जहाँ-जहाँ अंतःकरणवाले प्राणी हैं, वहाँ चेतन दीखता ही है, लेकिन जैसे माँडने के पहाड़ में या सीढ़ियों में पत्थर दीखता है, परन्तु वह अधिष्ठान पत्थर नहीं दीख रहा है, इसी प्रकार अंतःकरण वाले प्राणियों के अन्दर चेतन प्रतीत होता है, जाननेवाला प्रतीत होता है, परन्तु वह सच्चा चेतन नहीं है। क्यों नहीं है? अधिष्ठान परमेश्वर तो है सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् और जो हम लोग अंतःकरण वाले जीवों को देखते हैं, वे सब-के-सब हैं अत्यल्पशक्तिमान्, परिच्छिन्न। यद्यपि ये चेतन दीखते हैं, तथापि इनकी चेतनता उपाधि के अधीन होकर परिच्छिन्न बनी हुई है।

इस फरक में कारण है कि बनानेवाले ने बनाई ही दो तरह की चीज़ें हैं—जड और चेतन। दो तरह की चीज़ें बनाने की जरूरत क्या थी? संसार का चक्र चलेगा कर्म से। कर्म तुम कर सकोगे जब तुम चेतन हो। जड में कर्म नहीं होते। कहीं झगड़ा हुआ, तुम्हारे सिर पर पत्थर मारा, सिर फूट गया, रक्त की धारा बह गई। उस पत्थर को जेल होगी क्या? खोपड़ा तुम्हारा किसने फोड़ा? जिस आदमी ने पत्थर फेंका उसने तुम्हारा खोपड़ा तो नहीं फोड़ा, खोपड़े पर तो पत्थर ने चोट की, परन्तु जेल किसे होती है? उस आदमी को होती है, पत्थर को नहीं; क्योंकि पत्थर जड है और आदमी चेतन है। संसार के अन्दर जड पदार्थ की पूजा करते हैं और चेतन पदार्थ की भी पूजा करते हैं। जड पदार्थ के कर्म से धर्माधर्म पैदा नहीं होते। हम चूँकि चेतन हैं, इसलिये हमारे द्वारा जो किया जाता है, उससे धर्माधर्म पैदा होते हैं। धर्माधर्म पैदा होवे, तभी उन्हें भोगने के लिये सृष्टि-चक्र चले। अतः परमेश्वर ने भोग देने के लिये जड चीज़ों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बनाया और भोगने के लिये चेतन चीज़ों को बनाया। कर्म करने के साधनरूप से जड चीज़ों को बनाया और कर्म करनेवाले रूप से चेतनों को बनाया। हम लोग जितने कर्म करते हैं, सब किसी-न-किसी जड के आधार पर करते हैं। दीखता है कि इस आदमी ने पत्थर मारा। विचार करके देखो तो उस आदमी के हाथ ने पत्थर मारा। दण्ड किसे मिलता है? आदमी को मिलता है। इसलिये लोक में प्रसिद्धि भी है कि गाली देकर जीभ तो अन्दर चली जाती है और जूते सिर को पड़ते हैं। सिर को जूते क्यों मारते हैं, सिर ने तो गाली दी नहीं! क्योंकि गाली देने वाला और सिर वाला एक ही है। जितने भी कर्म हम करेंगे वे शरीर से, मन से, इन्द्रियों से करेंगे। वे सारे जड पदार्थ हैं, परन्तु चूँकि चेतन जीव इनके द्वारा करता है, इसलिये उसे फल मिलता है। अन्यथा, हाथ से हमने किसी की गर्दन काटी, पुलिस अफसरों को रुपये पकड़ाते चले गये, जन्मभर हमें दण्ड मिला नहीं। हम मर गये तो दण्ड मिलना नहीं चाहिये; क्योंकि हाथ ने मारा था, वह तो जल गया! जैसे पत्थर ने सिर नहीं फोड़ा, हमने फोड़ा, उसी तरह हाथ ने नहीं मारा, हमने मारा, हम मरकर भी बने रहते हैं इसलिये पुनः पुनः कर्मों को भोगते रहते हैं। इसलिये दोनों चीज़ें बनाईं। जो जीव की चेतनता चित् का आभास है, चिदाभास वह चित् नहीं है, चित् की तरह प्रतीत होता है। सत्यचित् तो वह है, जो सारे चेतनों का आधार है। सारे जीव इसमें कल्पित हैं। सच्चा तो केवल वह परमेश्वर है।

कहोगे कि यदि परमेश्वर के द्वारा सब चलाये जा रहे हैं, तो हमारी जिम्मेदारी कैसे? हमारी जिम्मेदारी इसलिये कि छोटे-छोटे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

टुकड़ों को हमने अपना मान लिया है। पूर्ण दृष्टि हो जाये तब तो जैसे परमेश्वर को कोई कर्म का भोग नहीं वैसे ही हमें न हो। परन्तु हमारी परिच्छिन्न दृष्टि है, सीमित दृष्टि है, इसलिये फल हमें भोगना पड़ता है। कल बतलाया था किं जो कपड़ा माँडने में मँडा हुआ दीखता है, वह न गर्मी दे रहा है, न किसी चीज़ को ढाँक रहा है, फिर भी प्रतीत हो रहा है वस्त्र की तरह; इसी प्रकार जीव चेतन की तरह प्रतीत हो रहा है। जब-जब अंत:करणवृत्ति से ज्ञान पैदा होता है, तब-तब अपने को ज्ञाता समझता है और जब वृत्ति नहीं बनती, तब नहीं समझता कि मैं जाननेवाला ज्ञाता हूँ। सचमुच में तो जैसे अंत:करण की वृत्ति से जानता है, वैसे ही उसके अभाव को भी जानता है। इसका ज्ञान नित्य है।

जब नाम-रूप-कर्मात्मक कार्यों पर ध्यान केन्द्रित रहता है, तब वास्तविकता को देख नहीं पाते। कपड़े पर जितनी सुन्दर चित्रकारी होगी, उतना उस कपड़े की मजबूती की परीक्षा कम करोगे, गहना जितना सुन्दर होगा, उतना उसके धातु की परीक्षा कम करोगे। टेलीविजन के सौ नुकसान जान लो पर सुन्दर चित्र देखने का क्रम नहीं छोड़ पाते। परमेश्वर ने भी इतनी सुन्दर सृष्टि रची है कि लाख विचार करें तो भी इससे वैराग्य नहीं हो पाता।

सोने को 'हिरण्य' क्यों कहते हैं? हितं च रमणीयं च, वह हितकारी एवं रमणीय है। सृष्टि हितकारी है : अगर धर्म का पालन करके अन्त:करण की शुद्धि करके परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर लो, तो परम मोक्ष को प्राप्त कर सकते हो। इसलिये हितकारी है और रमणीय भी है, सुन्दर इसे देखते ही हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि तुम सचमुच में जो पत्थर है उसे देखना चाहते हो, तो माँडना धोना पड़ेगा। माँडना धुल जायेगा, तो तुमको वह पत्थर साफ दीख जायेगा, जिसके ऊपर वह सब बना हुआ था। इसी प्रकार जब हम इदम् का बाध करें तब ब्रह्म का यथार्थ ज्ञान होगा। माँडना व्यावहारिक है और पत्थर भी व्यावहारिक है, इसलिये व्यावहारिक पानी के द्वारा उसको धोना पड़ता है। परब्रह्म परमात्मा तो पारमार्थिक है और माँडना मायिक होने से व्यावहारिक है। पारमार्थिक सृष्टि नहीं है, जिसे हटाने के लिये कोई पारमार्थिक पदार्थ चाहिये। तुमको ये सारी चीज़ें सुन्दर इसलिये दीख रही हैं कि तुमने इनके ऊपर विचार नहीं किया। इसलिये पदार्थों को हटाना नहीं पड़ता, पदार्थ वैसे ही बने रहते हैं, लेकिन उनके प्रति जो आकर्षण है उसे हटाना पड़ता है। इसलिये भाष्यकार ने 'शांत उपासीत' का अर्थ किया राग-द्वेष से रहित होकर इस सारी सृष्टि के अन्दर सद्ब्रह्म को देखें। वैराग्य होता है अपने अनुभवों को याद करके। जब अपने दुःख के अनुभव याद आते हैं, तब वैराग्य होता है और सुख के अनुभव याद आते हैं, तो राग होता है।

डॉक्टरों के अनुसन्धान प्रकाशित होते हैं, वे लिखते हैं 'हमने हजार रोगियों को देखा, सात सौ रोगियों को कम फायदा हुआ, दो सौ रोगियों को अच्छा फायदा और सौ रोगियों को कोई फायदा नहीं हुआ। इसलिये यह दवा सम्भवतः कुछ फायदा करती है।' जैसा पाया वैसा बतला दिया। होम्योपैथी की मैगेजीन में कभी नहीं लिखते कि हमारे यहाँ इतने रोगी ठीक नहीं हुये! खाली सफलता की कहानी ही लिखते हैं। शतप्रतिशत कोई दवा काम कर जाये यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुद्धिमान् को जँचेगा नहीं। इसका मतलब है कि जितनी असफलता हुई उसको वे सामने रखते नहीं, खाली सफलता को प्रकट करते हैं। इसी प्रकार विज्ञापन करनेवाले अपनी चीज़ की खराबी कभी नहीं बतलाते। ऐसा तो नहीं हो सकता कि उनको अच्छाई ही पता है और उसमें कोई खराबी नहीं है। इसी प्रकार, सृष्टि के अन्दर अच्छाई भी है और बुराई भी है।

वेदानुसारी छह शास्त्र उसकी अच्छाई भी बता देते हैं और बुराई भी बता देते हैं। इसलिये वैराग्य को अपने यहाँ खाली राग का नहीं होना नहीं कहा। प्रायः लोग समझते हैं कि हमें जिस चीज़ में राग नहीं है उससे वैराग्य हो गया। अनुभूतिस्वरूपाचार्य प्रकटार्थविवरण में कहते हैं कि 'वैराग्य राग का नहीं होना नहीं है, वह तो एक भाववृत्ति है।' यदि किसी चीज़ से तुमको सुख होता है और वह सुख परमात्मा के विचार में बाधा देता है, तो तुम उसके प्रति राग को काट सको, ऐसी सामर्थ्य वैराग्य है। दृष्टान्त दिया, जैसे हमारे हाथ में कुल्हाडी है, हम जंगल में से निकल रहे हैं, हरेक पेड़ को काटते हुये तो नहीं जायेंगे, हम अपने रास्ते जाते हैं, यदि कोई डाली हमारे रास्ते में रुकावट डालती है, तो हम काटते हैं; क्योंकि हमारे पास हथियार है। इसी प्रकार जब तक जीयोगे तब तक पदार्थों से व्यवहार भी करोगे। परन्तु व्यवहार करते समय यदि राग रुकावट डाले तो उसे काटने की सामर्थ्य होनी चाहिये। वह सामर्थ्य इसलिये नहीं हो पाती कि हम चीज़ों की अच्छाई और बुराई दोनों को नहीं जानते। अच्छाई देख कर चीज़ों से व्यवहार करो, परन्तु बुराई को देख कर काटने की सामर्थ्य रखो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक बार एक महात्मा किसी गाँव से निकल रहे थे। उधर से अपने सिर के ऊपर दूध-दही इत्यादि की हँडिया लेकर औरतें जा रही थीं। आपस में गप्पें मार रहीं थीं, औरतों की आदत होती है। सामने एक पत्थर पड़ा हुआ था। एक औरत को ज़ोर से ठोकर लगी वह गिरी, बाकी सब उसकी ओर ध्यान दे रहीं थीं, तो वे भी धड़ाम-धड़ाम गिरीं। प्राचीन काल था, मिट्टी की हँडिया थीं, सब फूट गईं। जो कुछ उसमें दूध-दही था, सब इधर-उधर फैल गया। वे औरतें रो रहीं थीं कि घर जायेंगे तो सास-ससुर जिन्दगी खराब कर देंगे कि इतना भी ध्यान नहीं देते। एक औरत रोई नहीं और बैठे-बैठे मुस्कुरा रही थी! महात्मा को बहुत आश्चर्य हुआ, उसके पास गये, कहने लगे 'ये सब रो रहीं हैं, तुम क्यों नहीं रो रही हो?' उसने कहा 'इसमें रोने की कोई बात नहीं है। मेरे लिये इसमें रोने की बात नहीं।' 'तुझमें क्या विशेषता है?' कहने लगी 'एक तरफ बैठो तो मैं कुछ कहूँ।'

एक तरफ लेकर गई, वहाँ बैठाकर कहा : 'मैं अमुक राज्य में रहती थी। मेरा विवाह होकर मैं दूसरे राज्य में चली गई। वहाँ का राजा एक बार मेले में आया हुआ था। मैं अपने पति के साथ मेले में गई हुई थी। पुराना जमाना था, औरतें घूँघट में चलतीं थीं। भीड़ में पति से मेरा हाथ छूट गया। पुराने जमाने में औरतें पढ़ी-लिखी तो होती नहीं थीं, आदमी ही नहीं होते थे पढ़े-लिखे! थोड़ी देर तक तो मैं इधर-उधर देखूँ कि आदमी आये। बिना देखे किसी का हाथ पकड़ा तो उसने झटक दिया। तब मुझे होश आया कि पति कहीं खो गया। अब मैं क्या करती? राजा आया हुआ था, लोग उसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पास ले गये। राजा ने पूछा 'तू कौन है?' पुराने जमाने की औरतें दूसरे आदमी से बोलें कैसे! राजा को वहम हो गया, उसका घूँघट खोल दिया, वह अत्यन्त सुन्दरी थी। राजा ने विचार किया कि 'इतनी सुन्दर है, तो इसे अपनी पत्नी बना लूँ'। मैंने बहुत मना किया। समझाया कि मेरा विवाह हो चुका है। उसने ठिकाना पूछा। मुझे पता नहीं था। बाकी लोग कहने लगे कि झूठ बोलती है, कुछ तो याद होता ही है। राजा ने बलात् ब्याह कर लिया। राजा के यहाँ पत्नी की तरह रहने लगी। बच्चे भी हो गये। आठ दस साल गुजर गये। राजा ने मुझ पर कोई रुकावट करना छोड़ दिया। इधर-उधर घूम लेती थी।

मेरा पहला पति मुझसे बड़ा प्रेम करता था। उसको दुःख था कि मेले में ले गया और खो गई। उसने मेले में बहुत ढूँढा, बाद में भी ढूँढा पर मैं मिली नहीं। मुझे ढूँढते हुये घूम रहा था कि कहीं मिल जाऊँ। मैं महल के अन्दर चहलकदमी कर रही थी, वह उधर से निकला मैंने उसे देखा, तो झट पहचान लिया। इशारे से कहा 'तुम दूसरे दरवाजे से आओ।' उससे मिली। रोने लग गई कि 'आपने मुझे छोड़ दिया। मुझे ले जाओ।' वे कहने लगे 'गलती तो मेरी थी लेकिन मैं तब से ढूँढ रहा हूँ। तुम तो रानी बनकर बैठ गई।' मैं कहने लगी 'मैं रानी नहीं बनी, मुझे तो जबरदस्ती यहाँ बैठा दिया। मैं तो आपको ही पति समझती हूँ। लेकिन यहाँ से निकलने का कोई तरीका निकालना पड़ेगा। राजा मुझे ऐसे ही छोड़ तो नहीं देगा, अब तो बच्चे भी हो गये हैं।' पति ने विचार करके कहा 'एक ही उपाय है, मैं तुझे जहर लाकर देता हूँ, तू रात को राजा को जहर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दे दे, तो हम लोग आज ही यहाँ से निकल जायेंगे। और कोई उपाय है नहीं।' मान लिया उसका कहना और मैंने राजा को जहर उनके दूध में डाल कर दे दिया और वे पी कर सो गये। मुझे पता था कि वे मर जायेंगे, मैं चली जाऊँगी। हम लोगों ने निश्चय किया था कि नदी के किनारे श्मशान में रात में मिलेंगे। वहाँ कोई जल्दी जाता नहीं रात के समय। मैं वहाँ पहुँची तो देखा कि पति को सर्प ने काटा जिससे वह मर गया!

राजा को मार दिया था। अब वापस तो जा नहीं सकती थी। श्मशान में जाकर पति को देखा कि उसे सर्प ने डस लिया। वहाँ से भागी। उपाय क्या था! लोगों को पता चल जायेगा सवेरे कि मैंने राजा को जहर दे दिया होगा। रातों-रात वहाँ से भागकर दूसरे देश में चली गई। कुछ दिन बर्तन माँजे, कुछ कार्य किये। वहाँ जिसके यहाँ काम करूँ वही मेरी तरफ बुरी नजर रखे। उसको छोड़ूँ, दूसरी जगह जाऊँ तो वहाँ भी यही होवे।

अन्त में इन सबसे परेशान होकर मुझे किसी ने सलाह दी 'तू वेश्या बन जा, तुझे कोई छोड़ेगा तो है नहीं। पास तुम्हारे कुछ है नहीं।' तो वहाँ गणिका बनी, वेश्या हो गई। उससे मेरा जीवन-निर्वाह तो हो रहा था, पर मुझे संतोष नहीं था। एक दिन एक जवान आदमी आया, उससे बात चल रही थी। पन्द्रह-बीस साल हो गये थे राजघराने से निकले। बात होने लगी तो धीरे-धीरे पता चला कि वह वहाँ का राजकुमार था, मेरा ही बेटा था! यह जानकर बहुत दुःखी हुई। इतना बड़ा पाप मुझसे भी हो गया और पुत्र से भी हो गया! हमने निर्णय किया कि इस पाप का एक ही प्रायश्चित्त है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोनों चिता में बैठ कर अपने प्राण छोड़ दें। हम लोग चिता में प्रविष्ट हुये। लेकिन मेरा प्रारब्ध इतना विचित्र था कि वह लड़का तो जल गया, तब तक पानी जोर से बरसा, इतने जोर से कि मैं बह गई! बहकर इस गाँव के किनारे आ गई। एक ग्वाले ने मुझे बचाया और मैं इसके घर रहने लगी। आज छाछ लेकर जा रही थी। इन सब अनुभवों के बाद मैं इस छाछ को क्या रोऊँ! रानीपने को रोऊँ, पहले पति को रोऊँ, वेश्या बनी उसको रोऊँ या मेरे साथ इतना भयंकर बिना जाने पाप हुआ उसको रोऊँ या अग्नि से भी बचकर निकल कर आ गई उसको रोऊँ? किस-किस को रोऊँ! मैं कैसे रो सकती हूँ इस मटकी के लिये?'

यह केवल एक गोपगृहणी की बात नहीं समझना। गो नाम है इन्द्रियों का। इन्द्रियों का जो पालन करे, वह गोप है जीव, उसकी गृहणी है बुद्धि। जब दुःख आता है तो सहन नहीं होता, रोने लगती है, परन्तु बुद्धि याद करे कि जन्म-जन्मान्तरों में कैसे-कैसे अनुभव किये। जीव के साथ बुद्धि हमेशा रही है, सत्ययुग में भी यही बुद्धि थी। तब धर्म चतुष्पात् था, सभी लोग धर्म का पालन करते थे। तब बुद्धि पतिव्रता थी, सत्ययुग के अन्दर परमेश्वर की दृष्टि से रहती थी। जब उसने त्रेता में प्रवेश किया तो एक पाद धर्म का कम हो गया। अब बुद्धि अपने पति से वियुक्त हो गई। त्रेतायुग में आकर परमात्मा की तरफ न रह, वह प्रवृत्त होने लग गई अनात्म पदार्थों की तरफ। अनात्म पदार्थों का राजा अज्ञान है, तो वह बुद्धि ज्ञान के बजाय अज्ञान की तरफ लग गयी। यदि विचार करो तो बचपन से यही हाल है। जब बालक छोटा है, छह महीने-सालभर का, तब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसका पदार्थों के साथ कोई राग-द्वेष नहीं होता। छह महीने के बालक के हाथ में सौ रुपया होवे, तुम उसे टाफी दिखाओ तो नोट तुम्हें दे देगा, टाफी ले लेगा। उसको पता नहीं कि इतने रुपये में सौ टाफी आ जायेंगी।

जैसे बड़ा होने लगता है वैसे राग-द्वेष वाला होता चला जाता है। नृप अर्थात् मनुष्य का पालन करने वाला अज्ञान है। अब बुद्धि अज्ञान की तरफ लग गई। अब कभी उसको पुराने संस्कार से परमात्मा की स्मृति होती है। जब स्मृति होती है, तब सोचती है कि इस नृप को छोड़ दे। लेकिन अब तक उसने इतना पाप का बोझ अपने सिर पर बाँध लिया है कि जब वह परमात्मा की तरफ जाती है, तो उसको लगता है, परमात्मा तो साँप से डसा गया! जब हम परमात्मा की तरफ गये, परमात्मा के सामने हमने बातें कीं 'हमारा यह काम हो जाये, वह काम हो जाये'। जब पाप का बोझ है, तो वे काम हो नहीं सकते, समय आने पर ही होंगे। देखते हैं कि परमात्मा तो कोई काम नहीं करता। इसकी अपेक्षा दो सौ रुपया सेल्सटैक्स अफसर को देकर काम कर लें। इसके फलस्वरूप गणिका हो जाती है! गणिका जो सामने आया उसी को अपना पति मान लेती है। इसी प्रकार बुद्धि जिस-जिस चीज़ को देखती है, उसी चीज़ का आश्रय लेने लगती है। भिन्न-भिन्न देवताओं का आश्रय लेती है। परब्रह्म परमात्मा ही अनन्त शक्तियों का आश्रय है।

परन्तु उसको छोड़कर गणिका हो जाती है, तब छोटी-छोटी शक्तियों वाले दूसरों को देखती है। वे चाहे दूसरे प्राणी होंवे जैसा कहा सेल्सटैक्स, इन्कमटैक्स अफसर होवें, ग्रह-नक्षत्र, तारे होवें,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवता होवें, हैं सब परिच्छिन्न। जब जिसकी आवश्यकता हुई तब गणिका की तरह उसी को पकड़ने लगती है। किसी एक पर स्थिर नहीं हो पाती। परमात्मा के ही सारे रूप हैं, तो हम किसी का भी ध्यान करें, हो तो परमात्मा का ही ध्यान रहा है। लेकिन जैसे जमीन के नीचे सौ फुट पर पानी है। एक जगह सौ फुट खोदोगे तो पानी मिल जायेगा, दस-दस फुट दस जगह खोदोगे तो पानी नहीं मिलेगा; इसी प्रकार परमात्मा है तो सारे रूपों में, लेकिन एक रूप पर स्थिर होकर रहोगे तब तुम्हें उसके परमात्मस्वरूप का पता लगेगा, अन्यथा तुम्हारी बुद्धि स्थिर नहीं हो पायेगी। अन्त में देखती है कि जिन विषयों का मैं भोग कर रही हूँ वे सारे हैं क्या? विचार करो, किसी भी विषय में भोगरूपता देनेवाली बुद्धि ही निश्चय करती है कि अमुक चीज़ भोग का विषय है। वह पदार्थ तो नहीं कहता! छोटा बच्चा अपने मल-मूत्र को मुँह में डाल लेता है। बुद्धि का ही निश्चय है कि क्या मेरा भक्ष्य है, क्या नहीं। छोटे बच्चों को छोड़ो, बड़ी उम्र के ऐसे आदमी देखे जाते हैं जो माँस अण्डा मुँह में डाल लेते हैं, सोचते हैं कि ये भी खाने की चीज़ें हैं। बुद्धि का ही निश्चय है कि क्या चीज़ खाने की है और क्या नहीं खाने की है।

पदार्थ में भोग्यरूपता लानेवाली है बुद्धि ही, भोग्यरूपता को लाकर उसी का भोग करती है! इस बात को समझ जाती है कि मैं ही इसकी माता हूँ, इसमें भोग्यता मैं ही लाई हूँ, तो चाहती है कि मैं इस भोग से छूट जाऊँ। भोग्य से कब छूटे? जब भोग्य और बुद्धि दोनों को जला दिया जाये। दोनों को जलाने जाते हैं, तो प्रायः भोग्य जल जाता है, पर बुद्धि बच जाती है! जिस चीज़ से हम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैराग्य करते हैं, वह तो हट जाती है, पर बुद्धि बच जाती है। कलकत्ते के अन्दर बढ़िया परवल की सब्जी बनाकर खाते हैं। हृषीकेश में कई पुराने महात्मा बताते थे कि भिक्षा लेकर आओ तो उसे गंगा में धोकर खाओ। दृष्टि थी कि दोषादि धुल जायेंगे। शरीर को पुष्ट करनेवाले तत्त्व ही खाये जायेंगे। यों जीभ पर नियन्त्रण हो जाता है। जब लम्बे समय तक वैसा खा लेते हैं, तो फीकी चीज़ें खाने का अभ्यास हो गया। अब कभी कुंभ के अन्दर जायें, समष्टि में बैठ कर पत्तल में पूड़ी साग आवे तो वह स्वादिष्ट नहीं लगता; क्योंकि अब फीका खाने का स्वाद पड़ गया है! एक-एक विषय तो हट जाते हैं, पर जब तक बुद्धि नष्ट नहीं हो जायेगी, वह दूसरे विषयों में जाकर चिपट जायेगी। चिता के अन्दर प्रविष्ट तो दोनों हुए पर बुद्धि फिर बच गई। जब इन चीज़ों को याद करें, तो छोटे-से नुकसान का क्या विचार करें! जीवमात्र यदि अपने सारे अनुभवों को बार-बार विचार करके देखे, तब तो पता चल जाता है कि संसार के पदार्थों में कुछ अच्छाई है, कुछ बुराई है। परन्तु जब ये हमारे राग या द्वेष के विषय होने लग जायें तब हमें इनको काटकर अलग कर देना चाहिये। अन्यथा जब तक हमारे राग का विषय नहीं होते हैं, तब तक उनसे व्यवहार करने में कोई हर्जा नहीं है।

आचार्य शंकर ने कर्म कैसे फँसाते हैं, यह बतलाया है—

'कर्माणि देहयोगार्थं देहयोगे प्रियाप्रिये।
ध्रुवे स्यातां ततो रागो द्वेषश्चैव ततः क्रियाः ॥'

शरीर क्यों मिला? पहले कर्म किये थे 'मैं कर्ता हूँ' इस बुद्धि से, इसलिये शरीर मिला। अब शरीर से सम्बन्ध हो गया, तो कोई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चीज़ प्रिय लगी और कोई चीज़ अप्रिय लगी। गर्मी के मौसम में कोई हवा करे तो प्रिय लगे, कोई तब शाल उढ़ा देगा तो अप्रिय लगेगा! जब तक शरीर है, तब तक प्रिय और अप्रिय रहेंगे ही। गड़बड़ यह होता है कि जो प्रिय लगता है, उसके प्रति राग कर लेते हो, जो अप्रिय लगता है उसके प्रति द्वेष कर लेते हो। फिर राग-द्वेष से प्रवृत्त होकर क्रिया करते हो।

ऐसा चक्र चल क्यों रहा है? 'अज्ञानं तस्य मूलं स्यात्' अगर तुमको यह बात समझ में आवे कि विषय और इन्द्रियों से तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं तो तुम राग-द्वेष नहीं करोगे, व्यवहारमात्र करोगे। इसीलिये भगवान् ने गीता में स्पष्ट कहा कि विषयों का स्पर्श भले करो, उनसे चिपको नहीं। भोग के लिये स्पर्श तो होगा, विषयों और इन्द्रियों का सम्बन्ध हो तब भोग होगा, इसके बिना भोग होगा नहीं, किन्तु रागपूर्वक किया तो 'संस्पर्श' हुआ, इसके फलस्वरूप तुम उसको याद करते हो और वह तुम्हारे दुःख का कारण बनती है। राग के कारण याद करते हो तभी दुःख का कारण बनती है। संस्पर्श काटने का तरीका भगवान् ने साथ ही बता दिया कि विषय और उनसे सम्बन्ध आद्यन्त वाले हैं, उनका आदि अर्थात् प्रारम्भ भी है, अन्त अर्थात् नाश भी है। यह समझ करके उसमें 'रमण' न करे। व्यवहार भले ही करे, परन्तु उसमें मन को रमावे नहीं, बुद्धि को उसमें फँसावे नहीं। जहाँ तक केवल स्पर्श है, वहाँ तक विषय केवल शिवरूप हैं। रागादि होने पर ही सुखादि देते हैं। इस बात को जब समझते हैं तब वैराग्य दृढ हो जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसे वह गोपगृहणी शोक नहीं कर रही थी। ऐसे ही जब जीवन के सारे अनुभवों को इकट्ठा करके विचार करने लगते हैं, तब पता लगता है कि जिन पदार्थों को हम राग-द्वेष के लायक समझते हैं, वे इसके लायक हैं नहीं। परन्तु ब्रह्माजी ने 'भूल' नाम की चीज़ को हमारे ऊपर लाद रखा है; क्योंकि ब्रह्माजी जानते हैं कि याद रखेगा तो गड़बड़ हो जायेगी!

भगवान् ने गीता में कहा है 'मत्तः स्मृतिर्ज्ञानम् अपोहनं च' मैं ही तुमको स्मृति भी कराता हूँ, मैं ही भुला भी देता हूँ। हम भूलते हैं अपने अनुभवों को इसीलिये वैराग्य दृढ हो नहीं पाता। इसी तरह श्रुति हमें बतला रही है कि वैराग्य से राग-द्वेष हटाकर उपासना करें।

❖

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन : चौथा

(२.४.९८)

प्रतीकोपासना के बाद अनंतशक्तिवाले परब्रह्म परमात्मा की 'साक्षात्' उपासना बतला रहे हैं। 'साक्षात्' उपासना के अन्दर परमेश्वर ने जिसे साक्षात् बनाया वह सारा ब्रह्माण्ड है। बाकी चीज़ों को मूलतः परमात्मा ने बनाया, परन्तु कुछ परिच्छिन्नरूप से भी बनाया। जैसे पत्थर को भगवान् ने बनाया, परन्तु पत्थर में हाथ, कान इत्यादि बनाने का काम जीवरूप से उस अनन्तशक्तिवाले परमात्मा ने किया, साक्षात् नहीं बनाया। पत्थर को किसी जीव ने नहीं बनाया, परन्तु उसके अन्दर जो कारीगरी की गई वह जीवरूप से ही की गई। परमात्मा सर्वकर्त्ता है, इसीलिये उपाधि की, अंतःकरण की सृष्टि करके उसमें वही प्रविष्ट हुआ। इस दृष्टि से वही सर्वकर्त्ता है। परन्तु पत्थर को उसने स्वयं, साक्षात् बनाया। उसके अन्दर जो नाक-कान इत्यादि उन्हें जीवरूप द्वारा बनाया। सब कुछ करनेवाला परमात्मा है, तो स्वाभाविक शंका होती है कि फिर जीव क्या करता है? इस शंका का जवाब द्वैतवादियों के पास नहीं है। ईश्वर सब कुछ करता है, तो जीव कुछ करता नहीं। जीव कुछ नहीं करता, तो उसे दण्ड देना बनता नहीं। तुमने नौकर से कहा 'अमुक दुकान से तुम मिठाई ले आओ।' वह उस दुकान से ले आया। अब उससे कहो 'मिठाई तेल की बनी हुई है, तुम्हारी तनख्वाह में से पैसे काट लिये जायेंगे।' वह क्या जवाब देगा? 'सेठजी, या तो यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहते कि बढ़िया मिठाई लाना या जहाँ से बढ़िया मिठाई बनती हो वहाँ से लाना। जब आपने कहा 'उस दुकान से लाओ' और वह तेल की है, तो मेरी जिम्मेदारी नहीं है।' इतने पर भी यदि तुम उसकी तनख्वाह काटोगे तो तुम्हें निर्दय कहा जायेगा। इसी प्रकार यदि जीव से परमात्मा ने गलत काम करवाया और फिर उसे दण्ड दिया तो परमात्मा निर्दय कहलायेगा। इसलिये द्वैतवाद में परमेश्वर को सर्वकर्ता मान नहीं सकते अन्यथा उसे निर्दय मानना पड़ेगा। परन्तु अद्वैतवाद के अन्दर ऐसा विरोध नहीं है; क्योंकि जीवरूप से करनेवाला भी परमेश्वर ही है। परिच्छिन्न उपाधि से, अंतःकरण की उपाधि से वही करता है और वही अपनी व्यापक उपाधि, माया-उपाधि से फल देनेवाला है। क्योंकि करनेवाला और फल देने वाला एक ही है इसलिये कोई दोष प्राप्त होता नहीं। इसलिये शास्त्र कहता है कि स्वयं सारी उपाधियों के आकार को लेकर इसमें जीवरूप से वह स्वयं ही प्रविष्ट हुआ है।

परमात्मा इन सब चीज़ों का निर्माण करता है, वही सबका उपादान होने से सब कुछ ब्रह्मस्वरूप है। जैसे संगमरमर के पत्थर की दीवाल पर माँडना माँडा हो, तो कोई चीज़ पत्थर की तरह दीखती है, कोई पेड़ की तरह दीखती है। इसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा का बनाया जो ब्रह्माण्ड है, इसमें कुछ चीज़ें जडरूप से दीखती हैं। सत् चित् आनन्द ये परमात्मा का रूप है, असत् जड दुःख ये अज्ञान का रूप है। जितने पदार्थ दीखते हैं, उनमें सद्रूपता दीखती है, जिसके द्वारा उसकी उपासना का प्रथम प्रकार बतलाया था। पत्थर पानी आदि जड पदार्थों में जो नाम-रूप हैं उन्हें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छोड़कर उसके हैपने की तरफ ध्यान ले जाना है। बन्धन क्यों होता है? किसी से पूछो 'घड़ा है?' कहता है 'हाँ जी।' उससे पूछते हैं 'घड़े को तुमने आँख से देखा, घड़े का रूप तो तुमने आँख से देखा, जो 'है' बोल रहे हो, उसे किससे देखा? यह कह नहीं सकते कि आँख से देखा। क्योंकि आवाज हो रही है इस बात को कान पता लगाता है! आवाज का कान से पता लगाया, लेकिन आवाज 'है' का पता किससे है?' रात-दिन हम 'है' प्रयोग करते हैं, परन्तु है चीज़ क्या, इसकी तरफ ध्यान नहीं देते। करना क्या है? नाम-रूप को छोड़कर सन्मात्र की तरफ जाना है। परमात्मा की तरफ जाओ। अभी तक तो 'है' को छोड़कर नाम-रूप को देखते हैं। अब उसकी जगह जब कभी नाम-रूप सामने आवे तो उसकी तरफ ध्यान न देकर सद्ब्रह्म की तरफ ध्यान ले जाओ। विषयों के कारणभूत सत् की तरफ दृष्टि ले जानी है। संगमरमर के ऊपर माँडे हुये माँडने में कोई चीज़ पत्थर की तरह दीखती है। उसी प्रकार हमारे अंतःकरण के अन्दर ज्ञानरूपता दीखती है।

हैरूपता की प्रतीति सब जगह हो रही है, परन्तु मन में विशेषता है कि वह हैरूपता के साथ ज्ञानरूपता को भी प्रकाशित कर देता है, उसके अन्दर सत् और चित् दोनों प्रकट हो जाते हैं। ऐसे समझ लो : कोई पत्थर का टुकड़ा या लकड़ी का टुकड़ा तुमने धूप में रखा तो धूप के प्रकाश से वह पत्थर का टुकड़ा या लकड़ी का टुकड़ा दीखता है, प्रकाशित होता है। क्या दीखता है? तो पत्थर का टुकड़ा या लकड़ी का टुकड़ा। किससे दीखता है? प्रकाश से दीखता है। उस पत्थर के टुकड़े पर खूब 'पालिश' कर दो या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लकड़ी पर तेल लगा दो, तो वहाँ सूरज दीखने लग जायेगा! उसमें जो पालिश है उसके कारण सूर्य उसमें प्रतिबिम्बित हो जायेगा। पहले पत्थर ही दीखता था सूर्य के प्रकाश में, अब पत्थर के अन्दर सूर्य का प्रकाश चमकता है। कई बार चमक इतनी तेज होती है कि पता ही नहीं लगता। काँच तो बालु ही है।

एक बार कलकत्ते में किसी के घर भोजन करने गये, जैसे ही कमरे के अन्दर घुसे, देखा कि बहुत बड़ा कमरा है, सामने गद्दी लगी है। गद्दी लगी देखकर चल कर गये तो आगे देखते हैं कि काँच की दीवार है! पीछे की तरफ देखा, दरवाजे के पास गद्दी लगी थी। काँच में प्रतिबिम्ब पड़ रहा था इसलिये कमरा इतना बड़ा दीख रहा था, इधर की गद्दी उधर दीख रही थी। वहाँ काँच था, परन्तु काँच नहीं दीख रहा था, काँच में प्रतिबिम्ब दीख रहा था। इसी प्रकार धूप में काँच रखो तो उसमें सूर्य का प्रतिबिम्ब दीखेगा, सूर्य ही दीखेगा, काँच नहीं-जैसा हो जायेगा।

इसी प्रकार मन की विशेषता है कि इसके अन्दर हमें ज्ञानस्वरूप परमात्मा की प्रतीति हो जाती है। स्वयं मन की प्रतीति कई बार नहीं होती। यहीं से हमारे दुख का भ्रम शुरु होता है। दुःखी कौन होता है? मन ही दुःखी होता है। दुःख होता कैसे है? किसी ने थप्पड़ मार दिया। गाल में खून दौड़ने लगा, लाल हो गया। वहाँ जो स्नायु है उसने जाकर दिमाग को खबर दी कि यह प्रिय नहीं है, अप्रिय है। अप्रिय के प्रति जो भाव उसे दुःख कहते हैं। दिमाग के अन्दर रहने वाला मन ही दुःख के आकार को ले रहा है। परन्तु क्या हमें लगता है कि मन दुःखी हो रहा है? लगता है 'मैं दुःखी हो रहा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हूँ।' है तो मन दुःखी पर लगता है कि मैं ही दुःखी हूँ। किसी ने कहा 'आप भोजन करने आइये', पहुँच गये वहाँ भोजन करने। वहाँ भीड़ थी। बाहर जहाँ जूते खोलते हैं, वहाँ जगह देखकर किसी ने कहा 'मंच पर बहुत लोग आ गये, आप यहीं बैठ जाओ।' बैठने वाला शरीर है। परन्तु मन क्या मानता है? 'शरीर को जूतों में बैठने को कहा, यह बड़े दुःख की बात है।' किसी ने थप्पड़ नहीं मारा। अपमान का बोध हो गया तो दुःख हो गया। शरीर को कहा जूतों में बैठने के लिये और दुःख किसे हो रहा है? मुझे हो रहा है।

इस प्रकार विचार करके देखो तो मन के अन्दर अपना ही स्वरूप दीखता है। मन के अन्दर ज्ञानरूपता दीखती है। अतः वहाँ अपमान का दुःख, थप्पड़ का दुःख आदि होगा। दुःख भी एक प्रकार का ज्ञान है। दुःख और सुख दोनों ही ज्ञान हैं। दुःख किसका रूप बतलाया था? अज्ञान का। जब दुःख का ज्ञान होता है तब दुःख की चीज़ें तुम देखते हो। क्या नहीं दीखता? अपमान से दुःख का *ज्ञान* हुआ यह नहीं दीखता। दुःखज्ञान में दुःख वाले हिस्से को छोड़कर ज्ञान वाले हिस्से को पकड़ना है। अंतःकरण के अन्दर दुःख तब होता है, जब कोई विषय होता है। दुःख अनात्मा का धर्म है। असत्-जड-दुःखरूपता अज्ञान में है। इसलिये दुःख किसी-न-किसी अज्ञान के कार्य को लेकर होगा, वह चाहे थप्पड़ हो चाहे अपमान हो।

मन कहीं-कहीं इसके विपरीत परमात्मा को देखता है! परमात्मा का रूप क्या बतलाया था? वह सच्चिदानन्द रूप है। जब आनन्द होता है, उस समय मन के अन्दर परमात्मा दीख रहा होता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। दुःख दीखता है, तब अज्ञान का ज्ञान हो रहा है और जब आनन्द दीखता है, तब आनन्द परमात्मा का रूप है, इसलिये परमात्मा का ज्ञान हो रहा है। मन के अन्दर दो प्रकार की वृत्तियाँ हैं : एक है शान्त वृत्ति और दूसरी है अशान्त वृत्ति। शान्ति किसे कहते हैं। कोई आदमी खुद अपने आप चुपचाप बैठा है, तो कहते हैं 'कितना शान्त है', और इधर-से-उधर जाता रहे तो कहते हैं 'कितना अशान्त बच्चा है'। ठीक इसी प्रकार से मन परमात्मा का कार्य है, इसलिये परमात्मा में बैठा है। यदि परमात्मा में बैठा रहता है, तब तो इसे शान्त कहेंगे और परमात्मा को छोड़कर संसार के विषयों में जाये तब इसे अशान्त कहेंगे। जब-जब मन अशान्त होता है, तब-तब दुःख होगा और जब शान्त होता है, तब परमात्मा का साक्षात्कार करेगा इसलिये आनन्दित होगा।

शास्त्रकारों ने अशान्त वृत्तियों के दो भेद किये। मन में होनेवाली वृत्तियों के दो भेद किये, शान्त और अशान्त। शान्त में सुख और अशान्त में दुःख। अशान्त के फिर दो भेद किये, घोर वृत्ति और मूढ वृत्ति। गुणों के हिसाब से देखो तो जब सत्त्वगुण बढ़ता है, तब शान्त वृत्ति बनती है। गीता में भगवान् कहते हैं कि सत्त्वगुण के बढ़ने पर ज्ञान और सुख होते हैं। रजोगुण के बढ़ने पर घोर वृत्ति बनती है, तमोगुण के बढ़ने पर मूढ वृत्ति बनती है। घोर वृत्तियों के अन्दर रजोगुण होने से क्रिया की तरफ प्रवृत्ति होती है। इसलिये शास्त्रकार तृष्णादि को घोर वृत्ति कहते हैं। तृष्णा अर्थात् जितनी भी चीज़ मिल जाये, अलम्-बुद्धि नहीं बनती, पर्याप्त-बुद्धि नहीं बनती। एक आदमी ज्यादा-से-ज्यादा एक सेर घी खा सकता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है रोज़। इससे ज्यादा तो हजम होना मुश्किल है। एक सेर घी हो गया एक सौ बीस रुपये का। इतने ही रुपयों की और चीज़ें अपने काम में ले लेगा। रोज़ का खर्च ढाई सौ रुपये हो गया, एक महीने में साढ़े सात हजार हो गये, आकस्मिक खर्च मिलाकर दस हजार समझ लो। एक साल में एक लाख बीस हजार रुपये हो गये। एक लाख बीस हजार ही क्या, किसी के पास एक करोड़ बीस लाख हो जायें तो भी 'अब बहुत हो गया और नहीं चाहिये' यह सन्तोष नहीं वरन् 'और मिले' यह भाव रहता है जिसे तृष्णा कहते हैं। यही तृष्णा है कि और होवे, और होवे, और होवे। तृष्णा घोरवृत्ति, रजोगुणी वृत्ति होने से हमेशा बाहर की ओर प्रवृत्ति करायेगी। कभी शान्ति से नहीं बैठने देगी।

इसी प्रकार स्नेह है। स्नेह अपने बच्चों के प्रति हो, अपनों के प्रति हो वह भी प्रवृत्ति कराता रहता है। सवेरे से काम पर गये हुये थे। शाम को भी देर से घर आये। लड़का खेलने के लिये चला गया, नौ बजे घर आया। बच्चे से स्नेह है तो घरवाली से कहता है 'थोड़ी काफी पिला दो, बच्चा आनेवाला होगा, ज़रा उससे पूछेंगे की खेल में क्या हाल रहा।' सोने की इच्छा हो रही है फिर भी जगे हुए हैं। आजकल के बाप को बच्चे 'रविवारी बाबू' कहते हैं क्योंकि जब बच्चे सवेरे सात बजे उठकर पढ़ने जा रहे होते हैं, तब वे सो रहे होते हैं। पिता जब क्लब से रात में दस बजे घर आते हैं, तब बच्चे सो रहे होते हैं। बाप और बेटा या बेटी एक दूसरे को हफते में एक रविवार की छुट्टी में मिलते हैं। एक अरबपति की लड़की ने आत्महत्या कर ली। अठारह साल की लड़की थी। उसने मरते समय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने पिता को पत्र लिखा कि 'जीवन में कोई सुख ऐसा नहीं है, जो आपने हमें नहीं दिया। सारे सुख के साधन मेरे पास हैं। परन्तु आपने मुझे समय नहीं दिया! दो मिनट भी बैठकर बात करने का, प्रेम करने का कभी समय नहीं दिया, बस इसी दुःख से मैं आत्महत्या कर रही हूँ।' निःस्नेह तो यों बच्चों से दूरी रख सकते हैं पर जिनमें स्नेह होगा उनके अन्दर इच्छा होगी कि बच्चों से मिलते रहें। चाहे दस बजे आयें, तो भी काफी पीकर जागेंगे, थके हों तो भी जागेंगे ताकि दो बातें करें। इसी प्रकार, राग प्रवृत्तियाँ कराता है। रजोगुण से होने वाली घोर प्रवृत्तियाँ हैं।

'सम्मोह', क्या करूँ-क्या न करूँ; जो तुम्हें प्रवृत्ति से रोकता है, वह तमोगुण है। रजोगुण से प्रवृत्ति होती है, तमोगुण से प्रवृत्ति नहीं होती। इतना याद रखना कि प्रवृत्ति का न होना ही निवृत्ति नहीं है जैसे राग का अभाव ही वैराग्य नहीं है। निवृत्ति के लिये सत्त्वगुण चाहिये, अतः ज्ञान से निवृत्ति होती है, तमोगुण के अन्दर 'मैं क्या करूँ' इसका अज्ञान है, कुछ समझ में नहीं आता, अतः केवल प्रवृत्ति का अभाव है। इसी प्रकार भय है : अकस्मात् शेर सामने आ गया तो आदमी वहाँ का वहाँ खड़ा रह जाता है, भाग भी नहीं पाता, डर जाता है। इन दोनों वृत्तियों के अन्दर चेतन का प्रकाश है। 'मुझे पता नहीं लग रहा है कि मैं क्या करूँ, डर लग रहा है।' दोनों का ज्ञान है। इनमें ज्ञान का प्रतिबिम्ब तो है, परन्तु आनन्द का प्रतिबिम्ब नहीं है, सुखांश आनन्द का हिस्सा तिरोहित है। थोड़ी-सी निर्मलता है, सफाई है, इसलिये ज्ञान का प्रतिबिम्ब तो पड़ रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन के अन्दर हमेशा ज्ञान का प्रतिबिम्ब पड़ेगा; क्योंकि दूसरी चीज़ों की अपेक्षा साफ है।

वेदान्त की सृष्टिप्रक्रिया में जानते ही हो कि अंतःकरण सत्त्वगुण से बना है। मन बना तो सत्त्वगुण से है, परन्तु रजोगुण और तमोगुण का मैल भी चढ़ा हुआ है इसलिये अंतःकरण थोड़ा साफ है और थोड़ा मैला भी है। इसलिये वहाँ ज्ञान का प्रतिबिम्ब पड़ जाता है, किन्तु आनन्द का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। ये वृत्तियाँ कैसे बनती हैं? भय, खेद आदि तभी होंगे जब कामना होती है। भगवान् ने गीता में कहा है कि जिस चीज़ का तुम अंतःकरण में संग करते हो, उसी चीज़ की कामना हो जाती है। जिस चीज़ को देखोगे उसकी कामना होगी। जिस चीज़ को सुनोगे उसकी कामना होगी। जिस चीज़ को चखोगे उसकी कामना होगी। इसलिये बार-बार शास्त्रकार कहते हैं कि सत्संग करो, असत्संग मत करो।

आजकल लोगों में बड़ी भारी भ्रान्ति है कि हम असत्संग करेंगे पर उसमें लिपटेंगे नहीं। दृष्टान्त देते हैं कि कमलपत्र की तरह रहेंगे। यह सब अपने को धोखा देना है। जिस वातावरण में रहते हो, उसका प्रभाव न पड़े, यह नहीं होगा। यदि तुम असत्संग को दुश्मन समझोगे तो उसे जितना आवश्यक समझोगे उतना करोगे, आगे नहीं करोगे। अंग्रेजों के समय ऑफिस में काम करनेवालों को पैंट, टाई पहन कर जाना पड़ता था। बिना पैंट और नैकटाई पहने ऑफिस में नहीं जा सकते थे, उनका यह कानून था। एक छोटी धोती आती थी, अन्दर छोटी धोती पहन कर ऊपर से पतलून पहन लेते थे, 'बिना धोती पहने, लाँग लगाये कैसे रहें, हम हिन्दू हैं!'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह दृढ निश्चय था। जैसे ही घर में आता था वैसे ही व्यक्ति पतलून और टाई उतार देता था, धोती या गमछे में आराम से बैठता था। जितना वह आवश्यक समझता था, उतनी देर तक उसे पहन लिया। आज आजादी के पचास साल बाद हम ऐसे लोगों को जानते हैं, जिनको धोती पहननी नहीं आती! ब्याह-शादी के समय बोलें कि धोती पहन कर शादी करना तो कहते हैं 'धोती बाँधनी नहीं आती।' क्या फरक हुआ? उस समय आदमी जानता था कि पैंट पहनने की अपेक्षा धोती पहनना ठीक है, इसलिये जितना आवश्यक था उतनी पैंट पहनता था फिर जल्दी से हटाता था। अब मन से वह भाव चला गया।

इसी प्रकार यदि तुम असत्संग को बुरा समझ कर करोगे तो उतना ही करोगे जितना आवश्यक है, उसके तुरन्त बाद सत्संग कर लोगे। परन्तु एक बार तुमने समझ लिया कि असत्संग से मेरा कुछ बिगड़ना नहीं है, तो धीरे-धीरे असत्संग का ही स्वभाव बन जायेगा, फिर उसी में मन लगने लग जायेगा। भगवान् ने कहा ही है कि संग से काम (कामना) होता है। घर, गाड़ी, कपड़े आदि सब चीज़ों का संग हो जाता है। जब विषयों को अच्छा समझ कर व्यवहार करते हो तब उनकी कामना होती है। रजोगुणी होने से कामना मनुष्य की प्रवृत्ति कराती है। प्रवृत्ति घोररूप होने से उसमें कोई सुख नहीं हो सकता। अभिलाषा पूरी हो गयी तो टिकेगा या नहीं आदि चिन्ता और अगर काम नहीं सिद्ध हुआ तो दुःख और बढ़ता है। जो हमारी प्रवृत्ति में, सिद्धि में बाधक है, रुकावट है, उसके प्रति क्रोध आता है। अगर वह हमसे कमजोर हुआ तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मारपीट लिया, यदि हमसे तगड़ा हुआ तो हम उसे मार-कूट तो सकते नहीं, अन्दर-ही-अन्दर उससे द्वेष करते हैं 'राम करे इसके दाँत टूट जायें।' जब उसका प्रतीकार नहीं हो सकता तब विषाद होता है। यह भी तमोगुणी है। इसमें सुख की शंका भी नहीं हो सकती। घोर व मूढ वृत्ति के अन्दर जो दुःख का हिस्सा, वह माया का है और उसमें जो 'दुःख हो रहा है' यह ज्ञान वह परमात्मा का अंश है। अभी तुम दुःख और उसके कारणों की तरफ ध्यान देते हो। जैसे नाम-रूप की तरफ ध्यान देते हो, 'है' की तरफ ध्यान नहीं देते। इसी प्रकार दुःख होता है, तो दुःख और उसके कारणों की तरफ ध्यान देते हो, उसके ज्ञान पर ध्यान नहीं देते। प्रयास ज्ञान पर एकाग्र होने का करना है।

चेदि देश के एक राजा थे। बचपन से ही उन्होंने वेदों का अध्ययन किया, विवेक-वैराग्यवाले बने। जब राजपद पर आये तब भी भगवान् शंकर के भक्त बने रहे। उनके माता-पिता भी शिव-भक्त थे, उनका सारा परिवार ही शिवभक्त था। इसलिये राज्य में उन्होंने नियम कर दिया कि जितने भी लोग हैं, पहले वेदज्ञान करें, वेद पढ़ें फिर दूसरी विद्या पढ़ें। वह बड़े ही न्यायपूर्वक राज्य करता था। बहुत वीर था, इसलिये जो शत्रु आते थे, उनको जीत लेता था। धार्मिक व्यक्तियों के प्रति हमेशा उसमें सद्‌भाव रहता था और जो भक्त आते थे, उनको वह साक्षात् शिव का स्वरूप समझता था। बार-बार शास्त्रों के अन्दर लिखा है कि 'मेरे भक्तों को मेरा स्वरूप समझो'। वह ऐसा ही समझता था। जो भी वे माँगते थे, जो भी आवश्यक होता था, वह सब उनको दे देता था। हरेक मन्दिरों में नाच, गान,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूजा-पाठ होते रहें, इसके लिये जहाँ व्यवस्था नहीं होती थी, वह व्यवस्था करवा देता था। उदार भी था। इन सब गुणों के राजा में होने से प्रजा का भी भगवान् शंकर के प्रति बड़ा प्रेम था।

कई बार लोग कहते हैं 'महाराज, हम तो सत्संग करते हैं, लेकिन बच्चे नहीं करते।' नहीं करते तो सोचना चाहिये कि क्यों बच्चे सत्संग नहीं करते। जो प्रधान व्यक्ति हो, यदि वह धर्म का आचरण करे, बच्चे यदि ये जानते हैं कि वह सब काम न्याय से करने वाला है, धर्मानुकूल आचरण करनेवाला है, तब तो बच्चों की भी इच्छा होती है कि हम भी ऐसे बनें। और यदि तुमने बच्चों को वेदों का ज्ञान ही नहीं कराया, तो फिर उन बेचारों को दोष क्या देना! अगर थोड़ा बहुत ज्ञान कराया तो वे देखते हैं 'पिताजी हमें तो कहते हैं सत्य बोलना चाहिये और टेलिफोन पर खट झूठ बोल देते हैं। झूठ बोलने में देरी नहीं लगाते।' बच्चे इन बातों को समझते हैं। वे व्यवहार से शिक्षा ले लेते हैं कि सच बोलना चाहिये यह कहना चाहिये पर बोलना तो झूठ चाहिये।

राजा धर्मात्मा था, न्यायपूर्ण आचरण करने वाला था, अतः प्रजा में इसी प्रकार की बुद्धि बन जाती थी। पड़ोस में एक राजा था जो 'सेक्युलर', अधार्मिक था, उसे बहुत बुरा लगता था कि सब जनता धार्मिक हो रही है, यह अच्छा नहीं है। वह चाहता था कि किसी तरह चेदिराज को परास्त कर देवे। नास्तिक चाहेगा ही कि नास्तिकता आगे बढ़े। उसने कई बार आक्रमण किया पर चेदिराज बहुत वीर था, इसलिये हमेशा शत्रुओं को हरा देता था, जीत जाता था। जब कई बार हार गया तो उसने विचार किया कि ऐसे तो वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खतम नहीं होगा, लेकिन वह शिवभक्तों से बड़ा प्रेम करता है, इसलिये शिवभक्त बनकर ही इससे बदला लेवे। थोड़े दिन तक प्रयत्न करके जटा बढ़ाई, कण्ठा पहन लिया रुद्राक्ष का, भस्मी लगाई। ठीक से जँचने लग गया कि भक्त है तो एक दिन उस राज्य में पहुँच गया। रात के समय जब प्राय: लोग सोये होते हैं, तब पहुँच गया राजमहल में।

सिपाही पूछने लगे 'आप को क्या चाहिये?' उसने अपने हाथ में एक किताब रखी हुई थी, उसने कहा 'यह ऐसा भगवान् शंकर का उपदेश है, जो आज तक किसी को मिला नहीं और मैं इसको इसी वक्त राजा को सुनाना चाहता हूँ; क्योंकि यही इसका उत्तम मुहूर्त है। आप जानते हैं वे अत्यन्त भक्त हैं, इसलिये मेरा रास्ता छोड़ दो।' उन्होंने देखा कि भक्त है ही, राजा भक्तों से प्रेम करता है, उनके मन में किसी दूसरी तरह की भावना नहीं आयी, अत: उसे जाने दिया। राजा के कमरे के सामने आया तो वहाँ जो सिपाही खड़ा था उसने कहा 'राजा अभी सो रहे हैं, अभी मत जाओ।' उसने कहा 'इसी मुहूर्त में यह उपदेश सुनाना है, इसीलिये मुझे जाने दो।' उसे भी धक्का देकर अन्दर चला गया। राजा सो रहा था, पर उनकी बातें सुनकर राजा-रानी उठ गये थे। उठते ही उन्होंने देखा कि शिवभक्त है, जटा बढ़ा रखी है, भस्मी लगा रखी है। राजा ने पूछा 'बताइये-बताइये, क्या चीज़ चाहिये आपको।' वह कहने लगा 'रानी को यहाँ से हटाइये, मेरे पास यह ग्रन्थ है, जिसका उपदेश, इसी समय आपको देना है। रानी को यह सुनना नहीं चाहिये। राजा ने रानी को देखा तो वह बाहर चली गई। उसने अपनी पुस्तक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खोली तो उसके अन्दर छुरा रखा हुआ था! राजा दण्डवत् प्रणाम करने के लिये झुका, क्योंकि वह गुरुरूप से उपदेश दे रहा है। यह नियम है कि प्रणाम करके गुरु से उपदेश लिया जाता है। जैसे ही वह दण्डवत् कर रहा था, उसने छुरा निकाल कर दो चार-बार घोप दिया। बाहर जो सिपाही खड़ा था, उसने मार-काट-सी कुछ आवाज सुनी तो वह अन्दर आ गया। देखते ही वह मारने के लिये दौड़ा उसे; चेदिराज में अभी जान थी, वह कहने लगा 'इसे मत मारो। पहले दण्डनायक को बुलाओ।' वह सबसे बड़ा अधिकारी होता है। उसे बुलाकर कहा 'इसे तुम अपने राज्य की सीमा से बाहर सुरक्षित ले जाओ।' वह कहने लगा 'यह तो दुष्ट है।' राजा ने कहा 'दुष्ट है पर इसका वेष भस्मी-रुद्राक्ष वाला है, वह तो भगवान् शंकर का रूप है। इसके भस्मी-रुद्राक्ष हैं, इसलिये रक्षा के योग्य है। तुम लोग इसे राज्य से बाहर कर दो, किसी भी प्रकार से इसकी हानि नहीं होनी चाहिये। यही मेरा अन्तिम आदेश है, मैं तो अब जा रहा हूँ।' राजा मर गया। दण्डनायक पूरी सुरक्षा से उसको बाहर तक छोड़ आया।

यह केवल चेदिराज की ही कथा नहीं समझ लेना। हम लोगों के सामने भी जो नाम-रूप वाले जगत् में असत्-जड-दुःखरूप पदार्थ आते हैं, वे हमें सद्रूपता से हटाने के लिये। उनमें फँसकर हम सद्रूपता से हट भी जाते हैं। इसलिये हम सोचते हैं कि ये सब विषय न रहें, घोर वृत्ति न रहे, मूढ वृत्ति न रहे। यहाँ बतला रहे हैं कि घोर और मूढ वृत्तियों के अन्दर भी ज्ञानरूपता ही है। भस्मी और रुद्राक्ष की जगह ज्ञानरूपता है। यद्यपि दुःखरूप है, पर उसका भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञान तो हो रहा है। ज्ञान ब्रह्म का रूप है, इसलिये उससे भी लड़ने की जरूरत नहीं है। जैसे सब नाम-रूपों में सद्रूप को देखना है, वैसे ही मोहाकार मूढाकार वृत्ति के अन्दर, तृष्णाकार वृत्ति में, स्नेहाकार वृत्ति में, सब वृत्तियों के अन्दर ज्ञानरूप परमेश्वर को पहचानना है, अपना ध्यान ज्ञान की तरफ ले जाना है, तद्भिन्न तरफ नहीं। ऐसा जो अभ्यास करते हैं, उनमें धीरे-धीरे ज्ञानरूपता प्रतिष्ठित होने लगती है। ज्ञान सबको हो रहा है। लेकिन जो नाम-रूप दुःख देने वाले हैं, उन पर ध्यान रहता है, उसके अन्दर जो ज्ञान है, उस पर ध्यान नहीं देते। वहाँ आनन्द नहीं है क्योंकि घोर वृत्ति है, पर जहाँ शान्त वृत्ति होगी वहाँ आनन्द का प्रतिबिम्ब भी पड़ेगा।

❖

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन : पाँचवाँ

(३.४.१८)

श्रुति बता रही है कि जो कुछ भी 'यह'रूप में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रतीति हो रही है उसमें वस्तुतः ब्रह्म भास रहा है। इन्द्रियों से होने वाली प्रतीति प्रत्यक्ष है, इन्द्रियों से भिन्न उपायों के द्वारा जो ज्ञान होता है, वह अप्रत्यक्ष है। जिस किसी भी चीज़ की प्रतीति हो रही है, वह सब अपने से भिन्न, 'युष्मत्-प्रत्ययरूप से, 'यह'-रूप से हो रही है।

जो कुछ भी 'यह'रूप से प्रतीत है, वह सब ब्रह्म ही है। 'खलु' के द्वारा कहा कि इस बात का निश्चय करना है। इसे ही स्पष्ट करते हुये कहा 'स क्रतुं कुर्वीत', इस बात का निश्चय करना है। अभी हमें निश्चय है कि ये सारी चीज़ें अलग-अलग हैं, उसकी जगह निश्चय करना है कि सब ब्रह्मरूप ही हैं। सोने से बने भिन्न-भिन्न गहनों को देखकर, गहने अलग-अलग दीखते हुये ही निश्चय होता है कि यह सब सोना है। शादी में लोग पूछते हैं 'कितना सोना दिया?' दूसरा कहता है कि इतना सोना दिया। कहनेवाला भी जानता है कि सोना दिया अर्थात् गहने दिये। ऐसा नहीं कि पोटली के अन्दर सोने की गाँठ बाँधकर दे दी हो! देनेवाला भी जानता है, सुननेवाला भी जानता है कि क्या दिया। परन्तु क्यों यह वाक्य ठीक है? क्योंकि सारे गहने तो सोना ही है। इसी प्रकार सारे भिन्न-भिन्न रूपों में प्रतीत होने वाले जगत् को देखते हुए यह निश्चय करना है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि यह सब ब्रह्मरूप ही है, उससे अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है। पहले 'खलु' शब्द से कहा, आगे 'क्रतु'-शब्द से कहा; यही उपासना है।

चीज़ें दो भेदों में बँटी हुई हैं। एक, जिन चीज़ों के अन्दर केवल 'है' की प्रतीति, दूसरा जिन चीज़ों के अन्दर ज्ञान की भी प्रतीति। जहाँ मनरूप पदार्थ है, अंत:करण है, वहाँ-वहाँ ज्ञान की प्रतीति और जहाँ अंत:करण नहीं है, उस जड में सत्ता की ही प्रतीति होती है। जड पदार्थों में ब्रह्म का केवल 'है'रूप दीखता है। जब कभी जड चीज़ों से व्यवहार करो, 'है'रूप ब्रह्म को पकड़ कर रखो। वेदान्त तुमको कोई नई चीज़ देखने को नहीं कह रहा है। शालिग्राम की बटिया में तुम कितना भी ध्यान देकर देख लो, अनुवीक्षण यन्त्र लगा कर देख लो, वहाँ तुम्हें विष्णु बैठे नहीं दीखेंगे। शालिग्राम में विष्णु है यह केवल मानकर ध्यान करना पड़ेगा। परन्तु जब हम कहते हैं 'घड़ा है' तो मानने के लिये नहीं कह रहे हैं, तुम खुद ही देखते हो कि घड़ा है, कपड़ा है, अपना ज्ञान है। वहाँ 'है' की कल्पना नहीं करनी है। शालिग्राम में विष्णु की तो अपनी तरफ से कल्पना करनी पड़ेगी, परन्तु 'ये सारे पदार्थ हैं' यह कल्पना नहीं करनी पड़ती, सबको अनुभव होता है। इन्हीं अनुभवों में घड़े आदि का बहुत समय से ध्यान कर लिया, अब 'है' का भी ध्यान करो।

इसी प्रकार जहाँ मन है वहाँ ज्ञान है। छोटे-छोटे कीड़ों को भी ज्ञान है। पुराणों में आता है : एक बार देवर्षि नारद कहीं जा रहे थे,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रास्ते में एक मकोड़ा बड़े ज़ोर से दौड़ रहा था, जैसे दिल्ली में लोग अपनी मोटरों में तेजी से दौड़ते हैं, ड्राइवरों से कहते हैं 'जल्दी चलाओ, समय पर पहुँचना है'। जैसे लोग भागते हैं, ऐसे ही वह मकोड़ा भाग रहा था बड़ी तेजी से। नारदजी को जिज्ञासा हुई कि मकोड़ा क्यों भाग रहा है, इतनी तेजी से। नारद जी को सब प्राणियों की भाषा आती है। नारद ने उससे पूछा 'तुझ पर क्या आपत्ति है जो तू भाग रहा है।' उसने कहा 'नारदजी, अभी बात करने की फुर्सत नहीं है, ज़रा रुक जाओ। पहले रास्ते से नीचे उतर जाने दो तब बात करेंगे।' जब रास्ते से नीचे उतर गया तब बोला 'कहो क्या बात है।' कहने लगे 'दौड़ क्यों रहा था?' कहने लगा 'आपके कान नहीं हैं जी। वह पीछे से रथ आ रहा है, उसके नीचे आ जाता तो काम तमाम हो जाता।' तब तक पीछे से रथ आ ही गया। नारदजी ने कहा 'अगर तुम पिस ही जाते तो क्या हर्जा था! पहले ही तुम्हारी इतनी फजियत है, पिस ही जाते तो दूसरा शरीर मिल जाता।' कहने लगा, 'नारदजी! ऐसा मत सोचो। जितने आपको अपने प्राण प्रिय हैं उतने ही मुझे भी प्रिय हैं। जैसे आप खा-पीकर सुखी रहते हो वैसे ही मैं भी खा-पीकर सुखी रहता हूँ। ठीक है, आप बड़े हैं और मैं छोटा हूँ।' छोटे-से-छोटे जीव के अंतःकरण में भी वैसे ही ज्ञान होते हैं जैसे हमें होते हैं, जैसे ब्रह्मा इत्यादि देवताओं को होते हैं। सबको ज्ञान वैसा ही होता है जैसा मकोड़े को होता है।

जहाँ मन है, वहाँ ज्ञान प्रकट है। जहाँ अंतःकरण है, वहाँ चित् और जहाँ अंतःकरण नहीं है वहाँ सत् अभिव्यक्त है। इसीलिये जब मन की वृत्ति बने उसमें भेद करो कि मन की वृत्ति और ज्ञान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये दो हैं। ज्ञान ब्रह्म का स्वरूप है और मन की वृत्ति माया का स्वरूप है। घड़े के ज्ञान में ज्ञानरूप को समझो। 'घड़ा है' में सद्रूप को समझो।

मन की वृत्तियों के दो भेद बतलाये थे, घोर-मूढ अशान्त वृत्तियाँ और शान्त वृत्तियाँ। अशान्त वृत्ति में ज्ञान तो होता है पर शान्त वृत्ति के अन्दर ब्रह्म के आनन्दरूप का भी स्फुरण हो जाता है।

आनन्द के स्वरूप का विचार करते हुये तैत्तिरीय उपनिषद् के अन्दर बतलाया 'तस्य प्रियम् एव शिरो मोदो दक्षिणः पक्षः प्रमोद उत्तरः पक्ष आनन्द आत्मा ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा।' पक्षीरूप में कल्पना है। प्रिय उसका सिर है। मोद उसका दाहिना पंख है, प्रमोद बाँया पंख है। धड़ आनन्द है। ब्रह्म प्रतिष्ठा है। चाहे प्रिय हो, मोद हो, प्रमोद हो, आनन्द हो, चारों के अन्दर अधिष्ठानरूप से मौजूद कौन है? ब्रह्म। जो चीज़ प्रिय होवे, हमें इष्ट होवे, उसका दर्शन होने पर, दूर से भी ज्ञान होने पर खुशी होती है, उसे प्रिय कहते हैं। लड़का विलायत गया हुआ है, तीन साल के बाद आ रहा है। रात के एक बजे हवाई-जहाज आता है। विलायती जहाज दुःख देने के लिये रात में आते हैं। उनकी आदत है दुःख देने की। माया है ही दुःखरूप, आनन्द है ब्रह्मरूप। ब्रह्मचिन्तन करनेवाले भारत के लोग, वे हमेशा सोचते हैं आनन्द की। यूरोप इत्यादि के देश सारे माया के पीछे लगे रहते हैं, तो इनका स्वरूप ही दुःख है। जिसका लड़का गया हुआ होगा वह क्या सो सकेगा आराम से? साढे ग्यारह बजे ही अड्डे पहुँच जाओगे। कस्टमवाले से बात करने लग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाओगे 'हमारा लड़का आ रहा है जी, उसके सामान को आराम से निकल जाने देना, ज्यादा देरी नहीं लगाना। आपके चाय-पानी का इंतजाम हो जायेगा।' ग्यारह बजे से ही कोशिश में लग जाते हो। क्यों लग जाते हो? उसे देखते ही तुम्हें सुख होगा। यह सुख आनन्दमय का सिर है। जब इष्ट चीज़ की उपलब्धि हो गई, तब की खुशी मोद है। रसगुल्ला मिल गया, हाथ में आ गया तब उसका मोद हुआ। रसगुल्ले को खाते हो, उसका भोग करते हो तब प्रमोद होता है। लड़का आ गया एक सुख, तुमने उसका आलिंगन कर लिया दूसरा सुख। वह लड़का बड़ा अफसर बन गया, कहते हो 'मेरा लड़का प्रधानमंत्री का प्रिंसिपल सैक्रेटरी है।' कितना सुख होता है! प्रमोद का भोग हो रहा है। रसगुल्ले का प्रमोद मुँह में डालकर होगा।

इस प्रकार विषयों से होने वाले सुखों को तीन भागों में बाँटा– दूर से देखने का या सुनने का सुख, प्राप्ति का सुख और भोग का सुख। ये सब क्रमशः एक-से-एक ज्यादा होते चले जाते हैं। इसका धड़ आनन्द है। तुम गहरी नींद से में उठकर कहते हो 'बड़े सुख से सोया'। किस चीज़ का सुख था? उसे ही 'आनन्द' कहा। वहाँ बिना विषय का सुख है।

केवल गहरी नींद के सुख को ही नहीं समझना। नींद में क्या होता है? मन बाह्य विषय के अभाव में अपने कारण में लीन हो जाता है। वहाँ मन कार्यरूप से मौजूद नहीं है। अपने कारण में लीन हो जाता है। जब-जब अपने कारण में लीन हो जाता है, तब-तब आनन्द रहता है। जब तुम पहले रसगुल्ले को खा रहे हो, तब प्रमोद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। लेकिन पचपन रसगुल्ले खाने के बाद, रसगुल्ला खा नहीं रहे हो, स्वाद भी नहीं ले रहे हो, लेकिन एक बड़ी भारी तृप्ति का आनन्द रहता है। चेहरा देखकर ही पता चलता है कि आज कहीं पण्डित जी को माल मिला है। उस समय विषयसुख तो नहीं है, रसगुल्ला तो खतम हो गया। अब जो सुख है, वह बिना विषय के ही होने से आनन्द ही है।

वह आनन्द कैसे आता है? जिस चीज़ के प्रति हमारी जितनी ज्यादा कामना होती है, उतना उससे ज्यादा सुख मिलता है। सुख के प्रति कारण केवल कामना है। जिस चीज़ को तुम चाहोगे वही तुमको सुख दे सकती है। यदि तुम उस चीज़ को नहीं चाहो, तो वह तुम्हें कभी सुख नहीं दे सकती है। चाहना सबके बारे में एक-जैसी नहीं हो सकती। किन्हीं चीज़ों को बहुत ज्यादा चाहते हो, किन्हीं को चाहते हो, किन्हीं के लिये भाव है कि मिल जाये तो ठीक, नहीं मिले तो भी ठीक है। जितनी कामना ज्यादा होगी उतनी ही मन के अन्दर उस विषय की तरफ जाने की प्रवृत्ति ज्यादा होगी। 'सोफा' के नीचे स्प्रिग लगे होते हैं, जब आदमी उस पर बैठता है, वह स्प्रिग दब जाता है, बड़ा अच्छा लगता है। जब उठते हैं, तब स्प्रिग अपने आप ऊपर आ जाते हैं। बैठते-बैठते तीन-चार साल हो जाते हैं, तो वह स्प्रिग खास नहीं दबता। कहते हैं कि इसके स्प्रिग बदलवाने होंगे। स्प्रिग के दबने का और वापस ऊपर आने का मजा आता है। बैठने पर दब तो जाता ही है, अभी दबा हुआ है ही, तो स्प्रिग बदलवाने का क्या फायदा? स्प्रिग को दबाकर जब उससे उठो तब कोई मजा है। जितना वह दबेगा उतना ही फिर ऊपर आयेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी प्रकार तुम्हारे मन के अन्दर कामना का 'स्प्रिंग' होता है। जितनी तुम्हारी कामना तीव्र होगी उतनी ही तेजी से तुम्हारा मन विषय की ओर जायेगा। जैसे ही वह विषय मिला वैसे ही कामना हटी। कामना के हटते ही मन वापस हृदय की तरफ आयेगा। हृदय से विषय की तरफ गया कामना के जोर से और कामना के हटते ही फिर अपनी जगह आयेगा। उसका मुँह पलट जायेगा, आत्मा की तरफ हो जायेगा। आत्मा आनन्दरूप है। भोगकाल में प्रमोद, भोग के बाद जो शान्त अवस्था है, उसमें आनन्द है। अब इस तथ्य पर नजर रखनी है कि ब्रह्म ही प्रियादिरूप से भास रहा है। हमें बच्चे को देखकर सुख हो रहा है, बच्चा तो है माया का कार्य, उसे देखकर जो सुख हो रहा है वह ब्रह्म है। जिस पदार्थ की प्राप्ति हुई वह माया का कार्य है, उससे होनेवाला मोद ब्रह्म का रूप है, यह उपासना करनी है। चीज़ की प्राप्ति के बाद भोग करते समय प्रमोद ब्रह्म का रूप है। विषय माया का रूप है, विषय-ग्रहण के बाद आनन्द का काल है, जो किसी विषय के कारण नहीं है। इन वृत्तियों की तीव्रताओं को लेकर फर्क होता है।

काम्य पदार्थ के मिलने पर हर्ष की, सुख की वृत्ति होती है, वह शान्त वृत्ति है, उसमें बहुत सुख होता है। बंगाली मार्केट में रसगुल्ले की दुकान पर पहुँच गये, रसगुल्ला ताजा कढ़ाई में से निकलता हुआ देख लिया तो लाभ, प्राप्ति हो गई। अभी खरीदा नहीं है। मिलेगा तब जब हम नोट निकाल कर देंगे। ताजा रसगुल्ला निकल रहा है, यह देखने की इच्छा उतनी तीव्र नहीं है, जितनी तीव्र इच्छा उसको खाने की है, अतः देखने और खरीदने का सुख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कम होता है। रसगुल्ले को मुँह में डालने लगते हैं, तो महासुख है। हाथ में रसगुल्ले की अपेक्षा मुँह में रसगुल्ला ज्यादा सुखकर है। इस प्रकार सुखों में तारतम्य है। इन वृत्तियों में शान्ति हो रही है। देखकर भी तुम्हारी देखने की कामना तो निवृत्त ही हुई। हाथ में आया तो लेने की कामना निवृत्त हुई। फिर खाने की कामना निवृत्त हुई। खाने की कामना तीव्रतर है, इसलिये उससे होनेवाली शान्ति भी तीव्रतर है और उससे होनेवाला सुख भी तीव्रतर है।

शान्त वृत्तियों के अन्दर भी वही तारतम्य देखने में आता है, लेकिन सबमें सुखरूप से प्रकट कौन हो रहा है? आनन्दरूप ब्रह्म ही प्रकट हो रहा है। तीन पहले बतलाये थे प्रिय, मोद और प्रमोद। प्रिय के अन्दर ईषत् अर्थात् थोड़ा सुख, मोद के अन्दर महत् सुख यानि बड़ा सुख और प्रमोद के अन्दर महत्तर सुख।

महत्तम सुख कहाँ है? महत्तम सुख वैराग्यादि वृत्तियों के अन्दर होता है। किन्तु यह सुख जब कुछ समय तक अभ्यास करोगे तभी होगा। बिना अभ्यासवालों को इस सुख का पता ही नहीं चलता। जहाँ आनन्द की मीमांसादि बतायी है तैत्तिरीय उपनिषद् में वहाँ हर आनन्द को बतलाकर कहा 'अकामहतस्य'। आनन्द का क्रम बतलाया : कोई चक्रवर्ती राजा हो सारी पृथ्वी का, कोई उसका दुश्मन न होवे, पृथ्वी धन-धान्य से भरी होवे, राजा की जवान उम्र होवे, राजा सच्चरित्र होवे, अध्ययन किया हुआ विद्वान् होवे, ऐसे राजा को जो सुख होता है, वह एक मानुष सुख है। इससे कम जो सुख है वे सुख के माप की इकाई से घटकर हैं। गन्धर्वों को उससे सौ गुना सुख है। ऐसे ही क्रम बतलाया है। जिसने आत्मा के स्वरूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को समझा और जिसको इन सुखों की कामना नहीं है, उसे यह सुख मिले हुए ही हैं! कामना की निवृत्ति में सुख है।

अपने में कामना हो तो उसके पूर्ण होने पर सुख मिलता है। पूर्ण होने का मतलब क्या? अब कामना रही नहीं। वैराग्य के अन्दर तो कामना सर्वथा निवृत्त, आगे कभी पैदा नहीं होनी है। इसलिये उसका सुख महत्तम सुख है। वैराग्य, क्षान्ति, क्षमाशीलता, उदारता, ये सब शान्त वृत्तियाँ हैं। कामना करके भी सुख के लिये कामना की निवृत्ति चाहिये और इन वृत्तियों के अन्दर कामना सर्वथा निवृत्त है। कामना की निवृत्ति को विचार से समझना पड़ता है। तुम तीस लाख रुपये साल में कमाते हो, तुम्हारा पड़ोसी दो करोड़ रुपये साल में कमाता है। तुम सोचते रहते हो 'हमारे पास भी दो करोड़ रुपये हों तो अच्छा है'। एक दिन उसके यहाँ जबरदस्त छापा पड़ गया; चाहे सरकार के डाकुओं का होवे, चाहे गैर-सरकारी डाकुओं का होवे! डाकू पिटाई भी करते हैं, तो धनवान् चुप रहते हैं, क्योंकि छापामार लोग माल लेकर चले गये, बात खतम हो गयी। सरकारी अफसर उस समय तो पिटाई कम करते हैं, पर दो-चार साल तक तुम्हारी पिटाई करते रहते हैं! दस बजे बुला लेंगे दफ्तर में, तुम बैठे रहो शाम के चार बजे तक फिर कहेंगे आज समय नहीं है। जिस समय उस पर छापा पड़ा, डकैती पड़ी, उस समय तुम्हारे मन में आता है 'अच्छा हुआ कि हमारा ऐसा काम नहीं है। थोड़ा खाकर सुख से सोते तो हैं, नहीं तो पुलिसवाले ले गये होते।' वह सुख किसका हो रहा है? चाहे वह क्षणिक वैराग्य है, श्मशान-वैराग्य है, लेकिन वैराग्य की वृत्ति बनी। हाथ तो तुम्हारे कुछ नहीं आया लेकिन 'मैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन सब झंझटों से बच गया' इस बात से सुख हो रहा है। वैराग्य तुम्हारा जिन चीज़ों पर दृढ है, उन चीज़ों की कोई कामना होती ही नहीं। लोगों को उन चीज़ों के पीछे दौड़ते देखते हो तो कहते हो 'चलो इन चीज़ों से हम तो बच गये।'

इसी प्रकार क्षमा है। किसी ने हमारे प्रति अपराध किया, तो हमारे मन के अन्दर भाव होता है कि किसी तरह इसे दण्ड मिले। पुलिस में शिकायत होती हो तो पुलिस में शिकायत करें, खुद मारपीट सकते हों तो मारपीट लें, कोई तन्त्र का अनुष्ठान करें जो उसका लड़का मर जाये। तांत्रिक लोग भूत-प्रेत विद्या से मारण प्रयोग करते हैं। कभी पेड़ के ऊपर कौए का बैठना हुआ और फल का गिरना हो तो लोग कहते हैं 'देखो! कौए के बोझ से फल गिर गया।' कौआ तो बहुत बार पहले भी बैठा था। इस बार नाम कौए का हुआ। इसी प्रकार व्यक्ति का अपना कर्म ही दुःख का फल देनेवाला है। तुम करोगे तब भी वही देनेवाला है, नहीं करोगे तब भी फल देने वाला तो वही है। तुमने कुछ डाकुओं को बुला लिया, पिटाई करा दी। पिटाई तो उसकी होनी ही थी, परन्तु चूँकि तुम्हारे कारण हुई अतः तुम्हें लगता है कि तुमने पिटाई करवा दी। फल उसके कर्म का ही है। अथवा तुमने कोई तांत्रिक कर्म करवा दिया, उसका नुकसान हो गया। हुआ उसके प्रारब्ध के अनुसार, लेकिन तुमको लगने लगता है 'मैंने प्रयोग किया तब हुआ'। तुम्हारे न करने पर भी उसका नुकसान तो होना ही था। तुमने किया, तब होने से सुख का अनुभव करते हो। 'अब मेरी छाती ठण्डी हुई, अच्छी तरह से उसे सजा मिली'। जिसमें क्षमा है, उसकी दृष्टि है कि अपराधी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नासमझ है। जैसे बच्चा समझता नहीं है, उसने पेशाब कर दिया तो कोई बात नहीं, धो देगी माँ, बच्चे की पिटाई तो करनी नहीं है! इसी प्रकार किसी ने हमारा अपराध कर दिया, करनेवाला तो अज्ञानी है। जैसे बालक नहीं समझता, टट्टी पेशाब कर देता है, ऐसे ही यह भी बालक की तरह अज्ञानी है, मेरा नुकसान कर दिया तो अपने नुकसान को दूर कर लेंगे, उसे क्या दण्ड देना है! जो सुख तांत्रिक प्रयोग करके, पुलिस में शिकायत करके, दण्ड दिलाकर या पिटाई करवाकर होता है, वही सुख क्षमा में तत्काल होता है।

इसी प्रकार औदार्य का, उदारता का सुख है। हमारे पास कोई चीज़ है, किसी को उस चीज़ की आवश्यकता है, हमने उसे दे दी। इसमें सुख होता है। इस प्रकार से वैराग्य, क्षान्ति, औदार्य इत्यादि शान्त वृत्तियों के अन्दर महान् सुख होता है। सुषुप्ति के अन्दर महत्तम सुख है। सारे विषयों के सुख की अपेक्षा सुषुप्ति का निर्विषय सुख महत्तम है। वैराग्य, क्षान्ति, औदार्य आदि शान्त वृत्तियों के अन्दर ब्रह्म का सुख सबसे ज्यादा प्रकाशित होता है। शान्त वृत्तियों में प्रतिबिम्बित होनेवाला ब्रह्म ही है। जो सुख प्रतिबिम्बित हो रहा है, उसे ब्रह्म का स्वरूप समझो। अंतःकरण की शान्त वृत्तियों के भेद के कारण ये सब भेद हैं, ब्रह्म आनन्दरूप एक-जैसा है।

ऐसे समझ लो : सूर्य तो जैसा है वैसा ही चमक रहा है। तुम्हारे पास एक बैल्जियम का बढ़िया काँच है, एक घटिया काँच है और तीसरी चीज़ लकड़ी के ऊपर तेल लगा रखा है। तीनों को तुमने धूप में रखा। बैल्जियम के काँच के अन्दर सूर्य बिलकुल जैसा है, करीब-करीब वैसे-का-वैसा दीखता है, आँखें चौंधिया जाती हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसे सूर्य की तरफ देखो तो चौंधिया जाती हैं, वैसे ही बैल्जियम के काँच में पड़े सूर्य के प्रतिबिम्बि से भी चौंधिया जाती हैं। दूसरे काँच में कुछ गोल चमक जायेगा पर सूर्य स्पष्ट दीखेगा नहीं। जो तेल लगी लकड़ी है उसमें चमक ही दीखेगी, सूर्य का गोल भी दीखना मुश्किल है! फर्क का कारण कौन है? वे उपाधियाँ हैं, सूर्य तो जैसा है वैसा ही है। इसी प्रकार वह आनन्दघन एक जैसा ही है। अंत:करण की वृत्तियों का फर्क है तो कहीं ज्यादा सुख है, कहीं कम सुख है, कहीं बहुत ही कम सुख है तो कहीं बहुत ज्यादा सुख है। ये कमोबेश का फर्क किसे लेकर है? अंत:करण को लेकर है, वह जितना-जितना निर्मल होगा उतना-उतना सुख ज्यादा होगा।

वैराग्य के अन्दर तुम्हारी काम-निवृत्ति है, क्षान्ति और क्षमा के अन्दर तुम्हारी क्रोध-निवृत्ति है, औदार्य के अन्दर तुमहारी लोभ-निवृत्ति है। ये जो तीन शान्त वृत्तियाँ बतलायीं, ये तीनों जो तुम्हारे तीन प्रधान नरक के दरवाजे हैं उनको बन्द कर देती हैं। भगवान् ने गीता में नरक के तीन दरवाजे बतलाये हैं–काम, क्रोध और लोभ। वैराग्य के द्वारा काम की निवृत्ति है, क्षमा के द्वारा क्रोध की निवृत्ति है, औदार्य के द्वारा लोभ की निवृत्ति है।

जो-जो सुख हो रहा है, प्रिय, मोद, प्रमोद, आनन्द, वह परमात्मा के प्रतिबिम्ब से ही हो रहा है। जब अंत:करण की वृत्ति तृप्तिरूप से हमारे अन्दर के प्रत्यगात्मा को ग्रहण करने वाली बन जाती है, तब निर्विघ्न प्रतिबिम्ब पड़ता है। अगर अंत:करण हमेशा ही हृदय में रहने वाले परमेश्वर को विषय कर रहा है तो निर्विघ्न रूप से प्रतिबिम्बित होता रहता है। जब तक प्रत्यगात्मा की तरफ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंतःकरण स्थिर नहीं होता तब तक अनुकूल वृत्ति होने पर थोड़ी देर के लिये सुख होगा, लेकिन उसके बाद फिर कामनादि होने से मिट जायेगा। तुमने अपने अंतःकरण को आत्मा पर केन्द्रित कर लिया। आत्मा का निर्मल प्रतिबिम्ब पड़ता है, जिससे मनुष्य आनन्द के पूर्णरूप को प्राप्त हो जाता है। निरन्तर अभ्यास है सद्रूप का, चिद्रूप का, आनन्दरूप का ब्रह्मरूप से दर्शन करना। यह निरन्तर उधर दृष्टि रखने पर ही होता है।

दक्षिण भारत में कुम्भकोणम् के पास भगवान् शंकर का एक मन्दिर है धेनुकुलेश्वर। कामधेनु की एक लड़की थी 'पत्तिम्', दूसरी लड़की थी नन्दिनी जो वशिष्ठ जी के पास थी। पत्तिम् प्रतिदिन नियम से जाकर शिवलिंग के ऊपर अपने स्तनों से अभिषेक करती थी। धेनु उसका पूजन करती थी तो उसका नाम हो गया धेनुकुलेश्वर। भगवान् शंकर के बड़े भारी भक्त हुये हैं–ज्ञानसम्बन्ध। अनेक मन्दिरों में दर्शन करते हुये वे वहाँ आ रहे थे। आषाढ के महीने में तेज धूप पड़ती है। धेनुकुलेश्वर से चार-पाँच मील पहले ही सम्बन्ध इतने थक गये कि उनको वहाँ पहुँचना मुश्किल लगने लगा। मन में तो इच्छा थी कि जल्दी-से-जल्दी भगवान् शंकर के दर्शन करें, परन्तु शरीर साथ नहीं दे रहा था। उम्र बहुत छोटी थी। जिस समय वहाँ गये वे नौ साल के थे। जाना चाहते थे लेकिन बैठ गये। इमली के पेड़ के नीचे बैठे। परमेश्वर जीव से भिन्न नहीं है। ऐसा नहीं है कि सम्बन्ध कुछ कहें तभी परमेश्वर को पता लगे! परमेश्वर जानते हैं कि सम्बन्ध की तीव्र इच्छा मेरे पास आने की है, परन्तु शरीर साथ नहीं दे रहा है। उसी समय उन्होंने अपने गणों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदेश दिया कि वहाँ से यहाँ तक मोतियों से सारा रास्ता पाट दो ताकि धूप न पड़े, ठण्डक हो जाये। हीरा गर्म होता है, मोती ठण्डा होता है। तो उसी समय गणों ने, पूरे रास्ते पर मोतियों का शामियाना तान दिया। अब ठण्डक होने पर उनके मन में संतोष हुआ तो वे चलने लगे। बेटे का प्रेम जितना बाप के प्रति होता है, बाप का प्रेम बेटे के प्रति उससे बहुत ज्यादा होता है। वे मन्दिर के पास पहुँचने लगे तो भगवान् शंकर को भी उत्कण्ठा थी कि उसे मैं जल्दी-से-जल्दी देखूँ। उस मन्दिर में बड़ा भारी नन्दी है, जैसा सभी मन्दिरों में होता है। उन्होंने नन्दी को आज्ञा दी 'जरा दाहिने हो जाओ कि मुझे वह तुरन्त दीख जाये।' अन्यथा परिक्रमा करेंगे तब दर्शन के लिये आयेंगे। आज भी उस मन्दिर में जाओ तो नन्दी दाहिनी तरफ है। भगवान् शंकर को वे प्रवेश करते ही दीखने लग गये। नन्दी हटे तो सम्बन्ध को भी भगवान् शंकर के दर्शन हो गये। उनका हृदय इतनी प्रसन्नता से भर गया कि उसी समय परमेश्वर की शरणागति के दस बहुत सुन्दर स्तोत्र गाते हुये वे मन्दिर में पहुँचे। उस दिन की याद में उस मन्दिर के अन्दर सम्बन्ध की भी प्रतिमा है।

केवल एक सम्बन्ध की ही यह कथा नहीं समझ लेना। ऐसा नहीं है कि ज्ञानसम्बन्ध के लिये परमेश्वर कोई दूसरा होवे और हमारे लिये कोई दूसरा होवे! जीव परमेश्वर की तरफ जाते हुये पूरा प्रयत्न करता है कि 'मैं उसके जल्दी-से-जल्दी दर्शन करूँ, जल्दी-से-जल्दी प्राप्ति करूँ' और परमेश्वर देखते हैं कि अब इसका स्थूल-सूक्ष्म शरीर साथ नहीं दे रहा, शरीर और मन उसका साथ नहीं दे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहा, तो आगे की साधना को सरल करते चले जाते हैं। साधनाओं के क्रम में पहले की साधनायें कठिन हैं, आगे की साधनायें उनसे ज्यादा सरल हैं। पहले की साधनाओं को करके तुमने अपना प्रेम प्रकट कर दिया तो परमेश्वर तुमको सरल-से-सरल साधनायें दिलाते जाते हैं। जब सामने पहुँचते हैं, तो बीच में नन्दी है अहंकारात्मिका वृत्ति और चेतन का प्रतिबिम्ब। जीव और परमात्मा के बीच में कौन बैठा हुआ है? अहंकारात्मिका वृत्ति बैठी हुई है। इस अहंकारात्मिका वृत्ति को परमेश्वर हटा देते हैं। कारण क्या है? नन्दी को हम नहीं हटा सकते। कारण क्या है? अहंकारात्मिका वृत्ति को हटानेवाला यदि मैं बनूँ तो मैं कौन? अहंकारात्मिका वृत्ति! अहंकारवृत्ति के प्रयत्न के द्वारा अहंकार की वृत्ति कैसे हटे? हट नहीं सकती। अतः परमात्मा ही उस अहंकार की वृत्ति को हटा देते हैं। तभी ब्रह्म का दर्शन हो जाता है। ब्रह्म के दर्शन में अत्यन्त तृप्त हो जाता है। जैसे उसने गीत गाये वैसे ही जीवन्-मुक्तिकाल के अन्दर मुक्त हमेशा आनन्दपूर्वक परमात्मा की महिमा का गान करता रहता है। वैराग्य, क्षान्ति, क्षमा, औदार्य आदि शान्त वृत्तियों के अन्दर पड़ने वाले प्रतिबिम्बरूप ब्रह्म को देखो। उसकी कृपा से अहंकारात्मिका वृत्ति निवृत्त हो जायेगी। निवृत्त होने से अधिष्ठान पता लगेगा।

❖

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन : छठा

(४.४.९८)

श्रुति भगवती बताती है कि जो कुछ भी हमें प्रतीत होता है, वह सिवाय चिदानन्दरूप के और कुछ भी नहीं है। इदम्-शब्द से यह सब-का-सब जो प्रतीत हो रहा है उसे कहा। ब्रह्म को 'ब्रह्म' क्यों कहते हैं? भगवान् भाष्यकार लिखते हैं कि ब्रह्म का मतलब होता है बड़ा। चूँकि यह देश आदि की दृष्टि से सबसे बड़ा है इसलिये ब्रह्म है। ऐसा कोई देश नहीं जहाँ यह नहीं। व्यापक और व्याप्य जब कहते हैं, जैसे अग्नि व्यापक और धुआँ व्याप्य है, वहाँ मतलब है कि जहाँ-जहाँ धुआँ होगा, वहाँ-वहाँ अग्नि जरूर होगी, भले ही जहाँ-जहाँ अग्नि हो, वहाँ धुआँ हो यह जरूरी नहीं है। अर्थात् जो व्याप्य होता है, वह तो कम देश में रहने वाला होता है, जो व्यापक है, वह अधिक देश में रहने वाला है। इसलिये जहाँ-जहाँ व्याप्य रहता है, वहाँ-वहाँ व्यापक तो रहता ही है, परन्तु व्यापक वहाँ भी रहता है जहाँ व्याप्य नहीं रहता। इसी प्रकार जहाँ देश वहाँ तो व्यापक ब्रह्म है, परन्तु जहाँ देश नहीं वहाँ भी ब्रह्म है। इसलिये देशदृष्टि से वह व्यापक है। दूसरी काल की दृष्टि है, जहाँ काल है, वहाँ व्यापक ब्रह्म है, जहाँ काल नहीं, वहाँ भी है। ऐसे समझ लो : बेटा तीस साल का, बाप पचास साल का; बेटे के प्रत्येक तीस साल के समय में बाप रहा ही, परन्तु बेटे के तीस साल से पहले बीस साल तक जब बाप था, तब बेटा तो नहीं था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसीलिये बाप को बृहत् कहा जाता है बेटे की अपेक्षा। ब्रह्म शब्द का मतलब है, बड़ा। देश की दृष्टि से कहो चाहे काल की दृष्टि से, बड़ा दोनों ही अर्थों में है। सारी सृष्टि का कारण होने से काल का भी कारण है, इसीलिये काल से 'पहले' भी उसको होना ही पड़ेगा। इसी तरह देश का कारण है तो देश से पहले भी होना ही पड़ेगा।

परमात्मा सृष्टि का कारण है, यह सृष्टिप्रक्रिया को समझने के लिये सहारा लेना चाहिए तुम्हारी स्वप्न की सृष्टिप्रक्रिया का। वहाँ से तुम्हें ठीक समझ आता है। सपने में तुम देश बनाते हो। वहाँ जो तुम्हें सड़क दिखाई देती है, वह तुम्हारी बनाई हुई सड़क ही है। वहाँ जो सूर्य-चन्द्र चक्कर लगा रहे हैं या घड़ी का काँटा घूम रहा है, वे बाहर के सूर्य-चन्द्र तो हैं नहीं, तुम्हारे बनाये हुये हैं। इसलिये कितनी तेजी से चक्कर काटें यह तुम्हारी मर्जी पर है। कई बार नौ बजकर पाँच मिनट पर सोने गये, अकस्मात् उठे, पसीना छूट रहा है, घड़ी पर नजर गई तो देखते हो कि नौ बजकर दस मिनट हुए हैं! परन्तु सपने में तुमने अपनी घड़ी इतनी तेज चलाई कि तुम पचपन साल के हो गये! तुम्हारी सेवा-निवृत्ति के निर्देश हो गये। तुमसे अफसर ने कह दिया 'दस लाख रुपये मिनिस्टर साहब को दे दो, मैं तुम्हारा पाँच साल का सेवा-विस्तार करा देता हूँ।' तुमने अपना 'प्रोविडैन्ट फण्ड' और 'ग्रैच्युटी' निकाल कर मिनिस्टर साहब को दे दिया। रात में दिया और सवेरे अखबार खोला तो खबर थी कि सरकार भंग हो गई। पढ़कर पसीने छूट गये और उठ गये। तुमने तीस साल की नौकरी भी कर ली, जीवनभर की कमाई निकालने में दो-तीन महीने लगा भी दिये। यह सारा धंधा कितनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देर में किया? पाँच मिनट में। तुम्हारी घड़ी है, तुम चाहे जैसे घुमाओ। सपने के देश को भी तुम ही बनाते हो, काल को भी तुम ही बनाते हो, उस देश और काल से पहले तुम हो। उस सबकी अपेक्षा से तुम सूक्ष्म भी हो। कारण सूक्ष्म और व्यापक होता है। ब्रह्म कारण होने से सर्वाधिक महत्तावाला है। 'खलु' ऐसा निश्चय करना है। निश्चय करने के तरीके पर विचार करते हुये कल बतला रहे थे कि वह सच्चिदानन्दरूप है। आनन्द के पाँच प्रकार कहे।

प्रिय, मोद, प्रमोद इन तीन का विचार कल कर लिया था। जो अपनी इच्छा का विषय है, उसके दर्शन से 'प्रिय' नामक सुख होता है, वह चीज़ मिल जाये तब मोद और जब उसका भोग कर लिया तब प्रमोद होता है। चौथा है कारणानन्द, भोग के बाद जो तृप्ति का बोध होता है। वहाँ विषय सर्वथा गौण है। भोगकाल में तो विषय प्रधान है, लेकिन जब भोग का अन्त हो जाता है, तब विषय गौण हो जाता है, विषय की गौणता रहते हुए तृप्ति होती है, इसीलिये उसे कारणानन्द कहा। असल में जो तुमको दर्शन, लाभ और भोग से आनन्द हुआ उससे तुम्हारे अंत:करण में आनन्द की वासनायें बनी हैं। उन वासनाओं के कारण तुमको तृप्तिरूप आनन्द की प्रतीति हो रही है। अब विषयभोग नहीं है लेकिन जो आनन्दों की सूक्ष्म वासनायें बनी हैं उनके कारण तृप्तिरूप आनन्द आया है। इसलिये उसको कारणानन्द कहते हैं, कहीं-कहीं इसे वासनानन्द भी कहा है। जैसे तृप्ति में उसका अनुभव होता है, वैसे ही जब तुम कोई कार्य कर लेते हो तब भी होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भोग में ज्ञानेन्द्रियों से काम लेते हो, आँख से देखा, कान से सुना; आनन्द में विलक्षणता है कि केवल ज्ञानेन्द्रियों से ही नहीं होता, कर्मेन्द्रियों से भी होता है। किसी ने कोई बात कही, उसका तुमने माकूल जवाब उचित समय पर दे दिया, जो उसका जवाब होना चाहिये था इष्टतम वही जवाब दे दिया। उस आदमी ने भी प्रसन्नता से उसको स्वीकार कर लिया। यहाँ तुम्हें कोई भोग नहीं हुआ। स्वीकार करने वाले का चेहरा सुन्दर हो जरूरी नहीं है! यह नहीं कह सकते कि उसके हँसते चेहरे को देखकर प्रसन्नता हुई। लेकिन तुमने जो उसका जवाब होना चाहिये था, वह दिया इससे तुम्हें आनन्द आता है। यदि उस समय ठीक जवाब नहीं मिल पाया, वहाँ से घर आ रहे थे, अकस्मात् याद आया 'अरे यह जवाब देना चाहिये था', तो दुःखी होते हो कि 'यह वहाँ याद आना चाहिये था'। इस प्रकार कर्मेन्द्रियाँ भी सुख-दुःख का कारण बन जाती हैं, केवल ज्ञानेन्द्रियाँ ही नहीं। जो लोग चलने के शौकीन होते हैं वे जब बीस-पचीस मील चल लेते हैं, तो उन्हें आनन्द का बोध होता है और नहीं चल पायें तो दुःख होता है कि आज घूमने नहीं जा सके। जो लोग केवल इसलिये जाते हैं कि व्यायाम हो जायेगा, शरीर ठीक रहेगा, उनको आनन्द नहीं आयेगा। वे तो कर्त्तव्य की पूर्ति करते हैं।

इसी प्रकार चालीस किलोमीटर चलकर आये हो, थक कर खटिया पर लेटे हुये हो, तो सुख का अनुभव होता है कि नहीं? कोई तब आकर कहे 'गर्म पानी से नहा लो', तो कहते हो 'आधा घण्टा लेटने दो, अभी नहीं नहायेंगे, बाद में ठण्डे पानी से ही नहा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लेंगे।' लेटने में सुख का अनुभव हो रहा है। इसी को तूषणींभाव का सुख कहते हैं। जैसे तृप्ति काल में विषयानुभव नहीं है, पर विषयानुभव की वासना है इसी प्रकार यद्यपि तुम कोई क्रिया नहीं कर रहे हो लेकिन क्रियानिवृत्ति की वासना है। जिसको क्रिया से दुःख का अनुभव होता है, जबरदस्ती चलना पड़ता है, वह चलने के बाद दुःख की वासना से लेटे हुए भी दुःख का अनुभव ही करता है। चाहे कुछ जानकर, चाहे कुछ करके जो आनन्द तूषणींभाव में, चुपचाप की अवस्था में होता है वह कारणानन्द है।

तीन हो गये विषयों से होनेवाले आनन्द। चौथा हो गया विषय से हुए आनन्द के संस्कारों से होनेवाला आनन्द और पाँचवाँ है आत्मानन्द अर्थात् ब्रह्मानन्द। इसका थोड़ा-बहुत अनुभव होता है गहरी नींद में जब किसी भी द्वैत का अनुभव नहीं है। अज्ञान वहाँ है, लेकिन अज्ञान की उससे अलग होकर प्रतीति नहीं है। वस्तुतः अज्ञान कभी तुमसे अलग होकर रहता ही नहीं है! न ज्ञान तुमसे अलग होकर रहता है, न अज्ञान तुमसे अलग होकर रहता है। तुम्हारा ज्ञान व अज्ञान हमेशा तुम्हारे साथ रहेगा, तुमसे एक होकर रहेगा। तुम यह नहीं कह सकते कि मैंने अपना अज्ञान टेबल के ऊपर छोड़ दिया! ज्ञान और अज्ञान हमेशा आत्मा से अभिन्न होकर रहते हैं। यह बात दूसरी है कि ज्ञान स्वरूप से रहता है और अज्ञान मायिक सम्बन्ध से रहता है। चूँकि मायिक सम्बन्ध से रहता है इसलिये ज्ञान निवृत्त नहीं होता। तुमसे बाहर अज्ञान नहीं, अज्ञान का कार्य रहता है। जिन चीज़ों की बाहर प्रतीति होती है वे अज्ञान से उत्पन्न होने वाली हैं, अज्ञान का कार्य हैं। रस्सी में साँप क्यों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दीखा? रस्सी के अज्ञान से, मन्दान्धकार था इसलिये कुछ पड़ा दीख गया, 'रस्सी है' ऐसा दीखा नहीं। रस्सी के अज्ञान से ही सर्प पैदा हो गया। रस्सी के ज्ञान से सर्प पैदा नहीं होता! मिथ्या सर्प को पैदा करनेवाला रस्सी का अज्ञान है। रस्सी का अज्ञान किसमें है? तुममें है। उस अज्ञान का कार्य कहाँ रहेगा? जहाँ रस्सी है, वहाँ रहेगा। अज्ञान का कार्य अपने से बाहर दीखता है, परन्तु अज्ञान अपने से बाहर नहीं दीखता। गहरी नींद में अज्ञान का कोई कार्य है नहीं, केवल अज्ञान मौजूद है, किसी चीज़ को पैदा नहीं कर रहा है।

ऐसे समझ लो : मन्दान्धकार में हमें दीखा 'यह है', आगे हमने उसके विशेष ज्ञान के लिये कोई प्रयत्न नहीं किया। हमने समझ लिया कि यहाँ कुछ पड़ा हुआ है अर्थात् हमारे अज्ञान ने कुछ कार्य नहीं किया। क्या पड़ा हुआ है, यह पता नहीं है, परन्तु उस अज्ञान ने वहाँ सर्प, जलधारा, माला, दण्ड को पैदा नहीं किया। इसी प्रकार गहरी नींद में अज्ञान तो है, परन्तु उससे आगे कुछ कार्य नहीं हुआ। सुषुप्ति के अन्दर आनन्द स्वप्रकाशरूप से आता है। जो तीन विषयानन्द बताये उनमें भ्रम हो जाता है कि विषय के कारण सुख हुआ; क्योंकि विषय की मौजूदगी में होता है। कारणानन्द के अन्दर यद्यपि विषय मौजूद नहीं रहता तथापि शंका रहती है कि पहले खाया था तब तृप्ति आई है, पहले चले थे तब तूषणींभाव आया। विषय उस समय मौजूद न होने पर भी विषय की वासना बनने के लिये विषय जरूरी है। परन्तु गहरी नींद के अन्दर न विषय है, न विषयवासना। वहाँ स्वप्रकाशरूप से भासमान स्वयं आनन्द ही है। वहाँ त्रिपुटी नहीं है। प्रायः जब तुम आनन्द भोगते हो तब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीन होते हैं–एक मैं भोगनेवाला, दूसरा जिसको भोग रहा हूँ और तीसरा भोगरूप क्रिया। सुषुप्ति के अन्दर न मैं भोगनेवाला अलग हूँ, न जिसका भोग कर रहा हूँ वह उससे अलग और न उसकी प्रतीति ही अलग, वह अपने प्रकाश से ही प्रकाशित हो रहा है। विषय होने पर भी आनन्द, विषय की वासना से भी आनन्द और विषय एवं वासना भी नहीं, तब भी आनन्द है। इसलिये आनन्द व्यापक हुआ है और ये व्याप्य हुये।

शास्त्रकार कहते हैं कि इन पाँच को छोड़कर सारे ब्रह्माण्ड में और कोई आनन्द नहीं है। इसलिये तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा कि आनन्दमय कोष के अन्दर ये पाँच ही भाग हैं। सारे संसार में इन पाँच प्रकार के आनन्दों को छोड़कर और कोई आनन्द नहीं है। आनन्द का विचार हम लोग नहीं करते इसीलिये हर चीज़ को देखते हैं तो सोचते हैं कि यह नया सुख है। सारी मानवीय संस्कृति का आधार है वर्गीकरण। पशु चीज़ों को तो वैसे ही देखते हैं, जैसे हम लोग देखते हैं, किन्तु पशु उनका वर्गीकरण नहीं कर सकते। किन-किन चीज़ों में समानता है, इसे लेकर हम अलग वर्ग बना लेते हैं। उस वर्ग के गुण-धर्म का हमें पता लग जाता है तो बाकी सबका उसमें समावेश हो जाता है। इस आधार पर सारे ज्ञान, सारे विज्ञान बँट जाते हैं। आनन्दों का वर्गीकरण होने पर जब कोई आनन्द चाहते हो या प्राप्त हो तब तुरन्त समझो कि किस वर्ग का है, इसमें क्या-क्या चीज़ें निहित हैं। जो पाँच प्रकार के आनन्द बताये इन सबका अधिष्ठान ब्रह्म सच्चिदानन्द है। आनन्द समेत सभी 'तज्जलान्' उसी से उत्पन्न होता है, उसी में लीन होता है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसी में मौजूद रहता है। जड पदार्थ सद्ब्रह्म से पैदा हुए यह बतला दिया था। सद्ब्रह्म से ही पंचमहाभूत बने, बाकी सब चीज़ें बनीं इसलिये सर्वत्र उसकी अनुभूति है, संसार की सब चीज़ों में 'है' मिलता है। जैसे घड़े-सकोरे सब मिट्टी से पैदा हुए तो सबमें मिट्टी मिलती है, वैसे सर्वत्र सत् मिलता है। चीज़ कब तक रहती है? जब तक 'है'। इसलिये उसको जीवन देनेवाला कौन? 'है'। जैसे घड़े को रखनेवाला कौन? मिट्टी। अगर कोई कहे 'आप अपनी मिट्टी को रखिये, हम घड़ा ले जाते हैं' तो क्या यह सम्भव है? मिट्टी की तरह सत् सबको स्थिति देता है। अन्त में जब पदार्थ नष्ट हो जाता है, तो किसमें चला जाता है? घड़ा फूट गया, घड़ा नहीं है, पूछो कि घड़ा कहाँ गया? तो ठीकरे हैं उन्हीं के रूप में घड़ा बचा, इसी प्रकार हीरों का हार टूट जाये तो बिखरे टुकड़ों में वह रह जाता है तभी टुकड़े बटोर कर सँभालते हो। बटोरने पर टुकड़े मिलाकर देख लेते हो कि पूरा हुआ या नहीं। हार बनायेगा तो सुनार, लेकिन टुकड़े पूरे मिल गये तो समग्र बन सकेगा। इसी प्रकार घड़ा टूट गया तो घड़ा ही ठीकरा 'है'। आगे ठीकरों को पीस दिया तो पीसने के बाद मिट्टी 'है'। कोई भी चीज़ लीन होती है, तो किसी-न-किसी 'है' में जाती है। नाम-रूप बदल गया, वह नहीं रहा, परन्तु 'है' रहा ही। तज्जलान् होने से प्रपंच को सद्रूप बताया।

इसी प्रकार ब्रह्म आनन्दरूप है, ऐसा क्यों? 'तज्ज' आनन्द से सब पैदा होता है। जहाँ तुम्हें इष्टदर्शन या इष्टभोग से, विषयानन्द की प्राप्ति होती है वहाँ आनन्द किससे आता है? तुम्हारा अन्दर ब्रह्मानन्द, आत्मानन्द है, उसी का वह प्रतिबिम्ब है। यदि विषय में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आनन्द हो तो सदा सबको प्रतीत हो। जैसे रसगुल्ला सफेद है। तुम्हारे लिये भी सफेद है, सभी के लिये सफेद है। लेकिन हमें मीठा बहुत अच्छा लगता है इसलिये रसगुल्ले को देखकर आनन्द आता है, जबकि हमारे पुराने पण्डित जी को रसगुल्ला देखकर गुस्सा आता था! कहते थे 'दूध को रड़ाकर गुलाब जामुन बनाते, पेड़ा बनाते, दूध को फाड़ कर बरबाद कर दिया! सारा घी तो निकल जाता है।' आजकल के लोगों को घी निकल जाने से खुशी होगी पर पुराने लोग बुरा मानते थे। राजस्थान के अन्दर दूध में ऊपर से घी डालते थे, तब बच्चे दूध पीते थे, जैसे आजकल चॉकलेट वगैरह डालकर पीते हैं। किसी दिन घी कम दिया तो बच्चे गुस्सा करते थे कि मेरा घी काट दिया। रूखा दूध पीते ही नहीं थे। तात्पर्य यह कि घी में सुख होता तो आजवालों को भी आता।

घी निकले हुये पनीर में पुराने लोगों को कोई रुचि नहीं थी, उनको उसमें प्रियता का बोध नहीं था। जिसको भयंकर मधुमेह (डायबिटीज) है, उसको उससे द्वेष होता है कि क्यों आप लोग रसगुल्ले बनाकर खाते हो। जो खुद बीमार है, वह दूसरों को यही उपदेश देगा कि मीठा न खाओ। जिसे हृदयरोग है, वह उपदेश देता है कि घी कोई खाने की चीज़ नहीं है। सामने पड़े विषय में यदि आनन्द होवे तो तीनों को रसगुल्ला जैसे दीखता सफेद ही है, वैसे प्रिय भी लगता। रसगुल्ले के सफेद दीखने में तो कोई फरक है नहीं लेकिन रसगुल्ला प्रिय है या अप्रिय है यह भेद मिलता है। इससे पता चलता है कि सुख विषय में नहीं वरन् मुझमें है। आनन्दरूपता हम देते हैं विषय को। हमने जब निर्णय किया कि हमें मीठा स्वाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अच्छा लगता है, तब रसगुल्ले में आनन्दरूपता आ गई। हमारे अन्दर से आई का मतलब क्या? हमारा अधिष्ठान ब्रह्म आनन्दस्वरूप है, वही विषय में प्रतिबिम्बित हो जाता है, दीखता वहाँ है। तुम काँच में मुँह देखते हो, तो मुँह दीखता काँच में है, परन्तु मुँह होता गर्दन पर है! इसी प्रकार आनन्द दीखता है रसगुल्ले में परन्तु है हमारे अन्दर। यदि आनन्द रसगुल्ले में होता तो बाकी सबको भी दीखता। चूँकि वह मेरे प्रतिबिम्बरूप से पैदा होता है इसलिये मुझसे ही पैदा है। आनन्दरूप ब्रह्म से ही विषयानन्द प्रतिबिम्ब की तरह पैदा होता है। मेरे अन्दर का आनन्द जब तक प्रतिबिम्बित है तभी तक रसगुल्ला आनन्द लगता है। उसमें आनन्दरूपता रहेगी तब तक जब तक हम उसमें आनन्द देंगे। पचपन रसगुल्ले खा लिये, तृप्त होकर आराम से बैठ गये, अब विषय को आनन्दरूप नहीं दे रहे हैं। उस समय आनन्द हमारे अन्दर ही मौजूद है, हमें मजा आ रहा है। जब तक वह तृप्ति मुझमें रहेगी तब तक मेरा आनन्द प्रकट रहेगा। उस आनन्द के कारण ही ये विषयानन्द पैदा हुए, उसके कारण ही विषयानन्द तृषणींभाव में वासनानन्द के रूप में मौजूद रहा। तृप्ति में बड़ा मजा आ गया। जब बहुत मजा आता है तब क्या होता है? नींद आ जाती है। तेज़ आनन्द के तुरन्त बाद चाहते हो कि सो जाओ। जब तुम सुषुप्ति में चले गये तब प्रतिबिम्ब-आनन्द तुममें लीन हो गया।

सुषुप्ति के आनन्द के अन्दर सब कुछ लीन होता है, तुम्हारा बाकी आनन्द भी उसमें लीन हो जाता है। प्रतिबिम्बरूप से आनन्द को 'उत्पन्न' करने वाला, विषयानन्द की समाप्ति में तृप्ति हो जाने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से अपने अन्दर ही उसका आनन्द लेने वाला अर्थात् विषयानन्द के 'स्थिति'काल में उसे प्राण देने वाला तथा सुषुप्ति में अपने में लीन करने वाला 'तज्जलान्' आनन्द आत्मा ही है। इसीलिये कहा कि संसार में इन पाँच आनन्दों से भिन्न कुछ नहीं है। आनन्द से ही आनन्द उत्पन्न होता है, आनन्द में ही आनन्द रहता है और अन्त में आनन्द में ही लीन होता है। इसलिये ब्रह्म ही आनन्द का एकमात्र कारण होने से सभी आनन्द ब्रह्मरूप है।

हम लोगों के जितने कार्य हैं, जो कुछ भी हम करते हैं, उन सबका उद्देश्य साक्षात् या परम्परा से आनन्द पाना ही है। संसार में कोई भी दुःखी होने के लिये कार्य नहीं करता, करता सुख के लिये है, साक्षात् या परम्परा से। अभी हमने रसगुल्ला खाया तो साक्षात् आनन्द हुआ। हर महीने हम अपनी तनख्वाह से पाँच सौ रुपये काट कर एक बैंक में डाल देते हैं, कई बार घर में खर्चे की कमी पड़ जाती है, तो भी कहते हैं कि 'पाँच सौ रुपये तो डाल ही दो।' तकलीफ भी होती है। घरवाली डाँटती है 'क्या पाँच सौ रुपये डालते रहते हो।' लगता तो है कि वह दुःख भोग रहा है, पाँच सौ रुपये वहाँ डालने के बजाय घर में खर्च कर दे तो सुखी हो जायेगा। पर वह दुःख के लिये प्रवृत्ति नहीं कर रहा है! जब लड़की हो गई बीस साल की, शादी पक्की हो गई, गहने चाहिये, कपड़े चाहिये इस सबमें उन इकट्ठे किये रुपयों को खर्च कर लेता है, शादी आनन्द से कर लेता है। उसे सुख होता है कि 'अगर मैंने उस समय से पैसे इकट्ठे न किये होते तो आज क्या करता!' वहाँ साक्षात् सुख के लिये नहीं कर रहा है, परम्परा से सारे दुःख भोगने इसलिये हैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि लड़की की शादी करने में सुविधा रहे। हमारे सब कार्य या साक्षात् सुख के लिये होते हैं या परम्परा से आगे सुख के लिये होते हैं। उद्देश्य जीवन में आनन्द ही है। वह आनन्द हमारे अन्दर ही है, कभी प्रवृत्ति कराता है, कभी वासना बनाता है, कभी लीन कर लेता है।

इस ब्रह्म को जिसने जान लिया 'मैं ही आनन्दरूप हूँ' वह भय को कैसे प्राप्त कर सकता है! दूसरा कोई तुम्हारे सुख को दूर करके ही तो भय दे सकता है। तुम्हारी जेब में रुपये हैं, कोई छीन ले तो तुम्हें दु:ख होगा; क्योंकि वह तुम्हारे सुख की चीज़ है। इसी प्रकार किसी ने तुम्हारे मकान पर कब्जा कर लिया तो दु:ख होगा क्योंकि उसे तुम अपने सुख का कारण सोच रहे थे अथवा कोई तुम्हें जेल में डाल देगा तो तुम्हें दु:ख होगा; क्योंकि तुम्हें घूमने-फिरने के सुख से अलग कर देगा। जितने भी दण्ड हैं, सब किसी-न-किसी तरह से तुम्हें सुख लेने से अलग करते हैं। जब पता लगा कि वह सुख मेरा अपना स्वरूप है तब कोई सुखों को कैसे दूर कर सकता है! अब तक तो मेरी बेवकूफी थी कि समझता था कि दूसरी-दूसरी जगह सुख है। परन्तु अब पता चल गया कि और कहीं सुख नहीं है, सुख मेरा आत्मा है, अत: कोई कैसे भय देगा! तुम्हें किस तरह से डरायेगा, तुम्हारा कर क्या सकता है! यह निश्चय सभी चिन्ताएँ मिटाता है। पिछले या अभी के कर्मों की चिन्ताएँ भी अब ताप देती नहीं। 'पुण्य कर्म नहीं हुआ तो मुझे सुख नहीं मिलेगा, पाप कर्म हो गया तो मेरा सुख चला जायेगा', ऐसा विद्वान् को नहीं लगता। मैं सुखरूप हूँ तो मेरा सुख कहीं चला कैसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जायेगा! चीनी की मिठास को कोई घटा सकता है क्या? बाकी चीज़ों में तो चीनी कम-ज्यादा कर सकते हो पर क्या चीनी में चीनी डाल सकते हो? मैं ब्रह्मानन्दस्वरूप हूँ तो कोई कर्म इसमें कहाँ से बढ़ोतरी करेगा, कोई कर्म इसमें कटौती कैसे करेगा। कर्म की अग्नि से उत्पन्न होने वाली चिन्ता उसे ताप नहीं देगी। इसलिये विद्वान् न पाप करता है, न पुण्य करता है। केवल अपने आत्मानन्द का स्मरण करता है। उसके ऊपर बड़ी-से-बड़ी विपत्ति आती है तो उसे कोई फ़र्क नहीं पड़ता।

एक महात्मा थे सदाशिव ब्रह्मेन्द्र। टीपू सुल्तान के समय में हुये थे। बचपन से ही उनके अन्दर बड़ा वैराग्य था। उस जमाने में बचपन में ही ब्याह कर देते थे। तेरह साल के थे, गुरुजी के घर से पढ़कर आये, माँ से कहने लगे 'जल्दी भोजन करा दे, वहाँ पाठ होने वाला है।' पढ़ने के लिये जाते थे, भोजन के लिये छुट्टी मिली थी। माँ ने कहा 'ज़रा बैठ जा, आज भोजन देरी से मिलेगा।' उन्होंने सोचा कि बनने में देरी होगी तो अपना पाठ विचार करने लग गये। पुरानी बात सुना रहे हैं; आज के बच्चे होते तो टेलिविजन देखने लग जाते! थोड़ी देर पाठ को याद किया फिर कहा 'माँ, अब तो दे दे। बहुत देर हो गई।' माँ ने कहा 'आज जल्दी नहीं मिलेगा, बहुत चीज़ें बनेंगी, आज तेरी सगाई होने जा रही है।' वे सोचने लगे कि अभी तो सगाई की तैयारी हो रही है तभी भोजन समय पर नहीं मिल रहा है, आगे ब्याह के बाद क्या हाल होगा! उन्होंने किसी से कुछ कहा नहीं, सीधे परमशिवेन्द्र सरस्वती-नामक संन्यासी महात्मा के पास जाकर कहा 'महाराज, मुझे तो संन्यास दे दो।' उन्होंने कहा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'क्या हुआ?' कहने लगे 'महाराज, मेरी सगाई होने जा रही थी, सब लोग कहें 'इधर बैठ, बाद में खाना मिलेगा', कहीं शादी हो गई तो क्या हाल होगा! मुझे नहीं रहना इस संसार में।' गुरु ने समझाया, लेकिन वे तो समझे-समझाये थे, निश्चय पर स्थिर रहे तो संन्यास हो गया।

पढ़ने में अत्यन्त कुशल बुद्धिवाले थे ही, अत्यन्त वैराग्यवान् भी थे। बड़ी तीव्र बुद्धि होने के कारण जब परमशिवेन्द्र सरस्वती से मिलने बड़े-बड़े पण्डित आया करते थे, तो कई बार स्वामीजी अन्दर होवें, सदाशिव बाहर सेवा में बैठे रहते थे। पण्डितों से बातें होने लगतीं तो युक्ति और शास्त्रों से वे पण्डितों की कमजोरी बतला देते थे। पण्डितों में एक अहम् होता है। जवाब तो नहीं दे सकते थे क्योंकि युक्ति और शास्त्रों की दृष्टि से सदाशिव की बातें सही होती थीं, लेकिन मन में दुःख ज़रूर होता था, अतः कम जाने लगे। कई दिन हो गये, तो परमशिवेन्द्र सरस्वती ने पूछा 'कोई अनुष्ठान मिल गया क्या, तुम कई दिनों से आ नहीं रहे हो, बात क्या है?' उनमें से एक ज़रा खुले मुँह वाला था, कहने लगा 'आयें क्या, आपने एक भौंकनेवाला कुत्ता रख छोड़ा है अपने दरवाजे पर, कौन आयेगा?' गुरुजी बोले 'अरे सदाशिव! तू ये बकबक करना कब बन्द करेगा?' गुरुजी का कहना था कि उसके बाद जब तक वे मरे उनके मुँह से कोई शब्द ही नहीं निकला, अखण्ड मौन ले लिया! धीरे-धीरे परम अद्वैत में उनकी स्थिति हो गई। बिलकुल दिगम्बर वेश में घूमा करते थे, उनको संसार का कोई होश नहीं था। ऐसा नहीं समझ लेना कि मूर्खों की तरह घूमते थे! उन्होंने अनेक ग्रन्थों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का निर्माण किया। पास में कुछ होता नहीं था, दिगम्बर रहते थे अंगुली से बालु पर लिख देते थे! दूसरे लोग देखें तो उतार लेते थे कागज के ऊपर।

एक बार वे अपने ही ढंग से जा रहे थे। कावेरीपत्तनम एक जगह है मैसूर प्रान्त में। कावेरीपत्तनम पर टीपू सुल्तान ने आक्रमण कर दिया था, उसकी सारी फौज वहाँ थी, उनके तम्बू उधर ही थे। टीपू की औरतें जिधर थीं, उधर से वे निकल गये। उन्हें तो कोई होश था नहीं कि किधर जा रहे हैं। औरतों की तरफ नंगा साधु जा रहा है, देखकर एक सिपाही ने उनका हाथ काट दिया! उन्हें इसका भी पता नहीं चला। वे वैसे ही चलते रहे। अगले गाँव पहुँचे तो लोगों ने घेर लिया, भिक्षु थे, सब जानते थे। पूछा 'महाराज, आपके हाथ को क्या हुआ?' हाथ को क्या हुआ, सुनकर उनको ख्याल आया, उन्होंने अपनी आँख से देखा और कटने के स्थल पर हाथ फेरा तो हाथ पहले जैसा था वैसा-का-वैसा हो गया। लोगों ने जाकर यह बात टीपू को बतायी, तो वह बहुत घबराया, आकर क्षमा माँगने लगा। उनको तो कुछ बोलना नहीं था।

जब हम अपने आनन्द को आत्मरूप से जानते हैं तब कौन-सी चीज़ हमें दुःखी कर सकती है। हाथ का कटना-न कटना, इसको आनन्दरूप और दुःखरूप बनानेवाला तो हमारे अन्दर का ब्रह्मानन्द है। मान लो हमारे हाथ में कैंसर हो गया, गैंगरीन हो गया। डॉक्टर कहता है कि हाथ कटाये बिना कोई उपाय नहीं है। तब क्या कहते हो? 'सबसे अच्छा सर्जन कौन है? चाहे दस हजार रुपया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लग जाये, पर सर्जन अच्छा होना चाहिये।' क्या करवाना है? हाथ कटवाना है। हाथ कट गया तो कटा हाथ तुम्हें प्रसन्नता दे रहा है या दुःख दे रहा है? कटे हाथ के अन्दर भी आनन्दरूपता सम्भव है। आनन्दरूपता स्वयं हमारे अन्दर वैसे ही है जैसे सदाशिव ब्रह्मेन्द्र के अन्दर थी। इस बात को जो जानता है, वह फिर कभी भय को प्राप्त कर नहीं सकता। इसलिये दोनों कर्मों को, पाप और पुण्य को छोड़कर वह लक्ष्यरूप आनन्द की प्राप्ति के लिये केवल अपने आत्मानन्द का स्मरण करता है, जो परमानन्दरूप है। इसलिये कभी किसी प्रकार का भय उसके अन्दर सम्भव ही नहीं है।

❖

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन : सातवाँ

(५.४.९८)

सामवेद की कौथुमीशाखा की छान्दोग्योपनिषत् के तीसरे अध्याय के चतुर्दश खण्ड के प्रथम मन्त्र की व्याख्या चल रही है। मन्त्र कहता है—'यह' इस तरह प्रतीत होता सब कुछ निश्चितरूप से ब्रह्म है। उसी से सबका जन्म है, उसी में सब लीन होते हैं, उसी से सब जीवन पाते हैं। उस ब्रह्म का ही ध्यान करना चाहिये; क्योंकि सब उससे उत्पन्न है, उसी के रहते रहता है और अन्त में उसी में उपसंहृत हो जाता है, लीन हो जाता है, अत: सब उससे भिन्न नहीं हो सकता। जो चीज़ें जिससे पैदा होती हैं, जिसके रहते रहती हैं और अन्त में तद्रूप ही रह जाती हैं, उन्हें उससे भिन्न नहीं कह सकते। संसार में सद्रूपता, 'हैपना' उसी ब्रह्म से है। चित्पना अर्थात् ज्ञान भी उसी से है और आनन्दरूपता भी उसी से है। जैसे मन की वृत्ति होती है तो ज्ञान *प्रकट* होता है वैसे मन की शान्त वृत्ति में आनन्द प्रकट होता है। जितनी अधिक शान्ति होगी उतनी अधिक आनन्द की अभिव्यक्ति होगी, जितनी शान्ति कम होगी विक्षेप ज्यादा होगा, उतना ही आनन्द कम प्रकट होगा। जहाँ विषय की प्राप्ति है, वहाँ भी वृत्ति अन्दर की तरफ लौटते हुये आत्मा को विषय करती है तभी आनन्द होता है। जब वासनानन्द, कारणानन्द होता है, तब भी उसी का प्रतिबिम्ब है और सुषुप्ति समाधि इत्यादि के अन्दर तृप्ति की परम शान्त अवस्था है इसलिये आनन्द है। आनन्द में ही मनुष्य का चित्त रमता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आज रामनवमी है। 'राम' का मतलब क्या? जिसमें मन रमता है, लगता है। 'रमन्ते योगिनो यस्मिन् नित्यानन्दे चिदात्मनि' योगिजन जो परमात्मा के विचार में अपने आपको पूरी तरह से लगाने वाले हैं, वे जिसमें रमते हैं, वह नित्य आंनन्दरूप चिदात्मा 'राम' शब्द से कहा जाता है। योग का अर्थ भगवान् ने गीता में किया 'तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्' उसको तुम योग की संज्ञा वाली चीज़ समझना जहाँ दुःख के संयोग का वियोग है। शंका होती है कि दुःख का वियोग हो जाये, दुःख न रहे इसको क्यों कहा? 'दुःख दूर होना' न कहकर के दुःख के 'संयोग का' दूर होना ऐसी स्थिति को कहा, जिसमें दुःख का संयोग न होवे ऐसा वियोग होता है। दुःख हुआ, दूर हुआ, यह तो दुःख का वियोग है। दुःख दूर हो गया पर कालान्तर में दूसरा दुःख आ जायेगा, फिर उसे हटाने के लिये कुछ कर लिया जायेगा। यदि दुःखवियोग कहा होता तो तात्पर्य होता कि आया हुआ दुःख चला जाये। परन्तु भगवान् ने कहा दुःखसंयोगवियोग। दुःख का संयोग कभी होवे ही नहीं ऐसा वियोग। दुःख का संयोग कभी आवे ही नहीं। दुःख कभी न आवे यह तभी हो सकता है जब वह मायामय हो। माया का स्वरूप है असत्। माया असत्-जड-दुःखरूप होना अवश्यंभावी है।

इसलिये दुःख का संयोग कब नहीं होगा? जब माया का संयोग नहीं रहे। माया अर्थात् अज्ञान। अज्ञान का संयोग अज्ञान से ही है। ज्ञान से जब अज्ञान की निवृत्ति होती है तब ऐसा नहीं होता कि 'अब तक अज्ञान था और अब हट गया' वरन् निश्चय होता है कि 'अज्ञान का मेरे साथ कभी कोई सम्बन्ध हुआ ही नहीं'। जिस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकार कोई व्यक्ति भाँग पी लेवे और नशे में कहे 'मैं चाण्डल हूँ' जबकि है ब्राह्मण। भाँग का नशा उतरने पर यह नहीं कहता 'मैं चाण्डाल था और ब्राह्मण बन गया'। कहता है 'मैं कभी चाण्डाल था ही नहीं, नशे से अपने को चाण्डाल कह रहा था। चाण्डाल बन गया ऐसा नहीं।' इसी प्रकार जब हम अपने स्वरूप को जानते हैं तो अपना स्वरूप ऐसा प्रतीत नहीं होता कि 'हम बँधे हुये थे और अब मुक्त हो गये' वरन् 'हम नित्य मुक्त थे, अपने को बँधा हुआ मान रहे थे।' इसलिये दुःख का संयोग अर्थात् अनात्मा का संयोग। उसका जो संयोग हमेशा के लिये मुक्त हो गया वह योग शब्द से कहा जाता है। इसलिये योगी लोग किसमें रमण करते हैं? देश, काल और वस्तु से जो अपरिच्छिन्न चीज़ है उसी में रमते हैं। अन्त कहते हैं सीमा को। यहाँ तक की ज़मीन हमारी, यहाँ तक जमीन तुम्हारी–यों देशगत परिच्छेद होता है। कालगत परिच्छेद होता है : सत्रह तारीख तक का राज्य तुम्हारा, अठारह तारीख से राज्य हमारा शुरू हो गया। कल तक गुजराल साहब का राज्य था, अब वाजपेयी साहब का राज्य हो गया। कालगत परिच्छेद अर्थात् उससे पहले नहीं था, उससे आगे नहीं होगा। इसी प्रकार, प्रत्येक वस्तु की सीमायें हैं : जो घड़ा है, वह कपड़ा नहीं है, जो कपड़ा है, वह घड़ा नहीं है। वाजपेयी गुजराल नहीं हैं, गुजराल वाजपेयी नहीं हैं। यह वस्तुपरिच्छेद है।

देशगत परिच्छेद, कालगत परिच्छेद और वस्तुगत परिच्छेद इन तीन परिच्छेदों के सिवाय चौथी कोई चीज़ नहीं जो सीमा बाँधे। तीन सीमायें हैं – देश की, समय की और चीज़ के अपनत्व की।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन तीनों सीमाओं से जो रहित है, उसमें योगिजन रमण करते हैं। माया का कार्य किसी-न-किसी देश में होता है, किसी-न-किसी काल में होता है, किसी-न-किसी वस्तु के रूप में होता है। इसलिये जिस अनन्त में रमण करते हैं, वह कैसा है? नित्यानन्द। आनन्द तो सब चाहते हैं, आनन्द में सब रमण करते हैं, परन्तु परिच्छिन्न आनन्द में। रसगुल्ले का आनन्द, गुलाब जामुन का आनन्द, गुलाब के इत्र का आनन्द, बढ़िया रेशम के कपड़े का आनन्द आदि परिच्छिन्न आनन्द में रमण करते हैं। जिसने अपने को देश, काल और वस्तु से आगे का स्वरूप समझ लिया वह ही उस नित्यानन्द में रमण करता है, इसलिये परिच्छिन्न आनन्द उसे आनन्द ही नहीं लगता।

ऐसे समझ लो : रतन टाटा अपनी मर्सिडिज मोटर में बैठकर जा रहा है। अचानक उसकी नजर पड़ती है कि सड़क पर पड़ा हुआ दस पैसे का सिक्का चमक रहा है। क्या वह अपनी गाड़ी रोककर उस सिक्के को उठायेगा? दस पैसे का सिक्का पैसा नहीं है, यह बात नहीं है, लेकिन जिसके पास अरबों रुपये हैं, उसके लिये दस पैसा नहीं-जैसा है। इसी प्रकार जो देश, काल और वस्तु से अपरिच्छिन्न अनन्त आनन्द के अन्दर स्थित है, उसके लिये ये सारे-के-सारे क्षणिक आनन्द बेकार हैं। ये आनन्दरूप नहीं हैं ऐसी बात नहीं है, पर आनन्द के प्रतिबिम्ब होने से तद्रूप हैं। अत: इन आनन्दों के लिये मुख्यानन्द से विमुख होना बेकार है। योगी विद्यानन्द में रमण करता है। संसारी लोग परिच्छिन्न आनन्दों में रमण करते हैं, जबकि विद्वान् नित्यानन्द में रमण करता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नित्यानन्द चिदानन्द ही है। योगी का रमण जिसमें होता है वह 'राम' शब्द से कहा गया। ब्रह्म को ही 'राम' शब्द से प्रकट कहा गया क्योंकि वहाँ आनन्दरूपता प्रकट है। रमण होता है आनन्दरूपता के कारण। राम के जीवन की बड़ी भारी विशेषता है कि क्षणिक आनन्दों की अपेक्षा नित्यानन्द वहाँ ज्यादा प्रस्फुटित है। उस आनन्द का कारण है वैराग्य, क्षान्ति और औदार्य। भगवान् राम क्यों अवतरित होते हैं? पुराणों में कथा बतलाई है।

एक बार विष्णु भगवान् ब्रह्मलोक में ब्रह्माजी के पास गये। वहाँ उनके मानस पुत्र सनत्कुमार बैठे थे। भगवान् के आने के पहले ब्रह्माजी कोई दूसरी बात कर रहे थे, तो सनत्कुमार उस अपने आत्मस्वरूप में मग्न हो गये थे। ब्रह्माजी के पास देवता लोग अपनी बातें लेकर आ गये थे। 'उस देश में यह हो रहा है, उसके साथ वह हो रहा है' आदि। ब्रह्माजी को ये संसारी बातें करनी पड़ रही थी। सनत्कुमार परम वैराग्यवान् थे, उन्हें ये बातें सुननी नहीं थीं, तो वे समाधि में चले गये। उसी समय में विष्णु भगवान् आ गये तो ब्रह्माजी ने और सारे देवताओं ने उनका स्वागत किया। सनत्कुमारों को कुछ पता ही नहीं लगा, वे तो समाधि में थे। विष्णु भगवान् ने सोचा कि कुमार अपने ज्ञान के माहात्म्य को लेकर के मेरा अपमान कर रहे हैं! वे समाधि में बैठे थे, इस ओर उनका ध्यान नहीं गया। कहने लगे 'तू इतना घमण्ड कर रहा है, भूलोक में जाकर कार्तिकेय के रूप में कामग्रस्त होगा, कामना से ग्रसित होगा।' सनत्कुमार अत्यन्त निष्काम हैं, उनके शरीर की स्थिति पाँच साल के बच्चे की ही रहती है। जैसे पाँच साल के बच्चे में किसी प्रकार की कामना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं होती वैसे ही उनमें भी नहीं होती। उन्हें विष्णु ने शाप दे दिया कि कामग्रस्त होगा। यह सुनकर के कुमार को भी गुस्सा आ गया, कहने लगे 'मैं कामग्रस्त होकर पैदा होऊँगा तो तू अज्ञानी होकर पैदा होगा।' सारी ज्ञानपरम्परा का प्रारम्भ नारायण से है।

जैसे सनत्कुमार की विशेषता है कि हमेशा बालभाव में रहने से कभी काम का उद्वेग नहीं, वैसे विष्णु हमेशा अपने ज्ञानस्वरूप में स्थित रहते हैं। अत: जैसे कुमार को कामग्रस्तता का शाप मिला, वैसे विष्णु को अज्ञानग्रस्तता का शाप मिला। इस शाप के कारण भगवान् विष्णु को समय आने पर रामरूप में आना पड़ा। रामरूप में जब बारह वर्ष के थे, तब उनके मन में आया कि सब तीर्थों में देवताओं के मन्दिर और महात्माओं के आश्रम घूमकर दर्शन करें। अपने पिता से उन्होंने निवेदन किया 'मेरी इच्छा है कि भिन्न-भिन्न तीर्थों का दर्शन करते हुये, भिन्न-भिन्न मन्दिरों का दर्शन करते हुये, बड़े-बड़े महात्माओं के साथ रहते हुये मैं कुछ समय व्यतीत करूँ।' दशरथ ने सारा इन्तजाम कर दिया।

बड़े आनन्द के साथ टोली बनाकर मांगलिक शब्दों के साथ ब्राह्मणों के साथ उनको विदा किया। उन्होंने सब जगह भ्रमण किया। जहाँ जाते, महात्माओं का संग करते, देवताओं का विधिवत् पूजन करते, तीर्थों में स्नान करते। इस प्रकार सर्वत्र सात्त्विक सम्पदा में घूमते हुये उनके चित्त में वैराग्य हो गया। कई बार लोग पूछते हैं कि 'चित्त शुद्ध हुआ कि नहीं, कैसे समझें?' वे समझते हैं कि जैसे कपड़े को जितना धोओ वह सफेद होता जाता है, ऐसे ही चित्त धुलता होगा! चित्त का मैल है राग, चित्त के शुद्ध होने का मतलब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है राग का दूर होना। यदि अंतःकरण में वैराग्य नहीं आ रहा है, तो निश्चित समझो कि चित्त की शुद्धि नहीं हो रही। जब वैराग्य होगा तब मैल निकलेगा। वे लौटकर आये तो संसार के स्वरूप को बार-बार सोचते रहते थे। गाल पर अंगुली रखकर पद्मासन में दीर्घकाल तक बैठे रहते थे। सेवक आयें, कहें 'चलिये भोजन का समय हो गया' तो जायें, एक-आध फुलका खाया-नहीं खाया, बस भोजन हो गया। इस प्रकार उनके अन्दर तीव्र वैराग्य से यही विचार चलता रहता था कि सारा संसार क्या है, हम यहाँ क्यों आये हैं? हमारा क्या स्वरूप है? ये सब कैसे उत्पन्न हुए हैं? क्या सम्बन्ध है हमारा सब चीज़ों से? इस प्रकार का चिन्तन करते रहते थे। सेवकों ने जाकर दशरथ से जिक्र किया कि रामजी को आजकल वैराग्य हो गया। आजकल के लोग कहेंगे कि 'डिप्रेशन' हो गया, अवसाद हो गया! दशरथ ने तुरन्त वशिष्ठ जी को बुलवाया और पूछा कि इस परिस्थिति में क्या करना चाहिये।

वशिष्ठ जी ने विस्तार से सारी बात पूछकर कहा 'राजन्, घबराने की कोई बात नहीं है। अत्यन्त दुर्लभ वैराग्य इनके मन में उत्पन्न हुआ है। वैराग्य का उत्पन्न होना बड़े पुण्य प्रारब्ध का फल है। दीर्घकाल तक मनुष्य पुण्य कर्मों में लगा रहता है, तब वैराग्य आता है। इनका मन दुःखी नहीं है। मन दुःखी होता है तो किसी चीज़ के कारण, कमी दूर हो जाये तो दुःख भी दूर हो जाता है। वैराग्य किसी चीज़ की कमी के कारण नहीं होता है! उसमें तो संसार में सार ही नहीं दिखाई देता। किसी चीज़ की कमी नहीं वरन् सारी चीज़ें निस्सार दिखाई देती हैं, साररहित दिखाई देती हैं। ऐसा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैराग्य इनको हुआ है। अभी ये तीर्थयात्रा इत्यादि करके आये हैं, इस कारण यह वैराग्य उदय हो गया है। घबराने की कोई बात नहीं है।'

वे लोग अभी ये बातें कर ही रहे थे, तब तक विश्वामित्र जी आ गये। बात बीच में ही रह गई। सब उठकर विश्वामित्र जी का स्वागत करने लगे। वशिष्ठ जी आगे गये, राजा भी खड़े हुए, आसन बिछाया, आदर सत्कार से उनको बैठाया, पाद्य अर्घ्य दिये। उसके बाद विश्वामित्र जी से पूछा 'आप कैसे आये?' उन्होंने बतलाया 'हमारे यज्ञ में विघ्न आते हैं, उन्हें दूर करने में राम ही सक्षम हैं, उनको आप भेज दीजिये।' दशरथ कहने लगे 'अरे, अभी तो उसकी उम्र बहुत कम है। बारह साल की उम्र में तीर्थयात्रा करने गया, तीन साल यात्रा की, अभी उसका पन्द्रहवाँ साल चल रहा है, सोलहवाँ लगा नहीं है और अभी वह अत्यन्त चिन्ता में पड़ा हुआ है। न उसे खाने का होश है, न नहाने का होश है, बस बैठा-बैठा घुल रहा है, पीला पड़ रहा है, दुबला हो रहा है।' विश्वामित्र जी ने कहा 'राजन्! आपकी ये बातें हमारी समझ में तो आई नहीं। राम इस तरह की चिन्ता में तो हो नहीं सकते, आप बात बनाते हो। पहले तो कह दिया 'जो बात है सो कह दीजिये' अब टाल रहे हो। याद रखना, मेरा क्रोध अभी गया नहीं है, मैंने नियन्त्रण में भले ही कर रखा है। ऐसा न हो कि तुम्हारा नुकासन हो जाये।' वशिष्ठ जी बोले 'नहीं-नहीं महर्षि, ऐसी बात नहीं है। समस्या है कि उसको अत्यन्त वैराग्य का उदय हुआ है, वह नित्यानन्द की तरफ जा रहा है।' विश्वामित्र ने कहा 'यदि ऐसा है तो बहुत अच्छा है, ज्ञान के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्बन्ध में आपसे अच्छा उपदेश देने वाला कौन हो सकता है! आप बैठे हुये हैं, तो उसको बतला क्यों नहीं रहे हो? वशिष्ठ कहने लगे 'मेरे सामने आज ही बात आई है।' विश्वामित्र जी ने कहा 'उनको बुलाइये।'

राम को बुलाकर पूछा तो उन्होंने अपने चिन्तन का निचोड़ सुनाकर अपनी स्थिति कही। वशिष्ठ जी ने उनको उपदेश दिया, जिसमें उनको उनके आत्मस्वरूप का ज्ञान कराया। अपने स्वरूप में तो पहले ही थे, किन्तु जो सनत्कुमार का शाप था कि 'अपने स्वरूप को भूल जाओगे मनुष्य शरीर में जाकर', उसको पूरा करने के लिये उतने समय तक उनको अज्ञान रहा। उसके बाद ज्ञान बना रहा। सारा उपदेश देने के बाद वशिष्ठ जी ने पूछा 'तुम क्या समझे?' शास्त्र की मर्यादा है कि जब तक शिष्य किसी चीज़ को ठीक से समझ न लेवे तब तक उपदेश दिया जाता है। जनक के पास याज्ञवल्क्य गये उपदेश के लिये; उसके एक प्रश्न का जवाब देते थे तो प्रसन्न होकर जनक कहता था 'आपके इस जवाब के लिये हजार गायें देता हूँ दक्षिणा में।' याज्ञवल्क्य तुरन्त जवाब देते थे 'मेरे पिता ने कहा है कि जब तक शिष्य के सारे संशय निवृत्त न हो जायें तब तक कुछ नहीं लेना।' अन्त में जनक को जब ज्ञान हुआ तब कहा 'मैं सारे राज्य के साथ अपने को अर्पण करता हूँ।' तब याज्ञवल्क्य समझ गये कि उसने समझ लिया है कि विद्या हजार गायों की दक्षिणा के बराबर नहीं वरन् पूरा-का-पूरा ही लेती है!

वशिष्ठ के प्रश्न पर श्रीराम ने उत्तर दिया—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'परमाकाशमेवेदमपरिज्ञातमात्रकम् ।
संसारतामिवाऽस्माकं गतं चित्रमहो नु भोः ॥'
(यो.वा.निर्वा.उ. १९२.४)

वस्तुतः जैसा है, वैसा न समझा गया 'परम आकाश' परमात्मा ही हमारी दृष्टि से संसार-जैसा हो गया, यह कितना आश्चर्य है! ब्रह्म आकाश की तरह है। किसी बड़ी ऊँची दीवाल में छोटा-सा छेद हो, उसमें से देखें तो जितना दीवाल से इधर खुली आँखों से आकाश दीखता है, उतना ही छेद से दूसरी ओर! इसी प्रकार हमारे हृदय के मध्य भी मानो छेद है, इससे बाहर जितना संसार का विस्तार है, भीतर भी उतना ही विस्तार है। हृदय के छिद्र के द्वारा यह सारा ब्रह्माण्ड दीख रहा है। सारे ब्रह्माण्ड का ज्ञान हम लोगों को इस हृदयछिद्र में बैठकर हो रहा है। जैसे परिच्छिन्न किले में बैठे हुये छिद्र से बाहर देखते हैं, तो बाहर सब कुछ दीख जाता है, इसी प्रकार हम परिच्छिन्न अवस्था में हृदय के अन्दर बैठे हैं, परन्तु हम उस छिद्र से देखेंगे तो हमें सारा ब्रह्माण्ड ऐसे दीख जाता है जैसे हाथ में रखा हुआ आँवला दीखता है। इसीलिये श्रीराम कहते हैं कि आत्मवस्तु की पूर्ण व्यापकता का ज्ञान नहीं हुआ इतने-मात्र से, उसको नहीं जानने के कारण ही मानो वह संसारता को प्राप्त हो गया! जन्म-मरणादि दुःख, भय, शोक को प्राप्त हुआ-सा दीखता है।

संसारता को ब्रह्म वस्तुतः कभी प्राप्त नहीं हो सकता परन्तु नहीं जानने के कारण संसाररूपता को प्राप्त हो गया ऐसा लगता है। यही सर्वाधिक आश्चर्य की बात है। यह श्रीराम का दृढ निश्चय है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिसके लिये यहाँ कहा है 'स क्रतुं कुर्वीत' कि साधक निश्चय करे। आगे कहा—

'यत् किंचिज्जगदद्याऽत्र भातीदं परमेव तत्।
परं परे परापूर्णे पूर्णमेवावतिष्ठते ॥'

जो कुछ भी 'इदं जगत्' यहाँ अध्यस्त है, जिस भी अवस्था में हम हैं, वहाँ जो कुछ भी संसार का भान हो रहा है, वह देश-काल और वस्तु के परिच्छेद में ही होगा, जो भी चीज़ दीखेगी वह किसी देश में दीखेगी, किसी काल में दीखेगी, कोई-न-कोई उसका अपना रूप होगा, जो उसे दूसरी चीज़ों से अलग करेगा। यद्यपि प्रतीति होती है देशकालवस्तु-परिच्छिन्नरूप से तथापि परमेश्वर तत्त्व वस्तुतः साक्षात् परम ही है। ऐसे जान लो : तुम कह सकते हो कि तुमने मुम्बई का समुद्र देखा है, परन्तु मुम्बई का समुद्र हो या मद्रास का या कलकत्ते का, जल तो एक ही है। इसलिए यदि कहते हो 'यह समुद्र का टुकड़ा है' तो भी तुम्हें पता है कि यह समुद्र ही है। कबड्डी खेलते हैं तो कहते हैं 'तुझे छू लिया, अतः तू मर गया' मतलब कि छू दिया तो खेल से बाहर हो जाता है। क्या सिर से पैर तक छूते हो? कहीं भी छू लिया जाये तो मान लिया जाता है कि छू लिया। 'मेरे हाथ को छुआ, पाँव को छुआ, मुझे कहाँ छुआ?' यह कहो तो कोई मानेगा? इसी प्रकार कहते हैं 'हमने उसे देखा जी'। क्या देखा? कमीज पहने हुए था, उसके नीचे पायजामा पहने हुए था, यही तो देखा है। लेकिन माना जाता है कि उस आदमी को देख लिया। आदमी एक है, उसके 'टुकड़े' होते हुए भी आदमी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

टुकड़ों वाला नहीं, एक ही अखण्ड है। इसी प्रकार जो भी पदार्थ हमें दीख रहा है, वहाँ प्रतिभासरूप से परमपिता परमात्मा ही दीख रहा है। अब तक हम नहीं जानते थे तो हम समझते थे कि ये चीज़ें दीख रही हैं। चीज़ों के रूप में कौन दीख रहा है? परमात्मा ही। टुकड़ों में दीखते हुए भी वह पूर्ण बना रहता है। उसके टुकड़े हो गए हों, ऐसा नहीं है। जब मैं समाधि से उठता हूँ, आँखें खोलकर देखता हूँ, विक्षेप या व्यवहार-अवस्था में आता हूँ, उस समय वही परब्रह्म परमात्मा मुझे विश्वरूप का दर्शन करवा रहा है। गीता में भी विश्वरूप दिखलाया था। वह ईश्वर विश्वमूर्ति है। अर्जुन ने प्रार्थना की रोज़ वाले रूप को देखने की। ऐसा नहीं कि विश्वरूप किसी दूसरे का था और जो रोज़ देखता था वह दूसरे का रूप हो! इसी प्रकार समाधि में जो दीख रहा है और व्युत्थानकाल में, व्यवहारकाल में जो दीख रहा है ये दो नहीं हैं, एक है। विश्वरूप के अन्दर तो विष्णुरूप है, समाधि के अन्दर जो रूप है वह सच्चिदानन्द ही है। दोनों रूप दिखानेवाले परमात्मा एक ही हैं। एक दशा में सृष्टि के रूप में दीख रहा है, दूसरी में सृष्टि के अभावरूप में दीख रहा है।

रामजी के सारे संशय चले गये तो वशिष्ठ ने उनकी प्रशंसा की। रामजी बोले—

'आनन्दितोऽस्म्यखेदाय सुखितोऽस्मि चिराय च।
स्थितोऽनस्तमयायैव शाश्वतार्थोदयो मम ॥'

(२०२.९)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैंने ऐसा आनन्द प्राप्त कर लिया, जिसमें आगे कोई खेद, कोई दुःख होनेवाला नहीं है। सारे विश्वरूप को देखते हुये मुझे कोई भ्रम नहीं होनेवाला है।

यह फर्क है : विश्वरूप का दर्शन अर्जुन को तो व्याकुल करता है और तत्त्व में निष्ठावाले को वह विश्वरूप व्याकुल नहीं करता। इसलिए कहते हैं कि ऐसा आनन्दित हूँ कि अब कभी खेद होने वाला नहीं है। हमेशा के लिये मैं सुख में ही मग्न हूँ। मेरा जो मोह, अज्ञान था, वह आपकी कृपा से नष्ट हो गया। जो मेरा नित्य पद है, वह मुझे प्राप्त हो गया। है तो वह मेरा ही पद, लेकिन अभी तक अप्राप्त था, अब प्राप्त हो गया। उस परम पद में स्थित हुए मेरे मन में कोई संदेह नहीं रहा है। मेरा स्वभाव ही ब्रह्मरूपता है। मेरा विज्ञान अभी तक सनत्कुमार के शाप से आवृत हो गया था, पर अब निरावृत हो गया है, जो ओढनी थी, ढक्कन था, वह हट गया। अब आप जैसा कहेंगे वैसा ही करूँगा।

किन्तु तत्त्वनिष्ठ के लिये ग्रहण करने या छोड़ने योग्य कुछ रह न जाने से उसे क्या करने को कहा जाये! सर्वत्र आत्मस्वरूप ग्रहण होने पर अनात्मा है नहीं तो ग्रहण-त्याग आदि व्यवहार असम्भव है। अभी जिसे दुःख समझते हैं, उसे छोड़ते हैं, जिसे सुख समझते हैं, उसे पकड़ते हैं लेकिन सर्वत्र सद्ब्रह्म देखनेवाला किसे छोड़े! दुःख भी 'है' अतः उसकी ब्रह्मरूपता निर्बाध है। जैसे खेलने में मिट्टी से सना अपना लड़का त्याज्य नहीं होता, भले ही उसे नहला दो, वैसे दुःख देने वाली चीज़ भी तो परमपिता परमात्मा ही है। ठीक है, उसके ऊपर थोड़ा-सा दुःख का मैल दीख रहा है। वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैल दूर हो सकता है। कैसे दूर हो जाता है? कोई चीज़ दुःख देती है, जब तुम्हें अच्छी नहीं लगती है। अगर तुम अपने 'अच्छे लगने' को बदल दो तो वही चीज़ दुःख नहीं देती है! गीत-संगीत के बीच-बीच में कोई चिल्लाने लगे तो हम लोगों को बुरा लगता है। आजकल इंग्लैंड अमेरिका से एक तरह का गाना चला है, जिसमें बीच-बीच में खूब हल्ला मचाते हैं, उसको वे लोग अच्छा मानते हैं! जिस चीज़ को हम लोग बुरा मानते हैं, उसी को अच्छा मानने वालों को वही अच्छी लगती है। रात में बारह बजे तक जगना हम लोगों को बहुत बुरा लगता है। नौ बजे ही लगने लगता है कि सो जाएँ, तो अच्छा है। जिन लोगों ने रात एक बजे तक जागने की आदत डाली है टेलिविजन आदि देखते-देखते, वे कहते हैं कि नौ बजे नींद कैसे आयेगी! शाम को सूर्यास्त के बाद खाना खाओ और सोने जाओ। जो निशाचर हैं, राक्षस हैं, वे रात को ही बाहर निकलेंगे। भगवान् ने सूर्यास्त से इशारा कर दिया कि अब तुम्हारे आराम का समय है, आराम करो, अब भूत-प्रेत बाहर निकलेंगे। तुमने भूत, प्रेत निशाचर बनने को अच्छा समझ लिया तो ऐसा करके खुश होते हो। इसी प्रकार क्यों कुछ दुःखरूप लगता है? क्योंकि हमें अच्छा नहीं लगता। हम उसी को किसी दूसरी दृष्टि से समझ कर अच्छा लगा लें, तो वह दुःख हमारे लिए खत्म हो जाएगा।

चूँकि ज्ञानी ऐसी स्थिति को वैराग्य के बल से बनाने में समर्थ है, इसलिये हेय-उपादेय से वर्जित है। जो चीज़ अच्छी लगती है, उसके प्रति भी विद्वान् के अन्दर वैराग्य है। अतः प्राचीन संस्कार के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेग से प्रतीत होते राग को वैराग्य से काट लेता है। ज्ञानी को उद्वेग देने वाली कोई चीज़ नहीं होने से उसके लिये त्याज्य कुछ नहीं है। उसका अनुभव है कि है सब ब्रह्मरूप, दुःख के रूप को भी धारण करके आया तो ब्रह्म ही है! भगवान् ने भी इसीलिए कहा 'यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः'। गुणातीत के लक्षणों में भगवान् ने कहा कि वह कभी ऐसा आचरण नहीं करता, जिससे दूसरे को उद्वेग हो; क्योंकि उसको कोई दूसरा तो दीखता नहीं है। सबके हृदय में रहने वाला आत्मा मैं अपने आपको समझ रहा हूँ तो 'किसी' को उद्वेग कैसे दूँगा? और, स्वयं भी किसी से उद्विग्न होता नहीं है। उद्विग्न होवे तो आदमी दुःख का अनुभव करे। राग-द्वेष को विवेक-वैराग्य से निरन्तर निरस्त रखने वाला उद्वेग अतः दुःख से परे रहता है। इसलिये जो अपने आत्मस्वरूप को जानता है, उसे किसी कर्म को छोड़ने का प्रयोजन नहीं और किसी कर्म का सहारा लेने का भी प्रयोजन नहीं। इसलिये तत्त्वनिष्ठा के बाद शास्त्र या आचार्य को कुछ नहीं कहना है, जो स्वभाव से प्राप्त होता है, उसे करता चला जाता है। जिस प्रकार यदि तुम्हारे अन्दर देखने की शक्ति है, आँख की रोशनी है, तो किसी को यह उपदेश नहीं देना पड़ता कि रास्ते में काँटे पर पाँव मत रखना, कुआँ आ जाए तो उससे बचकर निकलना; यह सब कहने की ज़रूरत नहीं है। तुम अंधे हो तो तुमसे कहना पड़ता है 'आगे पाँव मत रखना भाई, टूटा शीशा पड़ा है।' अंधे को तो बताना पड़ता है। आँखों वाले को बताने की ज़रूरत नहीं। जब प्रज्ञा-नेत्र आ गया, ज्ञान की आँख खुल गई, तब विधि-निषेध की ज़रूरत नहीं है। ज्ञानी में प्रज्ञा है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतः क्या करे यह कहने की ज़रूरत नहीं है, वह खुद ही जान लेता, कर लेता है।

इस ज्ञान की भूमि पर खड़े होकर रामजी ने सारे जीवन व्यवहार किया। रामचन्द्रजी के बारे में वाल्मीकि जी ने लिखा 'रामो विग्रहवान् धर्मः'। धर्म के वे विग्रह थे, मूर्त्ति थे। लोग चाहते हैं कि जैसा धर्म का आचरण उन्होंने किया वैसा हम भी करें, परन्तु आधारभूत विचार नहीं समझते कि वे क्यों धर्म का आचरण कर सके, वे किस भूमिका में स्थित थे कि उनसे अधर्म का आचरण हो ही नहीं सकता था। वैराग्य की भूमिका के कारण ही : सवेरे राज्य मिलने की तैयारी हो रही है, राज्याभिषेक के लिए जाते हैं और वहाँ से वनके लिए प्रस्थान कर देते हैं! जब उनसे कहा 'तुम्हारा राज्यभिषेक होगा' तो उनका चेहरा खिल नहीं गया, जब उनसे कहा गया जंगल जाने के लिए तो उस पर कोई म्लान भाव नहीं आया! यह है वैराग्य की भूमिका। चौदह साल तक पूरी तरह से ब्रह्मचर्य के नियमों से रहे; क्योंकि तपस्वी के रूप में जाने का आदेश मिला था। वापस आकर अभी सीता के गर्भ में बच्चा केवल आया, उसी दौरान सीता के चरित्र के बारे में हल्ला मच गया तो उन्होंने सीता को वाल्मीकि के आश्रम में भेज दिया। विचार करो, जिसको लौकिक सुख कहते हो वह कहीं भी उनके जीवन मे नहीं था। एक पुत्र उत्पन्न करना ज़रूरी था; क्योंकि शास्त्र कहता है पुत्र को उत्पन्न करना मनुष्य का धर्म है। एक पुत्र उत्पन्न हो गया, शास्त्र-की मर्यादा तो पूरी हो गई। परन्तु जिसे सांसारिक सुख कहते हैं, वह तो उनके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्दर बिलकुल नहीं रहा। राम के जीवन में यह वैराग्य पूरी तरह से देखने में आता है।

ठीक इसी प्रकार उनमें क्षान्ति अर्थात् क्षमा थी। कैकेयी को क्षमा किया, एक बार भी नहीं कहा 'तुमने कोई गलत काम किया'। उसके बाद सुग्रीव से समझौता हुआ कि जल्दी-से-जल्दी वह गुप्तचर भेजेगा। वर्षा खत्म हो गई, कई दिन बीत गए, सुग्रीव ने अभियान शुरु ही नहीं किया। लक्ष्मण को भेजा, उसने डाँटा तो सुग्रीव दौड़कर आया। उसने क्षमा माँगी तो उसे भी तत्काल क्षमा किया। जैसी भी होवे, हर परिस्थिति के अन्दर वे सदा क्षमा ही करते रहे। जिस समय विभीषण आया उनकी शरण लेने के लिए, बड़े-बड़े लोग जो बैठे हुए थे, वे कहने लगे 'दुश्मन का भाई है, जरा सावधान रहने की बात है।' राम कहते हैं 'मैंने भी एक व्रत ले रखा है : 'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते'। मेरा यह नियम है कि कोई एक बार कह-भर देवे 'मैं आपकी शरण में हूँ'। तो मैं उसके सारे भयों को दूर कर देता हूँ।' यह है क्षमा। तुम चाहे जितने अपराध कर लो, उनकी शरण ले ली तो वे क्षमा कर देते हैं।

उदारता उनमें पूर्ण थी। रावण का इतना बड़ा राज्य जीत कर भी उसके भाई विभीषण को बैठाया है। किसी ने कहा 'आप लंका देख तो लीजिए, सोने की है।' रामजी बोले 'क्या देखना है! लंका में क्या है देखने के लिए? 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' मेरे लिए तो अयोध्या ही स्वर्ग से ज़्यादा है।' सोने की लंका ने उनको आकृष्ट नहीं किया। आजकल किसी के पास थोड़ा-सा भी सोना होवे तो सोचता है कि अमेरिका में बहुत शान्ति है, सुख है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अच्छा देश है, वहीं जाना चाहिये, घूम आना चाहिये। याद कर लेना कि रामचन्द्र जी बाहर ही खड़े हैं, लंका के और कह रहे हैं 'मुझे लंका नहीं देखनी'! अन्दर नहीं गये। यह है औदार्य।

तीन प्रधान दोष होते हैं—काम, क्रोध और लोभ। काम नष्ट होता है वैराग्य से, क्रोध नष्ट होता है क्षमा से और लोभ नष्ट होता है उदारता से। ये गुण भगवान् राम में पूर्णरूप से विद्यमान थे। शास्त्रकार कहते हैं कि जो उनके साथ अभेदानुसंधान करता है 'मैं राम हूँ' ऐसा हमेशा भाव बनाता रहता है, अपने अन्दर रहने वाले परब्रह्म परमात्मा की ही रामरूपता का स्मरण करता है, वह संसारी जीव नहीं, समचमुच में ही राम है, इसमें कोई संशय नहीं। आज के दिन भगवान् का अवतार हुआ था। आपके हृदय में भी इस प्रकार से राम का अवतार होकर हमेशा इस बात का स्मरण रहे कि 'मैं रामस्वरूप हूँ' यही सब आप लोगों से कहना है।

❖

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन : आठवाँ

(६.४.९८)

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत। अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथाक्रतुरस्मिँल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत॥२॥

इस वाक्य से महर्षि शाण्डिल्य कहते हैं कि जो कुछ भी प्रत्यक्ष और परोक्ष अनुभूयमान जगत् है, वह सब ब्रह्मस्वरूप है; क्योंकि उसी से उत्पन्न होता है, उसी में स्थित रहता है और अन्त में उसी में लीन होता है। इस बात को समझ कर मनुष्य शान्त होकर इसी बात का निश्चय करे। ब्रह्म सर्वस्वरूप है, यह कैसे समझ में आए? सद्रूप से वह सारी चीज़ों में व्याप़क है; जहाँ-जहाँ अंत:करण है, मन है, जीव है, वहाँ-वहाँ वह ज्ञानरूप से भी व्यापक है। जहाँ-जहाँ वृत्ति शान्त है, वहाँ-वहाँ आनन्दरूप से भी वह व्यापक है। अशान्त वृत्ति के अन्दर ज्ञान का प्रतिबिम्ब पड़ने पर भी आनन्द का प्रतिबिम्ब पड़ता नहीं। इसीलिये कहा 'शान्त उपासीत'। उपासीत का आगे स्वयं ही अर्थ किया 'क्रतुं कुर्वीत'। ब्रह्म के सत् और चिद् रूपों का निश्चय सरलता से हो जाता है 'मैं हूँ' इस अनुभव में। 'मैं जानने वाला हूँ, मेरे साथ हमेशा ज्ञान रहता है, कुछ-न-कुछ जानता ही हूँ' इस विषय में मुझे संदेह नहीं, परन्तु जो चीज़ हमेशा हमारे संदेह का विषय रहेगी वह है कि 'मैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आनन्दरूप हूँ'। मैं हूँ और मैं जानता भी हूँ, परन्तु मैं आनन्दरूप हूँ यह निश्चय नहीं हो पाता।

क्यों नहीं हो पाता? श्रुति कहती है, आनन्द जहाँ रहता है, वहाँ अनंतता होती है। 'यो वै भूमा तत् सुखम्'। जो भूमा, व्यापक है, जिसकी सीमा नहीं है, वही सुख है। जो अल्प परिच्छिन्न, सीमित है, उसमें कभी सुख मिलता नहीं। लोकप्रसिद्ध दृष्टान्त है : किसी राजा ने जमीन पर एक लकीर खींच दी, कहा 'इसे तुम किसी तरह से मिटाओ नहीं, काटो नहीं परन्तु छोटी कर दो।' किसी को समझ नहीं आए कि उस रेखा को बिना काटे, मिटाए छोटी कैसे करें! कोई बुद्धिमान् आया, उसने उसके सामने एक बड़ी लकीर खींच दी। कहा 'अब यह छोटी हो गई' और मानना पड़ा कि छोटी हो गई! जहाँ सातिशयता होगी अर्थात् जहाँ उससे बड़ी चीज़ कोई हो सकती है, वहाँ सान्तता होगी और जहाँ सान्तता होगी, परिच्छिन्नता होगी वहाँ दुःख होगा। दो आदमियों की तरक्की हुई – एक की तरक्की हुई हजार रुपये और दूसरे की तरक्की हुई ग्यारह सौ रुपये। दोनों की हुई तरक्की, परन्तु एक हजार की तरक्कीवाला दुःखी हो जाता है कि काम तो हमने बराबरी का किया, मेरी ग्यारह सौ क्यों नहीं हुई? अगर दूसरे की भी हजार होती तो उसको दुःख नहीं होता। लेकिन साथी की अपने से अतिशय हो गई, मेरी छोटी हो गई, इसलिए दुःख है। जहाँ सातिशयता रहेगी, परिच्छिन्नता रहेगी, सीमा रहेगी, सान्तता रहेगी, वहाँ सुख नहीं रहेगा। हम अपने आपको इस साढ़े तीन हाथ के शरीर में परिच्छिन्न समझ रहे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसलिए सातिशयता जाएगी नहीं और जब तक सातिशयता नहीं जाएगी तब तक निरतिशयता आयेगी कैसे? इसलिये जब तक द्वैत रहेगा तब तक अतिशयता हट नहीं सकती। जब तक कोई दूसरा है, तब तक मेरी परिच्छिन्नता दूर कैसे होगी।

भगवान् सुरेश्वराचार्य कहते हैं 'ब्रह्मार्थो दुर्लभो यस्माद् द्वितीये सति वस्तुनि' ब्रह्म अर्थात् असीम, व्यापक, निरतिशय। कोई चीज़ तिनके के जितनी भी हो जो ब्रह्म नहीं है तो ब्रह्म को सीमारहित नहीं कह सकते। अतः जहाँ द्वैत है, वहाँ दुःख रहता ही है। परन्तु सामान्यतः लोगों में प्रसिद्धि क्या है, क्या सोचते हैं? सोचते हैं कि जहाँ द्वैत है, वहीं सुख है! कोई सुख लेने वाला चाहिये, कोई चीज या व्यक्ति चाहिये, जिससे सुख मिले। लोगों का मानना है कि सुख के लिये कोई भोग-नामक क्रिया चाहिये, उसका कोई विषय चाहिये तथा विषय और भोग से अलग कोई व्यक्ति चाहिये, जिसे भोग हो, उससे सुख हो। जब तक भोक्ता, भोग्य और भोग अलग-अलग न होवें तब तक सुख कैसे होगा! यही सब लोग समझते हैं। शंका उठती है कि अद्वैत की स्थिति में जहाँ अकेला आत्मा होगा, वहाँ क्या मजा आएगा! त्रिपुटी के अभाव में अद्वैत होगा तो सुख कहाँ! कुछ द्वैतवादी यहाँ तक कहते हैं कि रमणीय वृन्दावन में सियार बनना विषयहीन मोक्ष से बेहतर है!

भगवान् पद्मपादाचार्य कहते हैं कि रागी लोग, संसार में जो रागवाले हैं वे ऐसा कहते हैं। सियार होकर भले ही रह जाएँ, परन्तु अद्वैतरूप निरतिशय सुख नहीं चाहते। दृष्टांत भी दे देते हैं कि चीनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खाने में सुख है, चीनी बनने में क्या सुख है! प्रायः लोग यही सोचते हैं कि जहाँ त्रिपुटी है, भोग, भोग्य और भोक्ता का भेद है, वहीं आनन्द है, त्रिपुटी के अभाव में, अद्वैत में सुख नहीं हो सकता। आचार्य विद्यारण्य मजाक में कहते (पंच. ११.२३) हैं कि 'अद्वैत 'में' सुख भले ही न हो, वह स्वयं तो सुख है ही!' अद्वैत में सुख नहीं है यह जो कह रहा है वह बात ठीक है क्योंकि अद्वैत स्वयं ही सुख है। जैसे चीनी में मीठा नहीं डाला जाता, चीनी स्वयं ही मीठी होती है। चीनी को मीठा करने के लिए कुछ डालने की ज़रूरत नहीं है, उसी प्रकार अद्वैत भूमा है, सुखरूप है, स्वयं ही सुख है। जहाँ द्वैत नहीं, वहाँ परिच्छिन्नता नहीं और परिच्छिन्नता का न होना ही सुख है।

विचार करो, लोक में भी सुख का एकमात्र कारण क्या है? प्रेम ही सुख का एकमात्र कारण है। जहाँ प्रेम होता है, वहाँ सुख होता है, जहाँ प्रेम नहीं, वहाँ सुख नहीं। हमें हरी मिर्च का साग अच्छा लगता है, जिसमें लाल मिर्च और पड़ी हो। राजस्थान के लोगों को हरी मिर्च में लाल मिर्च और पड़ी होवे तो खाने में बड़ा मज़ा आता है। एक बार हम कलकत्ते में थे तो कोई बनाकर लाया था बढ़िया मिर्च का साग। वहाँ उस देश के रहने वाले कुछ बंगाली लोग आए हुए थे, कहने लगे 'महाराज, हमें इस चीज़ का प्रसाद दे दीजिए।' हमने सोचा कि वे भी मिर्च खाते होंगे, हमें क्या पता! बहुत साल पहले की बात है। उनको उसमें से दिया, उन्होंने खाई तो इतनी तेज उन्होंने कभी मिर्च चखी नहीं थी, वे सचमुच में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उछलने लग गए! मुँह धोया, कुल्ला किया, चीनी खाई, मिठाई खाई तब भी बीस से पच्चीस मिनट तक घबराते ही रहे। उस मिर्च के स्वादिष्ट साग से उन्हें सुख क्यों नहीं हुआ? कारण कि मिर्च के साथ उन्हें प्रेम नहीं था। जहाँ प्रेम हो, वहाँ सुख होगा, प्रेम नहीं तो सुख भी नहीं। भाई-भाई में प्रेम होता है तो भाई के साथ बैठने जैसा सुख नहीं है और प्रेम नहीं हो तो भाई के साथ बैठना पड़े तो परेशानी होती है। माता-पिता के साथ प्रेम होता है, तो आदमी विदेश में बैठा भी सोचता है 'कब माँ-बाप के पास जाऊँ'। माँ-बाप के साथ प्रेम नहीं होता है तो उसी शहर में रहते हुए हफ्तों नहीं मिलते। प्रेम है तो सुख होता है, प्रेम नहीं तो सुख भी नहीं।

प्रश्न होता है कि प्रेम सबसे ज्यादा किससे है? सबसे ज्यादा प्रेम किसी को भी किससे है? विचार करके देखो, सबसे ज्यादा प्रेम अपने-आप से ही है। 'पिताजी टोकेंगे, यह *मुझे* अच्छा नहीं लगता है' इसीलिए उनसे प्रेम नहीं है। 'भाई मुझसे दस सवाल पूछेगा जो *मुझे* अच्छा नहीं लगता' इसीलिए उससे प्रेम नहीं है। जो चीज़ मुझे अच्छी नहीं लगती, उससे प्रेम नहीं होता, इसका मतलब है कि मुझे अपने आपसे ही सबसे ज्यादा प्रेम है और अपने आपमें द्वैत तो है नहीं, मैं दो तो हैं नहीं! इसलिए अद्वैत प्रेम की पराकाष्ठा है। लोक में भी जिससे प्रेम है, उससे तुम *मिलना* चाहते हो, उससे जितना तुम्हारा संग अधिक होवे उतना तुमको सुख होता है। प्रेम अद्वैत की तरफ ले जाएगा, द्वैत की तरफ ले नहीं जा सकता। आत्मा अद्वितीय होने से, परम प्रेमास्पद होने से आत्मा की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुखरूपता स्वतः सिद्ध है। दुःख हमेशा द्वैत में होता है, प्रेमास्पद के साथ एकता होने में ही सुख की अतिशयता है। यह बात अनुभवसिद्ध है। फिर क्यों यह शंका होती है कि जहाँ त्रिपुटी होगी, भोक्ता-भोग्य-भोग होगा, वहीं सुख होगा? आचार्य सर्वज्ञात्म महामुनि ने संक्षेपशारीरक (१.१८०) में विचार करके बतलाया : आनन्द-शब्द के दो भिन्न-भिन्न अर्थ हैं, जिनमें मनुष्य बड़ी गड़बड़ी कर जाता है।

'बुद्धेर्वृत्तौ तावदानन्दतैका
प्रत्यङ्मात्रे काचिदानन्दतान्या।
तत्सम्पर्कात्तत्र चानन्दतान्या
व्युत्पन्नोऽयं तत्र चानन्दशब्दः ॥'

जब हम घड़े को देखते हैं तो हमारे अंतःकरण की, बुद्धि की वृत्ति घटाकार बन जाती है। उस समय बुद्धि का आकार क्या है? जिसको विषय कर रही है, वही आकार है। इसी प्रकार बुद्धि की वृत्ति जब शान्त अंतःकरण के अन्दर अन्तर्मुखी बनती है, तब आनन्दरूप परमात्मा के आकार की बनती है। अंतःकरण इच्छा के धक्के से बाहर गया, इच्छा पूर्ण हुई तो अन्दर की तरफ प्रतिबिम्ब पड़ा। चूँकि उस समय वृत्ति शान्त है, इसलिये उसमें जो आनन्द का प्रतिबिम्ब पड़ता है, उसको जीव आनन्द ही समझता है। जैसे बुद्धि की घटाकार वृत्ति में पड़े ज्ञानाभास को ही साधारण लोग घड़े का ज्ञान समझ लेते हैं। कभी-कभी अज्ञान से भ्रम में आ जाते हैं तो वृत्ति को ही बाह्य पदार्थ भी समझ बैठते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वप्न में जो चीज़ें दीखती हैं, वहाँ क्या है? मन की वृत्तियाँ ही हैं। परन्तु लगता क्या है? वे सब चीज़ें वहाँ हैं। घड़ा होवे और अंत:करण की घटाकार वृत्ति बने, तब भी लगता है 'वहाँ घड़ा है' और बुद्धि की घटाकार वृत्ति बन जाय तो घड़ा न भी हो तो स्वप्नादि में लगता है कि वहाँ घड़ा है। एक जगह भ्रम है और दूसरी जगह सच्चा ज्ञान है। इसी प्रकार बुद्धि की वृत्ति में जो प्रतिबिम्बि वाला आनन्द है, उसको अभी आनन्द ही समझते हैं। दूसरा आनन्द वह जिसे शास्त्र बतला रहा है। अपना जो प्रत्यगात्मा है, जीव और ब्रह्म की एकता वाला जो साक्षी है, उसकी आनन्दरूपता शास्त्र बतला रहा है। हम लोगों को जो बुद्धिवृत्ति में आनन्द हो रहा है, वह तो प्रतिबिम्बभूत आनन्द है! ऐसे समझ लो : अपने मुँह को देखने का तरीका यह है कि मुँह का काँच में अक्स देखो, काँच के अन्दर प्रतिबिम्ब देखो। अपने मुँह को क्या किसी और प्रकार से देख सकते हो? मुख हमेशा दीखेगा काँच में प्रतिबिम्बरूप से। अपनी बुद्धि से समझना पड़ेगा कि मुँह वहाँ नहीं, कंधे पर लगा हुआ है! कंधे पर लगे हुए सच्चे मुँह का ज्ञान हमेशा झूठे मुँह को देख कर करना पड़ता है। कोई कहे 'काँच में मुँह दीखता है, इतने से क्यों मान लूँ कि मेरा मुँह है?' तो क्या कोई तरीका है, जिससे उसे अपना मुँह दिखा सको?

ठीक इसी प्रकार, जो तुम्हारा प्रत्यगात्मस्वरूप, ब्रह्मस्वरूप आनन्द है, उसे तुम अंत:करण की वृत्ति में ही देख सकते हो। इससे ज्ञान किसका होता है? प्रत्यङ्मात्र का। वेद तो ब्रह्म को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आनन्दस्वरूप कहता है 'विज्ञानम् आनन्दम् ब्रह्म'। आनन्द ही ब्रह्म का स्वरूप है। प्रत्यङ्मात्र को, अपने हृदय की गुफा में छिपे हुए परब्रह्म परमात्मतत्त्व को शास्त्र आनन्दरूप कहता है। उसका अभी हमको अनुभव नहीं है। हमें तो उसकी छाया का अनुभव है। बुद्धि में जो हमें दीख रहा है, वह केवल वृत्ति नहीं है, उसमें मेरा प्रतिबिम्ब भी पड़ रहा है, इसलिये जिस सुख का बोध होता है, वह मेरे सुखस्वरूप का प्रतिबिम्ब है। बुद्धिवृत्ति और उसमें प्रतिबिम्बित आनन्द, इन दोनों को मिला कर साधारण व्यक्ति आनन्द शब्द से समझता है। तत्त्वज्ञान जब तक नहीं हुआ तब तक बुद्धिवृत्ति में पड़नेवाला जो आनन्द का प्रतिबिम्ब, उसी को हम आनन्द कहते हैं। वहाँ वृत्ति भी है, आनन्द भी है, प्रतिबिम्बरूप से उसे जानने वाला चिदाभास भी है, इसीलिए वहाँ त्रिपुटी रहते हुए आनन्द है, जैसे जब तुम्हें अपना मुँह दीख रहा है, तब देखनेवाला मुँह अलग है, जिसमें दीख रहा है, वह काँच अलग है, उस काँच में पड़ने वाला मुँह का अक्स अलग है अर्थात् त्रिपुटी है, तीन हैं। जब तत्त्व समझ में आता है तब पता चलता है कि मेरा मुँह न काँच में है, मेरा मुँह परछाई भी नहीं है, वरन् उससे विपरीत गले पर है! जिस प्रतिबिम्ब को देखा वह पश्चिम को मुँह किए था और मैं पूर्व को मुँह किए हूँ। मेरा दाहिना बाजू उसका बायाँ बाजू है। इतने सब भेद होते हुए भी हमें अपने मुँह का ठीक ज्ञान हो जाता है। जिस मुख का ज्ञान हुआ वह अद्वैत है। कोई पूछे कि 'तुम्हारा मुँह है, यह तुम्हें कैसे पता चला?' तो पता काँच में देखकर ही लगा! काँच में पड़े

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अक्स को देख कर पता लगने पर भी जिसका पता लगा वह एक अखण्ड मुख ही है। इसी प्रकार से आनन्द का अनुभव प्रतिबिम्ब में होगा लेकिन उससे सही रूप में पता लगेगा अखण्ड अद्वैत की आनन्दरूपता का। स्थिति उसी में होगी। इसलिए शास्त्रकार कहते हैं कि परमतत्त्व आनन्द का विग्रह है, आनन्द की मूर्ति है।

मूर्ति को विग्रह कहते हैं। भगवान् राम का विग्रह, कृष्ण भगवान् का विग्रह आदि सब मूर्तियाँ हैं। प्रश्न होता है, आनन्द की मूर्ति क्या है? 'आनन्दविग्रहम् अपास्तसमस्तदुःखं वस्तुस्वभाव-परिवर्जितसर्वभेदम्' (सं.शा. १.२६) आनन्द की मूर्ति यह अपना आत्मतत्त्व है। अपने अन्दर रहनेवाला जो ब्रह्मस्वरूप है, वही आनन्द की मूर्ति है। उसके अन्दर सारे दुःख खत्म हैं, दुःख वहाँ रह नहीं सकता, जैसे सूर्य के अन्दर अन्धकार दीख तो सकता है, जैसे उल्लू को सूर्य में अँधेरा दीखता है, परन्तु उसके देखने काल में भी सूर्य प्रकाशरूप ही रहता है। इसी प्रकार हम लोगों को दीखता है 'मैं दुःखी हूँ', पर तब भी मुझमें दुःख रहता नहीं। मेरे अन्दर दुःख का लवलेश नहीं है। ऐसा निश्चय करने का तरीका बतलाते हैं : जिस चीज़ से दुःख होता है, उसके प्रति प्रेम खत्म हो जाता है। दुःख देने वाली चीज़ के प्रति किसी का राग होता नहीं, किसी का प्रेम होता नहीं। मैं दुःखी हूँ फिर भी मैं के साथ तुम्हारा प्रेम क्या कम हो जाता है? सारा प्रयत्न ही इसके लिए है कि 'मेरा' दुःख हट जाए, इसके लिए नहीं कि मैं ही हट जाऊँ! जिस समय तुम कह रहे हो 'मैं दुःखी हूँ' उस समय भी तुम्हें मैं के प्रति प्रेम ही है, इसीलिए मैं के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुःख को दूर करना चाहते हो। प्रेमास्पद तो वही हुआ करता है जहाँ सुख होवे।

दुःख के बादल को हटाना चाहता हूँ; क्योंकि स्वरूपतः मैं आनन्दरूप ही हूँ। इसीलिए कहा कि परमात्मतत्त्व आनन्दविग्रह है इसमें किसी भी दुःख का स्पर्श नहीं है। प्रत्यगात्मरूप ब्रह्म का स्वभाव ही ऐसा है कि सारे भेदों को हटा देता है। भेद इसके अन्दर रहते ही नहीं हैं, हट जाते हैं; क्योंकि इस वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है। जिस प्रकार कमल के पत्ते के ऊपर पानी पड़ता दीखता है, परन्तु कभी भी पानी उस पर रहता नहीं, यह उस वस्तु का स्वभाव है कि जल के स्पर्श को नहीं सहन करना, वैसे ही आत्मतत्त्व का स्वभाव है कि किसी भी भेद को यह क्षणमात्र भी सहन करता नहीं। प्रत्यगात्मा का, ब्रह्म का यही स्वभाव है। आत्मा का पता कहाँ लगता है? जब स्वाध्याय-विधि के द्वारा वेदों का अध्ययन करता है, तब उस तरफ नजर जाती है, नहीं तो आनन्दरूप होने पर भी नहीं-जैसा बना है। इस तरह, जहाँ द्वन्द्व है वहाँ दुःख है, जहाँ अद्वन्द्व है वहाँ सुख है। जहाँ अद्वैत है वहाँ प्रेम है, जहाँ द्वैत है वहाँ प्रेम नहीं अतः आनन्द नहीं होगा। अद्वैत होगा तो भेद नहीं, भेद नहीं होगा तभी प्रेम होगा, अतः आनन्द होगा। आत्मा ही ऐसा आनन्दविग्रह है। पता उसके बारे में चलता है बुद्धिवृत्ति से इसीलिए हम लोगों को भ्रम बना रहता है कि शायद वृत्ति बनी नहीं रहेगी तो आनन्द नहीं रहेगा। शंका करो कि सच्चे आनन्द के अन्दर कुछ तो अनुभव होता होगा? तो देखो : विचार करो कि किसी दूसरे के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुःख का पता तुम्हें किससे लगता है? कोई आदमी दुःखी है, यह पता किससे लगता है? आदमी के मुख में दीनता नजर आती है तो हम अनुमान करते हैं कि यह दुःखी है। पूछते भी हैं 'क्या बात है, उदास क्यों नजर आ रहे हो?' अगर उसका मुख खिला हुआ है, विकसित है, तब हम अनुमान करते हैं कि आज इसको कुछ-न-कुछ बढ़िया खाने को मिला होगा इसीलिए सुखी है। दूसरे के दुःख और सुख का बोध मुख की दीनता और विकास देखने से होता है। जो परमात्मतत्त्व के अन्दर प्रतिष्ठित हुआ वह कभी किसी परिस्थिति में दीनता का अनुभव नहीं करता। उसके मुख पर कभी दीनता नहीं आती। श्रुति कहती है कि उसके मुँह पर काली झाई तो कभी आ ही नहीं सकती। इससे पता लगता है कि वह आनन्द में है। यह नहीं कहना कि पत्थर के अन्दर भी तो मुख की दीनता नहीं होती! पत्थर के अन्दर तो दुःख की सम्भावना ही नहीं है; क्योंकि वह जड है। जड वस्तु दुःखी या सुखी हो नहीं सकती। ब्रह्मनिष्ठ को देखते हैं, तो उसके मुख पर कभी कालिमा नहीं आती, इसीलिए उसको दुःख नहीं है, यह पता चल जाता है।

अपने सुख-दुःख का तो तुम्हें अनुमान नहीं करना पड़ता, सोचना नहीं पड़ता कि मैं दुःखी हूँ या सुखी हूँ, वे तो अपने अनुभव से ही सिद्ध हैं। आत्मज्ञानी स्वयं अपने अनुभव से 'मैं आनन्दरूप हूँ' इस प्रकार सिद्ध है। आत्मज्ञानी में कभी भी दीनता नहीं आती, हमेशा विकास रहता है। इस मुखविकास आदि से दूसरे भी उसके बारे में अनुमान कर लेते हैं, जैसे दूसरी जगह अनुमान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करते हैं। लोक में भी, कोई सुखी या दुःखी है, यह पता लगाने का तरीका चेहरा देखकर समझना ही है, अपने सुख-दुःख ही खुद पता लगते हैं। आत्मज्ञानी के बारे में भी इसी प्रकार पता लगता है कि वह आनन्दस्वरूप है। जो हमेशा नित्य निरन्तर आनन्द का अनुभव करता है, उसे सीमित चीज़ों के अन्दर किंचित् आनन्द का अनुभव करने का प्रयत्न कुछ विचित्र-सा लगता है।

एक परमहंस महात्मा थे, हमेशा अपने आनन्द के अनुभव में रहते थे। एक बार घूमते हुए कहीं गाँव में पहुँच गए, ब्राह्मणों का गाँव था। वहाँ के ब्राह्मण बड़े नियम से तीनों समय संध्या करते थे। उनसे किसी ने पूछा 'महाराज, यहाँ के लोग कैसे हैं?' उन्होंने कहा 'यहाँ सब नास्तिक ही हैं! सब नास्तिक ही भरे हुए हैं।' लोगों को बड़ा गुस्सा आया कि महात्मा ऐसी बात कहता है। कुछ दिनों के बाद गाँव में कोई मर गया, उसकी शवयात्रा निकली। महात्मा उस समय बैठ हुए थे। पुराने जमाने का नियम है कि कोई मुर्दा निकले तो आदमी खड़ा हो जाये, हाथ जोड़े। अगर कोई थोड़ा भी जान-पहचान का हो तो शव के पीछे चल देते हैं। मुर्दा निकलता है तो उसे कुछ सम्मान देते हैं। मुर्दे को आते देखा तो महात्मा चादर तानकर सो गया! लोगों को यह भी बड़ा बुरा लगा। जब भिक्षा लेने जाए तो जो लोग अपने धर्म को प्रकट करते थे कि बड़े धर्मात्मा हैं, उनके यहाँ नहीं जाए कि 'तू पाखण्डी है, तेरे घर भिक्षा नहीं करूँगा।' लोगों को और बुरा लगा, उन्होंने सोचा कि उसका गाँव में रहना अच्छा नहीं, संध्या पूजा करनेवालों को नास्तिक कहता है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुर्दे का अपमान करता है, जो बेचारे धर्मात्मा हैं, उनको पाखण्डी कहता है।

उन्होंने जाकर राजा से शिकायत की कि 'इसे यहाँ से निकालिए, यह यहाँ रहने लायक नहीं।' राजा के लोग आए उससे पूछने के लिए कि क्या बात है। उससे पूछा तो उसने अपनी अनामिका आगे कर दी और कहने लगे, 'अरे, मुझ परमात्मा की पहले अँगूठी खोल दे, फिर मैं चलूँगा। अँगूठी पहन कर राजा के सामने नहीं जाऊँगा, परमेश्वर की अँगूठी खोल दे।' राजा के लोगों को और बुरा लगा। उन्होंने कहा 'तू अपने को परमेश्वर कहता है'! महात्मा बोले 'मैंने तो यह कहा है कि परमेश्वर की अँगूठी खोल दे।' राजा के आदमियों को भी निश्चय हो गया कि है यह कोई-न-कोई पाखण्डी। दो युवकों ने पकड़ लिया कि कहीं भाग न जाए। पकड़ के राजा के सामने ले गए। राजा ने कहा 'आप महात्मा हैं, आपकी शिकायत आयी है। क्या आप संध्या, पूजा, पाठ करनेवालों को नास्तिक कहते हैं?' वे बोले 'सच्ची बात है। लोग क्यों कह रहे हैं, मैं खुद ही कहता हूँ।' राजा बोला 'यह बात तो ठीक नहीं, यह अनुचित बात है आपकी।' महात्मा ने कहा 'क्या अनुचित कहता हूँ! ये लोग संध्या में गायत्री जपते हुए कहते हैं 'धियो यो नः प्रचोदयात्' कि भगवान् बुद्धि को प्रेरित करें। लेकिन संध्या के बाद परमेश्वर-आज्ञा से नहीं वरन् मन-मर्ज़ी से चलते हैं। यह पाखण्ड, नास्तिकता नहीं तो क्या है?'

नास्तिक वह होता है जो परमात्मा के ऊपर पूरा विश्वास न करे। कहते तो यह हैं कि परमेश्वर सब कुछ करता है। हम लोगों का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रात-दिन का अनुभव है, कहेंगे 'सब कुछ भगवान् करता है', फिर थोड़ी देर में कहेंगे 'काम कराने के लिए घूस देनी पड़ती है। ज़माना बड़ा खराब आ गया है।' या तो तुम कहो कि ज़माने से होता है, परमेश्वर के अनुसार नहीं चलता, फिर परमेश्वर सब कुछ करने वाला है, यह मत मानो। अगर यह मानते हो कि परमेश्वर सब कुछ करनेवाला है तो क्यों चतुराई दिखाते हो कि घूस दोगे तो काम होगा, झूठ बोलोगे तो मुकद्दमा जीतोगे! परमात्मा ने तो कहीं कहा नहीं है कि झूठ बोलोगे तो मुकद्दमा जीतोगे। कहना कुछ, करना कुछ और यह पाखण्ड है एवं ईश्वर को सर्वसमर्थ न मानना नास्तिकता है! राजा ने मान लिया कि बात तो ठीक कहते हैं, है बहुत कड़वी, लेकिन बात ठीक है।

राजा ने कहा 'चलो, यह तो बात हो गई कि लोग अपनी बात पर टिकते नहीं हैं, यह तुम्हारी बात मान ली। लेकिन मुर्दा जा रहा था, उसका तो कोई दोष नहीं था, तुमने मुर्दे का अपमान किया; मुर्दे को देखकर तुम लेट गये। बजाय इसके कि खड़े होते, कुछ आदर देते।' महात्मा ने कहा 'मैंने उसका अपमान नहीं किया। मैं हूँ परमहंस संन्यासी, इसलिए मैं अपने आपको मुर्दा ही समझता हूँ। मुर्दा वह होता है जिसका आत्मा शरीर के साथ नहीं रहे। मैंने विचार करके यह निश्चय कर लिया है 'देहं नाहम्' मैं शरीर नहीं हूँ। मैं शरीर से अलग हो गया। परमहंस अपने को शरीर से अलग समझता है, शरीर से अलग जब आत्मा हुआ तो शरीर मुर्दा है। उस मुर्दे को देखकर मैंने सोचा 'मुर्दा मैं भी हूँ, मुर्दा वह भी है, लेकिन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह तो पक्का मुर्दा है, बाँध के ले जा रहे हैं, तब भी कुछ नहीं बोलता। मैं अभी ज़रा कच्चा मुर्दा हूँ; क्योंकि भूख लगती है तो कुछ लेने को चला जाता हूँ।' उसे देख कर मुझे शर्म आई कि मैं मुर्दा बनता तो हूँ लेकिन अभी बन नहीं पाया। तो मैंने उसका अनादर नहीं किया, शरम के कारण अपना मुँह ढक लिया कि मैं इसके सामने खड़े होने लायक नहीं हूँ, यह सच्चा मुर्दा है, मैं नहीं।'

राजा ने कहा 'यह भी बात ठीक है। बड़े-बड़े धर्मात्मा लोग हैं, कहते हो इनका अन्न लेने योग्य नहीं, यह कैसे?' महात्मा ने कहा 'देखिए, भगवान् ने जहाँ आसुरी सम्पत्ति गिनाई, वहाँ सबसे पहली सम्पत्ति गिनाई है दंभ। दंभ मायने अपने धर्म को प्रचारित करना, मानो अपने धर्म का झंडा गाड़ कर विज्ञापन करना कि मैं धर्मात्मा हूँ। ये लोग धर्म-कर्म करते हैं तो भी धर्मध्वजी बनते हैं ताकि किसी-न-किसी तरह लोगों को पता लगे कि बड़े धार्मिक हैं। यह दंभ है। ऐसी आसुरी सम्पत्तिवालों का अन्न मैं नहीं लेता कि कहीं मेरे अन्दर भी आसुरी भाव न आ जाए। ये धर्म करते हैं, उससे विरोध नहीं है, लेकिन धर्म का ख्यापन करते हैं, धर्म को धंधा बनाते हैं, इसलिए आसुरी सम्पत्तिवाले हैं। जिनमें अपनी धार्मिकता का प्रचार करते हैं उनमें सम्भवतः आज इतनी धार्मिक प्रवृत्ति नहीं कि विज्ञापन कर सकें, लेकिन जो विज्ञापन कर रहे हैं, इनमें भी तो दीर्घकाल से धार्मिकता नहीं रही, तभी दम्भी मनुष्य पैदा हुए, फिर किस श्रेष्ठता को व्यक्त करने का प्रयास है! कुछ बाहर से व्यक्त कर देते हैं, कुछ लोग मन ही मन करते हैं, दोनों दम्भी हैं। जो अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यत्किंचित् पुण्य को भी प्रकट नहीं करते वे कम-से-कम धर्मध्वजी नहीं हैं, धर्म को अपना झंडा नहीं बनाते।'

राजा ने कहा लोगों से 'तुम्हारी शिकायत तो ठीक है, परन्तु इसका जो जवाब है, वह तुम लोगों ने सुन ही लिया, इसे हम अपराधी घोषित नहीं कर सकते।' राजकर्मचारियों ने कहा 'बाकी सब तो ठीक है, लेकिन यह कहता है कि मैं परमेश्वर हूँ।' उन्होंने कहा 'यह तुमने मेरे मुँह से कब सुना!' वे बोले 'तुमने कहा कि परमात्मा की अँगुली से अँगूठी निकाल दो तब राजा के पास चलूँगा।' वे बोले 'यह मैंने ज़रूर कहा। राजन्, यह सारा संसार किसका है? परमात्मा का है। जब सारा संसार परमात्मा का है, तो क्या मेरा यह शरीर परमात्मा का नहीं है? मैंने यही कहा कि परमात्मा की अँगुली है, मेरी नहीं है। मैं पहले कह चुका हूँ कि मैं मुर्दा हूँ, इसीलिए शरीर के अन्दर मेरी वृत्ति नहीं है कि मैं शरीर हूँ। मुर्दे का शरीर किसका कहोगे? जो जीव चला गया उसका तो सम्बन्ध रहा नहीं और दीख रहा है, तो परमेश्वर का ही है। इसलिए मैंने कहा कि परमात्मा की अँगुली से अँगूठी उतार दो। सब कुछ परमात्मा का है, मैंने यह बात कही। राजन्, एक नाई को बुला दो।' नाई आया। महात्मा ने अपनी अँगूठीवाली अनामिका सामने करके कहा 'इसका नाखून काट दो।' जैसे ही उस अँगुली का नाखून उतरा तो उस सभा-मण्डप में जितने बैठे थे सबकी अनामिका का नाखून साफ हो गया! अब राजा समझ गया कि यह खाली बात करनेवाला नहीं है। उसने यह दिखा दिया कि सारे भूतों के साथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्वान् का आत्मभाव होता है। यह आत्मभाव देखकर राजा ने तुरन्त गद्दी से उतर कर नमस्कार किया कि 'मुझ से बड़ी गलती हुई।'

यह केवल उसी एक परमहंस की बात नहीं समझ लेना। हर एक को ऐसा बनना है। कब बनेगा? जैसे हंस नीर-क्षीर का विवेक करता है, उसी प्रकार इस सृष्टि के अन्दर दूध तो है सच्चिदानन्द ब्रह्म और असत्-जड-दुःख-रूप जो चीज़ें हैं, वह सारा है पानी। वे हैं मिले हुए। संसार में सब जगह तुमको असत् पदार्थ 'हैं' प्रतीत होते हैं, जड पदार्थ चेतन की तरह प्रतीत होते हैं, दुःख सुख की तरह प्रतीत होता है। दोनों मिले हुए तुमको प्रतीत होते हैं। जब तुम हंस बनोगे तब दोनों को अलग करोगे। रोज आप लोग सवेरे बोल तो लेते हैं 'कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।' इस सारे संसार में सार एकमात्र शिव ही है। सच्चिदानन्द ही संसार का सार है। जैसे सार निकल गया तो बचे हुए पदार्थ में कुछ नहीं रहता इसी प्रकार यदि तुमने शिव को संसार से अलग कर दिया तो इस संसार में कोई सार नहीं। अभी हमारी यही स्थिति है कि हमारी नजर दूध पर नहीं, पानी पर है।

एक भक्त बतला रहे थे : रोज उनको दूध में पानी मिलता था। एक दिन उन्होंने जाकर दूधवाले से बात की। उसने कहा 'जी, यह तो भाव की बात है, जरा अच्छा भाव दो तो सच्चा दूध मिल जाएगा।' बातचीत करके उन्होंने भाव पक्का कर लिया। दूधवाले ने कहा 'सुबह साढ़े पाँच बजे आकर ले लो, उसी समय आपको दूध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अच्छा मिल जाएगा, बाद में आओगे तो पानी-मिला ही रहेगा।' सज्जन बड़े खुश होकर घर आ गए, घरवालों से कहा, 'जल्दी जाओगे तो दूध अच्छा मिलेगा, अच्छे भाव का मिलेगा।' आजकल के बच्चे रहे! दूध तो पीते नहीं हैं बेचारे, काफी, चॉकलेट वगैरह डालकर पीते हैं तो दूध का स्वाद उनको पता नहीं। उन्होंने कहा 'जी, कोई सच्चा दूध नहीं देता, वह पैसे ले लेगा और दूध भी सच्चा नहीं देगा, सब आपको ठगते हैं।' इन्होंने कहा 'मैं ही दूध लेने चला जाया करूँगा।' जब ज्यादा भाव देने को घरवाले नहीं माने थे तब शुद्ध की मात्रा ही घटानी पड़ी। घर की ज़रूरत पूरी करने के लिये इन्होंने अपने बगीचे में जाकर नल से दूध में पानी मिलाकर उसको पूरा कर दिया! सोचने लगे, 'कम-से-कम साफ पानी तो दूध में मिलेगा! धीरे-धीरे पानी कम करूँगा तो घरवालों को पता नहीं चलेगा।' घर वाले दूध पीते रहे, पुराना वही भाव देते रहे। कुछ दिनों बाद बात-ही-बात में घरवालों को सारा हाल मालूम पड़ गया तो उनका दूध लाना भी बन्द हो गया! बच्चे किसके भक्त थे? मात्रा के। कितना होना चाहिए यही प्रधान था, दूध हो या पानी, इसकी चिन्ता उन्हें नहीं थी।

इसी प्रकार हम लोग संसार के अन्दर असत्-जड-दुःखरूपता के भक्त हैं, साररूप सच्चिदानन्द कितना होना चाहिए इसकी किसी को चिन्ता नहीं। लोगों के पास बहुत बड़े-बड़े मकान हैं, कपड़े, बर्त्तन, सामान हैं, इस सब असत् जड दुःख के बढ़ने को ही हम उन्नति कहते रहते हैं। लोग पहले की अपेक्षा कितने ज्यादा दुःखी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहने लगे, यह कोई पता नहीं करना चाहता। इस दृष्टिवाले विद्वान्, जनसामान्य, सभी अनात्मा की बढ़ोतरी ही महत्त्व की समझते हैं, आत्मपक्ष का कोई विचार आवश्यक नहीं मानते। बल्कि सच्चिदानन्दरूपता की बात भी की जाए तो लोग कहते हैं 'यह तो पिछड़ापन है, बैकवर्ड मूवमेंट है, इसमें क्या रखा है! दुनिया कहाँ-की-कहाँ पहुँच गई है, आप वही पुरानी आनन्द की बात करते हो।' कहते जरूर हैं 'संसारसार' लेकिन हमारी प्रवृत्ति संसार की ओर ही है, सार की ओर नहीं। यदि कल्याण चाहते हो तो सच्चिदानन्द को लेना पड़ेगा, असत् जड दुःख से आनन्द नहीं आ सकता। खाली तीन बार संध्या करने से आस्तिकता नहीं आएगी। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' सब जगह उसकी सच्चिदानन्दरूपता को देखो तभी आस्तिकता होगी।

सच्चिदानन्द संसार के जर्रे-जर्रे में मौजूद है, कण-कण और क्षण-क्षण में मौजूद है, इस बात को समझें तो काम होवे। सब जगह उसको देखना है। उसे देखने के लिए क्या करना पड़ेगा? जैसे वह मुर्दा बना था, वैसे हमें अपने शरीर की तरफ से दृष्टि हटा कर जो शरीर का साक्षी है, चिन्मात्र है, उसकी तरफ दृष्टि ले जानी पड़ेगी। शरीर के लिए वह जितना काम करता है, उसी में लज्जा आती है। अतः महात्मा ने कहा था 'मुझे शरम आ गई उस मुर्दे को देखकर।' इसी प्रकार विद्वान् को सब काम परमात्मा के लिए करना है, जंब तक पूर्ण स्थिति नहीं हुई तब तक थोड़ा-बहुत अपने शरीर-मन के लिये कर लेता है, उसी में उसे बुरा लगता है, पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रारब्धवश मजबूर है। काम तो सब परमात्मा के लिए ही करना है, शरीर के लिये नहीं।

धर्म-ध्वजी का मतलब होता है ध्वजा की तरह धर्म दिखाना। हमें धर्म-ध्वजी नहीं होना है, धर्मरूप होना है। महाभारत में कहा है कि परमात्मा धर्मरूप है। जब तक हम धर्म को अपने से भिन्न समझते हैं तब तक तो हम धर्मवाले बनते हैं और जब हम धर्म को अपने से अभिन्न समझते हैं, तब धर्मात्मा बनते हैं। धर्म दिखाने की चीज़ नहीं है, हमारा स्वरूप है। जब तक वह बाह्य है, ध्वजामात्र है, तब तक हम समय पर धर्म करते हैं, बाकी समय धर्म नहीं करते! धर्मात्मा हो गये तो अधर्म कभी कर ही नहीं सकते। जैसे हम चाहे जितनी प्रगतिवादी, 'सम्पूर्ण क्रान्ति' वाले बन जायें पर क्या मुँह से खाना छोड़कर कान से खाना शुरू कर देंगे! हमने सृष्टि के आदिकाल से मुँह से ही खाना खाया है, ज़माना बदल गया तो कान में डालकर खाया करें! जैसे शरीर को तुम अपना स्वरूप समझते हो, तो शरीरानुकूल ही व्यवहार करते हो, उसी प्रकार धर्म को हम अपना स्वरूप समझें तो उसमें कोई परिवर्तन नहीं चाह सकते। अभी समझते हैं कि धर्म कोई बाहर की चीज़ है। धर्म आत्मा का स्वरूप है, परमात्मा का स्वरूप है। दंभ बुरा है, आत्मा धर्मस्वरूप होना चाहिए, धर्मात्मा होना चाहिए, धर्मध्वजी नहीं।

❖

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन : नौवाँ

(७.४.९८)

जो कुछ भी प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से प्रतीयमान जगत् है, यह सारा-का-सारा सत् से, चित् से एवं आनन्द से अनुविद्ध है। चूँकि सब चीज़ें सत् से अनुविद्ध हैं, अंत:करण ज्ञान से अनुविद्ध है, शान्त आदि वृत्तियाँ आनन्द से अनुविद्ध हैं, इसलिए सब कुछ चिदानन्दरूप ही है। उसी से सब कुछ उत्पन्न हुआ, उसी में लीन होता है और उसी में वर्तमान में भी स्थित है। 'शान्त उपासीत' सर्वथा मन को शान्त करें, तभी यह निश्चय दृढ हो सकता है। सब कुछ परमात्मा-रूप ही है, इस निश्चय में क्या चीज़ रुकावट डालती है, क्यों यह निश्चय नहीं होता? सच्चिदानन्दरूप समझ में तो आता है पर निश्चय क्यों नहीं होता, उसमें हम स्थित क्यों नहीं रह पाते? उसका कारण बतला दिया अशांति। अशांति करने वाली चीज़ कौन है? राग और द्वेष। हमारी सारी प्रवृत्तियों का कारण, सारे विक्षेपों का कारण है कि हमें कुछ अच्छा लगता है और कुछ बुरा लगता है। जो चीज़ अच्छी लगती है उसकी तरफ राग स्वाभाविक है, फिर-फिर यह होवे की भावना रहती है। जो चीज़ अच्छी नहीं लगती है, वह कभी न हो, यह द्वेष भावना भी स्वभाव से होती है। जब तक अच्छा लगना और बुरा लगना रहेगा तब तक राग-द्वेष मिट नहीं सकते। इसलिए शान्ति की प्राप्ति तभी होती है, जब 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' यह निश्चय होवे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मोटी दृष्टि से देखो तो इसके अन्दर अन्योन्याश्रय दोष है : मन शान्त कब हो? जब अज्ञान हटे, क्योंकि बिना अज्ञान हटे राग-द्वेष हटेंगे नहीं। अज्ञान कब हटे? जब ज्ञान हो। और बिना राग-द्वेष हटे ज्ञान होगा नहीं! इसलिये इस प्रक्रिया में अन्योन्याश्रय दोष प्रतीत होता है। परन्तु वस्तुतः इसमें अन्योन्याश्रय दोष नहीं है। आचार्य शंकर ने दो शब्दों का प्रयोग किया : वैराग्य और उपरति। यद्यपि दोनों करीब-करीब एकार्थक शब्द हैं, फिर भी आचार्य शंकर इनका विभिन्न अर्थों में प्रयोग करते हैं। वैराग्य होने पर बोध अर्थात् आत्मज्ञान और आत्मज्ञान होने पर उपरामता आती है। इसका तात्पर्य हुआ कि आत्मज्ञान होने से पहले आत्मा के लिए हमारा राग रहेगा, अनात्मा के लिए द्वेष रहेगा। आत्मज्ञान से पहले राग-द्वेष की *सर्वथा* निवृत्ति नहीं होगी; क्योंकि *केवल* परमात्मा के लिए राग रहेगा और जो परमात्मा से विपरीत है उसके लिए द्वेष रहेगा। असत्-जड-दुःख के प्रति द्वेष रहेगा, सच्चिदानन्द के लिए राग रहेगा। जब ज्ञान हो जाएगा तब असत्-जड-दुःखरूप कुछ है ही नहीं, द्वेष किससे रहे! हमारी चाची के कोई बच्चा है ही नहीं, वह बाँझ है, उसके बच्चे से हमें द्वेष कैसे हो सकता है? ताऊ जी के दो लड़के हैं, इसलिये उनसे तो द्वेष सम्भव है। असत्-जड-दुःखरूप वस्तुतः है ही नहीं तो उससे द्वेष कैसा? सच्चिदानन्द मेरा स्वभाव है, तो उससे राग भी बन ही नहीं सकता; क्योंकि वह नित्य मैं ही हूँ। राग-द्वेष की सर्वथा निवृत्तिरूप उपरति ज्ञान के बाद होती है। आत्मा के प्रति फिर राग भी नहीं; क्योंकि वह मेरा नित्य स्वरूप है, अपना स्वरूप कभी अपने से दूर ही नहीं होता तो 'वह फिर-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फिर होवे' इस भावना का प्रश्न ही नहीं उठता। यह परम वैराग्य जिसे भाष्यकार ने उपरति शब्द से कहा, वह ज्ञान के बाद होता है, इसलिए अन्योन्याश्रय है नहीं। असत्-जड-दुःखरूप संसार से जब तक शान्ति की प्राप्ति के लिए हमें वैराग्य करना है, तब तक इसकी असत्-जड-दुःखरूपता को बार-बार स्मरण करना पड़ेगा। इसीलिये सर्वज्ञात्म महामुनि कहते हैं—

'संसारदोषमवधारयतो यथावद्
वैराग्यमुद्भवति चेतसि निष्प्रकम्पम्।
वैराग्यजन्मनि दृढे च सति प्रवृत्ति-
स्तत्त्वम्पदार्थपरिशोधनकर्मणि स्यात्॥'

(सं.शा. ३.४)

संसार के अन्दर होनेवाले दुःख उसके स्पष्ट दोष हैं। कुछ दोष कभी होते हैं और कभी नहीं होते, वे सामने होवें तो उनमें दोषरूपता दीखती है, नहीं तो नहीं। यह वैराग्य का प्रथम सोपान है।

जिस प्रकार हमें शक्कर की बीमारी है, तो जब बार-बार सोचेंगे कि चीनी खाने से कोई फायदा नहीं, नुकसान है, तब धीरे-धीरे चीनी के प्रति वैराग्य होगा। बहुत से लोग पहले चीनी नहीं खाते थे, क्योंकि पुराने जमाने में चीनी को साफ करने के लिए हड्डी का उपयोग करते रहे। 'हमारा धर्म भ्रष्ट हो जाएगा' इसलिए चीनी नहीं खाते थे। दोषदृष्टि थी तो चीनी नहीं खाते रहे। बहुत से लोग नलका लगने के बाद भी नल का पानी नहीं पीते थे। उसके अन्दर एक पुर्जा होता है, जिसे 'वाशर' कहते हैं। पता नहीं वह किस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जानवर के चमड़े का बना है, यह दोषदृष्टि थी। कमरे के सामने ही सुलभ नल लगा है, खोलते ही पानी आता है, परन्तु उसमें दोषदृष्टि थी तो उस पानी को नहीं पीते थे। चीनी बढ़िया सफेद दीखती थी पर चीनी नहीं खाते थे, गुड़ से काम चलाते थे। जिन्हें यह दोषदृष्टि नहीं है वह चीनी तो क्या हड्डी चूसते रहते हैं, जैसे कुत्ता चूसता है! उनसे कहो 'चीनी खाना छोड़ दो, उसमें हड्डी पड़ती है' तो कहेंगे 'पड़ने दो।' क्योंकि दोषदृष्टि नहीं है। ऐसे ही चमड़े में दोषदृष्टि नहीं है, तो कहेंगे 'पड़ा रहने दो नल में चमड़ा, हमसे क्या कहता है!' दोषदृष्टि रहने पर ही वैराग्य होता है, दोषदृष्टि नहीं तो वैराग्य भी नहीं। इसलिए संसार के प्रति वैराग्य के लिये पहली सीढ़ी है, उसके अन्दर होनेवाले प्रत्यक्ष आदि दोषों को देखो।

शरीर के प्रति राग होता है, शरीर के दोष को देखो। इसकी उत्पत्ति का कारण क्या है? अत्यन्त घृणित स्थल में उत्पन्न होनेवाले शुक्र-शोणित से यह उत्पन्न होता है। बढ़ता किससे है? अत्यन्त घृणास्पद खाद इत्यादि के द्वारा जो अनाज पैदा होता है वही खाकर यह बढ़ता है। चाहे जितना इसको तुम साफ़ करो, घण्टाभर धूप में चलकर आओ तो इसमें से गंदा पसीना निकलता है। इन सबकी तरफ ध्यान दोगे, बार-बार इनका विचार करोगे, तब तो शरीर के प्रति वैराग्य होगा। अगर केवल यही सोचते रहोगे कि 'शरीर को हम कैसे अच्छा बना कर रखें' तब उसके दोषों को नहीं देखोगे। अभी दोषों को समझते हैं कि आगन्तुक हैं, किसी कारण से आ गये हैं, अर्थात् इसका स्वरूप तो निर्दोष है। विचार करो तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समझो कि जो सब परिस्थितियों में रहता है, वह स्वाभाविक ही होता है, आगन्तुक नहीं। अनात्म-पदार्थों की ओर ले जानेवाले भाव, इसके गुणों को ही ग्रहण करेंगे, दोषों को नहीं। स्वभाव से इसमें गुण दीखते हैं, अनादि अज्ञान के कारण, रागादि भी बार-बार इसके गुणों का ही प्रतिपादन करेंगे। शास्त्र ही इन सब चीज़ों के दोषों का उद्भावन करता है। कई बार लोग शास्त्र ग्रन्थों के लिये पूछते हैं कि ये संसार की बुराई ही क्यों करते हैं। शास्त्र संसार की बुराई करने के उद्देश्य से नहीं करते, उन्हें तो इसकी वास्तविकता ही दिखानी है। लौकिक लोग स्वयं अनादि अज्ञान के वशीभूत होकर उसके गुणों को देखने के अभ्यासी हो गए हैं, दोषों की तरफ हमारी दृष्टि स्वत: नहीं जाती, इसलिये शास्त्र को दृष्टि उधर ले जानी पड़ती है। ऐसा नहीं है कि शास्त्र इसके गुणों को न जानते हों! शास्त्रकार ही कहते हैं कि तुम शरीर-मन को परमात्मा के मार्ग में लगाओ। यह तभी होगा जब तुम्हारे पास शरीर-मन हों! इसलिये जिसने सब कर्म छोड़ दिये, उसे भी भगवान् गीता में कह देते हैं कि शरीर की रक्षावाले कर्मों को करते हुए तुम दोष के भागी नहीं बनोगे। शरीर की रक्षा के लिए जो कुछ भी कर्म करना पड़ता है, उससे कोई दोष की प्राप्ति नहीं; क्योंकि शरीर होगा तभी उसमें बैठकर परमात्मा की प्राप्ति का प्रयास करोगे। शरीर-मन की उपयोगिता शास्त्रकार जानते और बतलाते हैं, लेकिन दोष की तरफ दृष्टि हमारी नहीं जाती, इसलिये दोष की तरफ दृष्टि ले जाना भी जरूरी है; क्योंकि अन्यथा दोष पता नहीं चलते, अत: शास्त्रकार ही दोष का प्रतिपादन करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संसार के सब पदार्थ, शरीर, भोग, अवस्थाएँ आदि दोषपूर्ण ही हैं। इसलिए सौ में से निन्यानबे लोग दुःखी ही मिलेंगे, जिसे सर्वथा कोई दुःख न हो ऐसा व्यक्ति मिलनेवाला नहीं। सास से बात करो तो वह दुःखी है बहू से और उसी की बहू से बात करो तो वह भी दुःखी है उसी सास से! पुत्र पिता से तो पिता पुत्र से दुःखी है। एक की सुनो तो लगता है ठीक है, दूसरे की सुनो तो लगता है यही ठीक है! तुम बड़ी उम्र के हो और बाप से दोस्ती है तो लगता है कि बेटा गलत है। जवान हो और बेटे से दोस्ती है तो लगता है कि बाप गलत है। वेदांती समझ लेता है कि जिसके अंतःकरण की दृष्टि से देखो उसी को सही समझोगे। शास्त्र कहता है कि प्रत्येक के हृदय में रहनेवाला आत्मा तो मैं हूँ, इसलिए मुझे उसके मन के अन्दर जाकर देखना पड़ेगा। अन्दर जाकर सुनें तो समझते हैं कि अगर यही उपाधि मेरे पास होती तो मैं भी दुःखी ही होता। इन संस्कारोंवाला होता तो मैं भी ऐसा ही दुःखी होता जैसा यह दुःखी है। जब तक वह शरीर-मन की उपाधि हमारी है नहीं तब तक हम कह देते हैं 'यह आदमी गलत सोच-समझ रहा है', परन्तु वह आदमी थोड़े ही बोलता है कि गलत काम कर रहा है! वेदांत की दृष्टिवाला हर उपाधि में अपने आप को देख कर बात समझता है, इसलिए समझ में आता है कि कोई दुःखी कैसे है, क्यों है। दुःखी होने में कारण तो एक ही है, उपाधियों का ही भेद है। दूसरे का दुःख सुनने से पहला लाभ यह होता है कि तुम करुणा कर सकते हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुःखी को देखो तो उसके प्रति करुणा करो। सुखी देखो तो प्रसन्नता अनुभव करो, पाप करनेवाले को देखो तो उपेक्षा करो। इस प्रकार एक लाभ होगा बार-बार सुनने से कि अभ्यास होगा। दूसरा लाभ होगा कि अभी हम दुःख होने पर एक उपाधि को हटाकर दूसरी उपाधि लाना चाहते हैं। विचार के बाद जिस उपाधि में हमने दुःख देख लिया उससे हम अब एक नहीं बनेंगे; क्योंकि पता चल गया कि दुःख की चीज़ है। अपने आपको दुःखी की उपाधि में समझकर उसके दुःख को देखकर उपाधि-दुःख सम्बन्ध का निश्चित पता लगता है। मनु महाराज कहते हैं कि ध्यानपूर्वक ईक्षण करो, देखो। ये गतियाँ लोगों की क्यों होती हैं? निश्चित जानो कि कोई-न-कोई कर्म ही दुःख का कारण है, जिसे इसने स्वयं किया है, अब उसी को भोग रहा है। अन्य कुछ उपाधि उस गति में कारण नहीं है। पहले ईक्षण करो कि उपाधि में दुःख होता है, फिर इस बात का निश्चय समझो कि कर्म के दोष से ही हुआ है।

इससे शिक्षा क्या मिलती है? उस प्रकार के कर्म मैं न करूँ। जो इसके दुःख का कारण है, यदि वही काम मैं कर लूँगा तो वह मेरे भी दुःख का कारण होगा। इसलिए वह कर्म मैं नहीं करूँगा। किसी व्यक्ति ने टैक्स की चोरी की, पकड़ा गया, जेल हो गई। उसका सारा पैसा जप्त कर लिया गया। जो मनु महाराज के अनुसार चलेगा, वह समझता है 'देखो, धन होने पर ऐसी दशा होती है। उसके साथ ऐसा क्यों हुआ? उसने चोरी की, टैक्स की इसलिए। इससे सीखना है कि मैं हर हालत में चोरी न करूँ।' साधारण आदमियों का सोचने का तरीका है : 'अरे, उसने अंकेक्षक,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऑडिटर अच्छा नहीं किया, उस ऑडिटर के पास कभी नहीं जाना। उसने अच्छा वकील नहीं किया, अच्छा वकील करना चाहिए था। अथवा, उसने समय से घूस देकर अपना काम नहीं बनाया, जिद्द में आ गया, इसलिए ऐसा हो गया।' अर्थात् यह पता लगाते हैं कि किस तरह हम चोरी करके बच जाएँ! वेदांत की दृष्टि वाला जानता है कि कर्म आज नहीं तो कल नहीं तो परसों, फल देनेवाले हैं ही। तुमने सरकार के नियम के विरुद्ध काम किया, सरकार तुम्हें दण्ड नहीं दे सकी, तुम मर गये, तो सरकारी दण्ड से बच जाते हो। लेकिन परमेश्वर के नियम का उल्लंघन कर यहाँ से बचकर हम जाते हैं, तो नरक में पड़ना पड़ेगा। यमगृह, यातनालय के अन्दर तरह-तरह की यातनाओं का भोग करना पड़ेगा। पहले तो यहाँ बचना मुश्किल और बच गए तो आगे नरक जायेंगे।

नरक में बाद में जायेंगे, उससे पहले हमारे पापों से हमारे मन में ग्लानि बनी रहती है 'मैंने गलती की है।' वह सुख-शान्ति से रहने नहीं देगी। मान लो हमें गुस्सा आ गया, पुलिसवाले को पीट दिया। उसके बाद हम कहीं से भी निकलेंगे, कोई पुलिस के कपड़ों में दीखेगा तो पहले डर होगा 'कहीं वही तो नहीं है'; दूर से देखते ही मन में भय आता है। यदि हमने कोई गलती नहीं की है, कभी किसी पुलिस वाले से झगड़ा नहीं किया है, तो चाहे जितने पुलिसवाले हों, हमें डर नहीं लगता, कोई भय ही नहीं है। जो नियम हम तोड़ेंगे वह अवश्य हमें यातना देगा। हिंसा करेंगे, झूठ बोलेंगे, चोरी करेंगे आदि सभी का अन्तिम फल नरक-यातना तथा यहाँ ग्लानि, अशान्ति अवश्य होंगे। आज आश्रम में नया जूता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देखर मन डोल गया, लेकर चले गए। जहाँ भी वह जूता पहनकर जायेंगे तो चारों तरफ देखेंगे कि कोई संन्यास आश्रम का भक्त तो नहीं है। यह लगातार यातना बनी रहती है।

प्रिय लोगों से वियोग होता ही है। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि कोई प्रिय तो हो पर उससे वियोग न हो। मातायें कहती हैं 'मैं वियोग नहीं सहना चाहती, अपने पति से पहले चली जाऊँ।' पति से पहले जाओ तो क्या अकेली नहीं जाओगी? उसे साथ तो ले जाओगी नहीं। वह पहले चला गया तो भी अकेली हो। हर हालत में, रहना तो अकेले ही पड़ेगा। मन में भ्रम बना रहता है कि पहले गया तो अकेला नहीं गया, पर जाना अकेला ही पड़ेगा, रहना भी अकेले पड़ेगा। पुत्र मरेगा तो वियोग है पिता से और पिता मरेगा तो पिता का वियोग है पुत्र से। इसलिये उपनिषद् तो स्पष्ट कह देती है कि जिस चीज़ को तुम प्रिय समझते हो, वह तुम्हें रुलायेगी ही। खुद जायेगी तो तुम्हें रुलायेगी और तुम जाओगे तो भी रुलायेगी ही। धन कमाकर तुमने एकत्र किया और चला गया तो रुलायेगा, यदि धन कमाकर सुरक्षित रखा और तुम चले गये तो भी रोओगे कि सारा छोड़कर जाना पड़ा।

इसी प्रकार अप्रिय पदार्थों से संयोग न होवे यह कभी हो नहीं सकता। बुढ़ापे से अपना अभिभव होगा, पराजय होगी। अस्सी की उम्र पार करते तुमसे व्यापार आदि नहीं सँभलेंगे, बच्चों को ही बैठना पड़ेगा। जिन बच्चों को तुमने चम्मच से दूध पिला कर बड़ा किया, वही कहनेवाले हैं 'पिता जी, आप नहीं समझते, आप चुप बैठे रहा कीजिए। भजन किया करो।' बीमारियों की भी पीडा सहन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करनी पड़ेगी, कोई उपाय नहीं है। जिस शरीर को हम अपना स्वरूप समझते हैं, इसे छोड़कर भी जाना ही पड़ेगा। यदि आत्मज्ञान नहीं हुआ है, तो जहाँ से शुरु किया उसी गर्भ में फिर आना पड़ेगा। इस प्रकार जब संसार में जीवन के दोषों पर दृष्टि रखते हैं, तब तो वैराग्य होगा अन्यथा वैराग्य न होकर हमारा राग बढ़ता रहता है और बार-बार दुःख देता रहता है।

इसमें परम दोष यह है कि सारा संसार असत्-जड-दुःखरूप है। चीज़ों के अलग-अलग दुःख हैं, यह सोचने की प्रथम अवस्था है, अंततोगत्वा संसारमात्र में यह दोष है ही कि वह असत् है, दीखता है, पर है नहीं। शरीर दीखते हैं, घूमते-फिरते-चेतन, पर चेतन हैं नहीं। दीखते हैं कि इनमें सुख हो, पर है नहीं। भगवान् ने गीता में स्पष्ट कह दिया कि यह संसार कैसा बनाया है : जैसे लोग अपना मकान बनाते हैं, उसका नाम रखते हैं 'मार्बल पैलेस', इसमें सर्वत्र संगमरमर ही लगा हुआ है। वैसे भगवान् कहते हैं 'मैंने इसमें खाली दुःख की ईंटें ही लगाई हैं, दुःखालयमशाश्वतम्।' यह दुःख का घर है; क्योंकि इसका स्वरूप ही है असत्-जड-दुःख। इसमें सच्चिदानन्द की प्रतीति इसलिए होती है कि यह सच्चिदानन्द में अध्यस्त है। सच्चिदानन्दरूपता परमात्मा में है, परन्तु इस दुःखालय में दीख जाती है।

जब यह संसारदोष का अवधारण कर लेता है, तब न हिलनेवाला वैराग्य होता है। एक-एक चीज़ में दोष देखते समय 'दूसरी में कहीं गुण भी होंगे' यह सम्भावना बनी रहने से वैराग्य अदृढ होता है, काँपता रहता है। कभी कोई नई चीज़ आई तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगता है 'यह सुख का कारण होगी।' विचार करने पर भले ही पता चले कि दुःख का ही कारण है, इसमें सुख है ही नहीं। किन्तु जब संसारमात्र में दोष-निर्धारण द्वारा वैराग्य दृढ हो जाता है, तब मनुष्य सब प्रकार से परमात्म-मार्ग में प्रवृत्ति करता है। अन्यथा कुछ प्रवृत्ति करेगा संसार की तरफ, कुछ करेगा परमात्मा की तरफ। दुःख की तरफ प्रवृत्ति कभी होती नहीं। अतः जब संसार के स्वरूप को असत्-जड-दुःखरूप जान लेता है, उधर प्रवृत्ति हो ही नहीं सकती। उसे सहन तो कर लेता है; क्योंकि उपाय नहीं है, जो कर्म हम पहले कर चुके हैं, उसको भोगने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है।

एक बड़ा धर्मात्मा राजा था। उसके एक ही पुत्र उत्पन्न हुआ। उसने उसे बड़ी अच्छी तरह से पढ़ाया-लिखाया, तैयार किया। लड़का योग्य था, अच्छे स्वभाव और चरित्रवाला। राजा के महल के सामने ही मन्दिर था, जिसमें राजा ने एक पुजारी को रखा हुआ था। पुत्र के उत्पन्न होने के समय में ही उसे रखा था। नियमपूर्वक बीस वर्षों से पूजा कर रहा था, उसने राजा से कभी किसी चीज़ की माँग नहीं की। जो मिलता था, उसी में सन्तोष रखता था। राजकुमार भी २० वर्ष का हो गया, राजा ने उसके लिए योग्य लड़की को ढूँढा, राजकुमारी मिल गई। विवाह से पहले राजा ने अपने महल से हटकर उसके लिए एक नया महल बनवा दिया। नये महल में सारे उपकरण लगवा दिए। विवाह होकर आया तो वह सीधा अपने नए महल में गया। नए महल में जाकर पहले थोड़ी देर अपनी पत्नी से बात-चीत होती रही फिर राजकुमार को नींद आ गई। लड़की थोड़ी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देर उसको जगाने की कोशिश करती रही, राजकुमार थका हुआ था, तो सो गया। राजुकमारी को नींद नहीं आ रही थी। जगह भी नई और मन में भी नए-नए विकल्प उठ रहे थे। राजकुमार जगता नहीं था, वह घूम-घूम कर देखे कि महल में कहाँ-कहाँ क्या-क्या है। चारों तरफ घूमने लगी। पहले बाहर की चीज़ों को देखा, फिर दूसरे कमरे को देखा कि 'यहाँ देखूँ, शायद तब तक इसकी नींद खुल जाए'। ऐसा करते-करते सुबह के चार बज गये।

वह वापस कमरे में आई तो देखती है एक सुन्दर रत्न-जड़ित तलवार वहाँ म्यान में रखी है। हीरा-पन्ने उसमें जड़े हुए थे। उस तलवार को देखने के लिए उसने मूठ को ऐसे छुया तो म्यान से बाहर तलवार निकल गई। तलवार म्यान से बाहर आई तो उसकी चमक देख कर थोड़ा घबरा गई, उसके हाथ काँप गये। तलवार छूट गई राजकुमार की गर्दन पर गिरी और उसकी गर्दन कट गई, खून बह निकला! राजकुमारी घबरा गयी, भगवान् से प्रार्थना करने लगी 'हे भगवान् कुछ कर दे तो यह ठीक हो जाये। मेरे हाथों यह बड़ा दुष्कर्म हो गया। अब मैं कहूँगी कैसे कि यह मुझसे हुआ। माँ-बाप की बदनामी होगी, सास-ससुर मुझे दुःख का एकमात्र कारण समझेंगे।'

झूठ बोलने की परम्परा ब्रह्माजी के समय से चली हुई है। बाहर घूमते हुए उसने मन्दिर देख लिया था। पुजारी पूजा के लिये मन्दिर जा रहा था। इसने बाहर आकर बड़ी जोर से रोना शुरु कर दिया। उसका रोना सुनकर कर्मचारी दौड़े आए, पूछा 'क्या हुआ, क्या हुआ?' उसने कहा 'कोई आया, उसे मारकर चला गया।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुरन्त राजा को खबर हुई, राजा आ गए, बाकी सब भी आ गए, दु:खी तो होना ही था। लड़की बोली 'मैं घबरा गयी थी, मैं उसको पहचान तो सकती हूँ। मैंने उसे इस मन्दिर में जाते हुए देखा।' पण्डित जी को पकड़ कर ले आये। 'पूछा तुमने इसको मारा?' पण्डित जी कहने लगे 'मैंने इसको नहीं मारा।' सब कहने लगे 'यह झूठ बोलता है राजन्, और कौन जायेगा मन्दिर में।' पण्डित ने कहा 'राजन्, आप मुझे इतने समय से जानते हो, क्या मैं राजुकमार को मार सकता हूँ! वह भी आपका इकलौता लड़का।' राजा का मन डावाँडोल हुआ, 'इतने सालों से बड़ा सन्तुष्ट रहनेवाला ब्राह्मण है, इसके अन्दर कोई दोष देखा नहीं है, शायद इसने नहीं ही मारा हो, कोई और राजकुमार को मारकर भाग गया हो। मन्दिर में न गया हो, मन्दिर के पास से निकला हो।' पहले तो कर्मचारियों को भेजा जंगल में आस-पास देखने के लिये कि कोई मिल जाए, जिसने मारा हो, पर कोई मिला नहीं। अन्त में सबने कहा 'राजन्, आदमी की नीयत का कुछ पता नहीं लगता, कब बदल जाए, आप इस सोच को छोड़कर इसे दण्ड दे दो।'

राजा ने विचार किया कि सब लोग कह रहे हैं, तो इनका विरोध भी नहीं करना चाहिए, पर राजकुमार तो मर गया, वह वापस नहीं आना है, लेकिन यह ब्राह्मण है, इसे देश से निकाल दिया जाये, जान से न मारा जाये। राजा ने कहा 'इसका एक हाथ काट दो, जिससे इसने मारा और देश से निकाल दो।' उसका हाथ काट दिया और देश से निकाल दिया। ब्राह्मण बड़ा दु:खी हो गया कि 'मैंने अपराध किया नहीं और मुझे दण्ड मिला। मुझे जो फल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिला यह कर्मदोष का ही फल है। मैंने जीवन-भर भगवान् की भक्ति की, और कुछ किया नहीं। दूसरे देश जाकर भी नौकरी वगैरह तो करनी नहीं है, मन्दिर में पूजा आदि कर सकता नहीं हूँ, बस अब तपस्या में ही लगूँगा।' ऐसा निश्चय कर लिया। चित्रगुप्त के उद्देश्य से उसने तपस्या की क्योंकि हमारे सारे कर्म का लेखा-जोखा चित्रगुप्त ही रखता है। कुछ सालों की तपस्या के फलस्वरूप चित्रगुप्त प्रसन्न हो गए, दर्शन दिया और पूछा 'तुमको क्या चाहिए? मेरी तपस्या क्यों की? लोग विष्णु की तपस्या करते हैं, शंकर की तपस्या करते हैं, देवी की तपस्या करते हैं, सूर्य की तपस्या भी कर लेते हैं। कोई यमराज की भी तपस्या कर लेता है, जिसे मरने का डर होता है। मुझे तो कोई पूछता नहीं! फिर तुमने मेरे लिए कैसे तपस्या की?' ब्राह्मण कहने लगा 'महाराज, मेरी समस्या को आप ही दूर कर सकते हैं। मेरे मन में एक जिज्ञासा है। चित्रगुप्त तो प्रसन्न था ही, बहुत मुश्किल से एक भक्त मिला। चित्रगुप्त ने कहा 'मैं तुम्हारी कौन-सी समस्या दूर करूँ? याद रखना, मेरे पास और कोई कागज नहीं है, मैं तो केवल कर्मों का लेखा-जोखा रखता हूँ और कुछ तू माँगे तो मेरे पास है नहीं।' ब्राह्मण ने कहा 'बस वही चाहिए। मेरा यह हाथ कटा भगवान् की भक्ति से, नित्य पूजा करके। पूजा में अपना सारा समय लगाता था, फिर मेरा हाथ क्यों कटा? मेरे मन में यह शंका है।'

चित्रगुप्त हँसने लगे, कहा 'यह सब कर्म का ही फल है। पूर्व जन्म में तुम एक संन्यासी थे, संन्यासी हमेशा सत्य बोलता है, तू भी सत्य पर दृढ रहता था। एक बार जंगल में पेड़ के नीचे तू

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अकेला बैठा हुआ था, उधर से एक गाय दौड़ती हुई जंगल में घुस गई। उसके पीछे एक कसाई आ रहा था हाथ में खड्ग लिए हुए। तुम्हारे सामने पहुँचते ही उसने नमस्कार किया और पूछा 'स्वामी जी, गाय किधर को गई?' तुमने हाथ से ऐसे इशारा किया। सत्यवादी था, झूठ मत बोलता पर चुप रह जाता। लेकिन तूने सत्य का पालन करते हुये भी अहिंसा को छोड़कर हिंसा का काम कर दिया। महर्षि पतंजलि ने कहा है कि अहिंसा पहली साधना है। इसलिये जो सत्य हिंसा को सम्भव करता हो, वह धर्म नहीं होता। तूने सही दिशा दिखाई और कसाई ने जाकर उसे मार दिया। मारकर कसाई उसका चमड़ा छील रहा था, उसी समय उधर से बहुत भूखा शेर निकला। शेर उस कसाई को खा गया और उस गाय को भी खा गया, बस हड्डियाँ ही पड़ी रह गईं थी। बरसात का मौसम था, भयंकर वृष्टि हुई, उस बरसात के अन्दर, वह हड्डियाँ बह गईं, जाकर गंगाजी में मिल गईं जिसके फलस्वरूप उन दोनों की सद्गति हुई। वह गाय यह राजकुमारी बनकर पैदा हुई। गाय की हड्डियाँ गंगाजी में गई, उसके फलस्वरूप उसे राजकुमारी का जन्म मिला। कसाई की हड्डियाँ भी गंगाजी में गई थीं, वह राजुकमार बनकर पैदा हुआ। तू संन्यासी था, अपने शुभ संस्कारों के कारण यहाँ भी ब्राह्मण बनकर पैदा हुआ और बचपन से ही पूजा-पाठ और परमात्मा की भक्ति में लगा रहा। इसीलिए सन्तोष इत्यादि सारे गुण तुम्हारे अन्दर हैं। परन्तु तूने जिस हाथ से रास्ता दिखाया था वह हाथ काटा गया। इस प्रकार से तुम्हारा कर्मदोष ही उत्पन्न होकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम्हारा हाथ कटा।' चित्रगुप्त ने समझाया तो उसे बात समझ में आ गई।

कब कौन-सा कर्म कैसा फल देता है, इसका पता नहीं लगता। वैराग्य की दृढता के लिए बार-बार यह सोचना चाहिए कि कोई भी कार्य, कारण के बिना नहीं हो सकता। कोई भी भोग, चाहे सुख का होवे या दु:ख का, कर्म के बिना नहीं हो सकता। वैराग्य के बाद सारी प्रवृत्ति केवल सत् परमात्मा के लिए होती है। संसार के पदार्थों के लिए प्रवृत्ति करना व्यर्थ है; क्योंकि वे कर्म से जैसे उत्पन्न होते हैं, वैसे होंगे ही। वैराग्यपूर्वक प्रवृत्ति तत्त्वम् पदार्थों के शोधन के लिये होती है। भोग कभी विषयाभिमुखता समाप्त नहीं करता, थोड़े समय के लिये भले ही प्रवृत्ति शिथिल करे। भोग से इच्छा 'मिटती' नहीं, तत्काल के लिये प्रतिबद्ध होती है। मनु महाराज ने समझाया है कि जैसे घी डालकर आग नहीं बुझती वैसे विषय-उपभोग से कामना नहीं मिटती। भोग के बाद कुछ देर 'वैराग्य हुआ' यह प्रतीति भले ही हो पर वह वैराग्य है ही नहीं, वह भाव टिकता भी नहीं। वैराग्य होने पर तो तत्त्वम् अर्थों के विवेक में प्रवृत्ति अवश्य होगी। जितना संसार-दोष का विचार करेंगे उतनी ही इससे विजुगुप्सा होगी, उतना ही भय, स्पर्धा आदि सब भाव हटेंगे, तभी शान्ति प्राप्त करके, राग-द्वेष की निवृत्ति करके आत्मोपासना कर सकेंगे।

❖

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन : दसवाँ

(८.४.९८)

श्रुति कहती है कि सब कुछ ब्रह्मरूप है, उसी से उत्पन्न है, उसके रहते ही रहता है, अन्त में उसी में लीन हो जाता है, इसीलिए जैसे मिट्टी से बर्तन पैदा होते हैं, अन्त में नष्ट होने पर मिट्टी में लीन हो जाते हैं, जब तक रहते हैं, तब तक मिट्टी के अधीन ही रहते हैं, इसलिए मिट्टी से बर्तनों की कोई अन्य सत्ता नहीं है। सब बर्तन मिट्टी ही हैं, यह बात जब समझ में आ जाती है, तब मनुष्य के राग-द्वेष हट जाते हैं। राग और द्वेष के कारण ही अशान्ति है। अत: इनके हट जाने पर ही शान्ति है। हट क्यों जाते हैं, यह आगे बतलाते हैं।

पुरुष चेतन, जीवात्मा संकल्पमय ही है, क्रतुमय है। जो इसका निश्चय होता है वही इसका वास्तविक स्वरूप है। जैसा निश्चय होगा वैसा ही जीव अपने जीवन में सारे व्यवहार करेगा और तदनुसार ही मन में इच्छा होगी। जीव का स्वरूप है कि कुछ जानता है, कुछ चाहता है, कुछ करता है; ज्ञान, इच्छा, क्रिया–ये ही चेतन का स्वरूप है। जब तक चेतन रहेगा, तब तक इसमें ज्ञान रहेगा, इच्छा रहेगी, क्रिया रहेगी। ज्ञान, इच्छा, क्रिया जीव की उपाधि में प्रतिफलित होती हैं। अंत:करण के अन्दर ज्ञान प्रतिफलित होता है, अर्थात् जीव की ज्ञानशक्ति प्रकट होती है। मन के अन्दर इसकी इच्छाशक्ति प्रकट होती है, प्राण के अन्दर क्रियाशक्ति प्रकट होती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। सूक्ष्म शरीर में प्राणमय, मनोमय विज्ञानमय संगृहीत हैं। पाँच कोषों में एक तो यह बाहर का अन्नमय कोष है, जो सब कुछ करता दीखता है, परन्तु इससे करवानेवाले अन्दर के तीन तत्त्व प्राणमय, विज्ञानमय और मनोमय हैं। प्राणमय क्रिया करवाता है, मनोमय इच्छा करवाता है, विज्ञानमय निश्चय करवाता है। जीव ये तीनों भी क्यों करता है? आनन्दमय कोष, आनन्द की प्राप्ति के लिए करता है। इष्ट है आनन्द की प्राप्ति जो इन तीन साधनों से होगी। श्रुति कहती है कि इच्छा और क्रिया निश्चय के अनुसार ही होती है। यह बात असंदिग्ध है, संदेह से रहित है। अगले ही मन्त्र में जीव का स्वरूप बतलायेंगे कि यह मनोमय है, प्राण ही इसका शरीर है, भारूप, विज्ञानरूप है।

इन तीनों में प्रधान क्या है? श्रुति ने कह दिया कि पुरुष के रूप में प्रधान संकल्प ही है। आचार्य शंकर कहते हैं कि जैसा इसका निश्चय होता है, उसके अनुसार ही यह सारे फलों को चाहता है। हमारी इच्छा किस चीज़ की होगी? जिसके बारे में हमारा निश्चय होगा कि यह ठीक है। ऊपर से चाहे हम कह दें 'अमुक चीज़ ठीक है' किन्तु निश्चय कुछ और भी हो सकता है। जैसे, किसी से भी पूछो तो यही कहेगा कि सच बोलना ठीक है। प्रश्न होता है कि सच बोलना ठीक है, यह कहनेवाला झूठ क्यों बोलता है? उत्तर है कि उसके मन का निश्चय है कि झूठ बोलने से ही कार्य सिद्ध होते हैं। सामाजिकता आदि के लिये भले ही सत्य की महिमा गाये, भीतरी निश्चय तो उसका है कि झूठ की पूरी उपयोगिता है। अगर यह निश्चय हो जाए कि हमने झूठ बोला तो हमारा काम असिद्ध हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जायेगा, काम बिगड़ेगा तो व्यक्ति कभी झूठ बोलेगा ही नहीं। बच्चों को झूठ बोलने की आदत कैसे पड़ती है? बच्चे के हाथ से गिलास टूट गया, बच्चा आकर बताता है 'मैंने गिलास तोड़ दिया' तो उसे डाँट पड़ती है। कभी वह देखता है कि बड़े भाई ने गिलास तोड़ा, उसके सामने ही तोड़ा, माँ ने पूछा 'किसने तोड़ा है?' तो कहता है 'मैंने नहीं तोड़ा' तो उसे डाँट नहीं पड़ती! वहीं से बच्चे का निश्चय होता है कि झूठ बोलने से डाँट नहीं पड़ा करती, सच बोलने से पड़ा करती है। मनुष्य के निश्चय बनते-बिगड़ते रहते हैं। यदि कहे 'मुझसे यह गलती हो गई' और उसे डाँटे बगैर समझाओ, सावधान करो और जब भी वह झूठ बोले तब पता लगने पर अच्छी तरह से दण्ड दो, तब तो वह सीखेगा कि किस प्रकार का आचरण *ठीक* होता है।

निश्चय ही मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण करता है। इच्छा उसी की होगी जिसे व्यक्ति ठीक समझेगा। आन्तरिक भावना-बिना प्रदर्शन केलिये ठीक कहेगा, तो वह उसकी इच्छा या प्रेरणा की दिशा नहीं निर्धारित करेगा वरन् अन्दर से जैसा उसका निश्चय है वैसी उसकी इच्छा होगी, उसी के अनुसार प्रयत्न करेगा। यद्यपि मनोमय, प्राणशरीर, भारूप ये तीन हैं, तथापि इनमें प्रधान तो भारूपता, निश्चय ही है। केवल यहीं नहीं, आगे के लिए भी श्रुति कहती है कि जैसा यहाँ निश्चय होता है, यहाँ से मरकर भी वैसे ही जाता है। 'यहाँ' अर्थात् इस जीवन में अपने और संसार के बारे में निश्चय के अनुरूप मरणोत्तर गति निर्धारित होती है। इसलिए गीता में भगवान् ने कहा कि जिस-जिस भाव को, निश्चय को अपने मन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में रखते हुए जीव जाता है, शरीर को छोड़ता है, उस निश्चय के अनुसार ही आगे उसकी गति होती है।

निश्चय के प्रति दो कारण होते हैं : अनुभव के अनुसार जो बात है, उसका मनुष्य को निश्चय होता है। जैसे अभी बतलाया, बच्चे को अनुभव हुआ कि झूठ बोलने से काम बन जाता है, सच बोलने से डाँट पड़ती है; इस अनुभव के अनुसार उसका निश्चय हुआ कि झूठ बोलना ठीक है। अर्थात् अनुभव के अनुसार निश्चय हुआ। ऐसे ही युक्ति के अनुसार भी निश्चय होता है। कोई चीज़ हमें युक्ति से ठीक लगती है, तो भी निश्चय हो जाता है कि ऐसी ही है। युक्ति का मतलब होता है तर्क; जैसे, मान लो हम कहें कि हमें जहाँ-जहाँ धुँआ दीखा वहाँ-वहाँ आग दीखी। रसोईघर के अन्दर धुआँ दीखा और आग देखी, हलवाई की भट्टी में भी आग और धुआँ साथ-साथ दीखे, तो इससे भी सम्भावना होती है कि धुएँ-आग का नियमित सम्बन्ध है, परन्तु इस निश्चय के अन्दर पूरा जोर नहीं आता। लगता है कि इतनी जगहों में ऐसा होने पर भी सब जगह आग और धुआँ साथ-साथ होते हैं, यह निश्चय कैसे करें! इसलिए दो प्रकार के निश्चय हैं : एक के अन्दर आगे संशय उत्पन्न होने की सम्भावना है; अभी सन्देह नहीं है, परन्तु आगे उत्पन्न होने की सम्भावना है। प्रतीति है कि 'हो सकता है कोई दूसरी बात सामने आवे।' दूसरा निश्चय होता है, जिसके बाद कोई भी संशय उत्पन्न होगा तो उसे नष्ट करने की सामर्थ्य रहती है। इसमें युक्ति कारण पड़ती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धुएँ का कारण आग है, यह युक्ति है। गीली लकड़ी क्योंकि एकाएक पूरी तरह से जलती नहीं, इसलिए धुआँ निकलता है। जब यह युक्ति मिली की धुआँ आग के बिना पैदा ही नहीं हो सकता, तब आगे कहीं धुआँ दीखे और आग नहीं भी दीखे तो हमारा निश्चय नहीं बदलेगा; क्योंकि पता है कि इस समय यहाँ आग नहीं है, तो भी पहले आग रही होगी। जैसे कोयले से चलनेवाली रेल के इंजन से धुआँ निकलता है। धुआँ छोड़कर इंजन तो आगे चला जाता है, अत: जहाँ धुआँ देखें वहाँ आग नहीं रहती लेकिन यह देखकर भी हमारा निश्चय नहीं बदलता, क्योंकि हम जानते हैं कि इस समय नहीं तो पहले जरूर आग के द्वारा धुएँ को बनाकर छोड़ा गया है। इस प्रकार एक निश्चय केवल साहचर्य-दर्शन से होता है, साथ-साथ दो चीज़ों को देखने से होता है, वह भी अनुमान करा देता है, काम तो उससे भी चलता है लेकिन उसमें आगे संशय की सम्भावना रहती है, परन्तु जहाँ युक्ति मिल जाती है, जैसे 'यह चीज़ (धुआँ) पैदा ही उससे (आग से) होती है' वहाँ पक्का निश्चय हो जाता है। इस प्रकार से युक्ति अर्थात् खाली अनुमान नहीं समझ लेना, जिसके द्वारा ऐसा निश्चय हो जाए कि संशय कभी हो नहीं सके, उस तर्क का नाम युक्ति है।

वैज्ञानिक लोग कई बार निश्चय कर लेते हैं फिर बाद में नये अनुभव देखकर उन्हें बदल देते हैं। क्या उनके पहले निश्चय में कोई कमी थी या भ्रम था? ऐसा नहीं, अमुक परिस्थिति के अनुसार वह निश्चय किया गया। उस स्थिति में वैसा होता है, यह निश्चय नहीं बदलता, लेकिन अनेक स्थितियों में वैसा नहीं भी होता, इसलिए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नया नियम बनाया जाता है, जो अन्य स्थितियों को भी इकट्ठा कर ले। यहाँ पहलेवाले निश्चय का बदलाव नहीं है, केवल उसमें निवेशमात्र हो जाता है कि अमुक-अमुक स्थिति में यह नियम ठीक रहेगा, परन्तु स्थिति बदलने पर वह नियम ठीक नहीं रहेगा। पहलेवाले अनुभवों को जो मिलानेवाला नियम था, वह उतने अनुभवों के लिए पर्याप्त होने पर भी अन्य अनुभवों के लिए पर्याप्त नहीं है। इसलिए पहलेवाला *निश्चय* बदलता नहीं है। निश्चय करने में एक बहुत बड़ा कारण युक्ति है।

यह निश्चय बतला रहे थे कि सब कुछ परमात्मस्वरूप है। कैसे सब कुछ परमात्मस्वरूप है, कैसे सर्वत्र सच्चिदानन्दस्वरूप का अनुवेध है? इसे युक्ति और अनुभव के आधार पर बताना है। जब तुमने बात समझ ली, उसके बाद बार-बार उसके संस्कार को दृढ बनाना ज़रूरी है। बुद्धि तो युक्ति से निश्चय कर लेती है, परन्तु युक्ति से जो निश्चय हुआ, वह हमारा स्वभाव बन जाए, हमारी इच्छा का विषय बन जाए, इसके लिए संस्कारों के प्रवाह की ज़रूरत है। जब दीर्घकाल तक कोई संस्कार चलता है, तब दृढ हो जाता है। विचार करो, शुरू-शुरू में, जब तुमको पहाड़े याद कराए जाते हैं, तब यदि तुमसे पूछ लेते हैं 'तीस छक्का कितना होता है?' तो तुम्हें जोर देकर याद करना पड़ता है 'तीस एकम तीस, तीस दूनी साठ', परन्तु जब तुम दीर्घकाल तक अभ्यास करते चले गये तो 'तीस छक्का' पूछते ही एक सौ अस्सी जवाब तुरन्त आएगा। क्या कारण है? ऐसा नहीं कि पहले ज्ञान में निश्चय नहीं था और अब निश्चय हो गया। पहली बार जब समझा दिया था कि तीस छह-गुणा करने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से एक सौ अस्सी कैसे होता है, तभी निश्चय तो हो गया। परन्तु वह अभी तुम्हारे स्वभाव में नहीं बदला था। ठीक इसी प्रकार से 'सब कुछ ब्रह्मस्वरूप है' इसे युक्ति से सोच लेने पर बुद्धि का निश्चय तो हो जाता है, लेकिन फिर कोई नाम-रूप-कर्म सामने आते हैं, तो तुरन्त भान नहीं होता कि यह तो ब्रह्मस्वरूप है। अभ्यास करने पर होता है।

आचार्य वाचस्पति मिश्र भामती में लिखते हैं कि यह रत्नपरीक्षा की तरह है; रत्न की परीक्षा सीखते समय व्यक्ति बड़े ही ध्यान से हीरे को देखता है, इसके बीच में कोई लकीर तो नहीं है, चमक कैसी है, आभा कैसी है आदि सब अलग-अलग हिसाब करता है। परन्तु जब जौहरी हो जाता है, तब सामने चीज़ जैसे ही आती है, वह उसकी परीक्षा कर लेता है। हमारे एक बड़े वृद्ध अनुभवी रत्नपरीक्षक जौहरी थे। आस्ट्रेलिया से एक जौहरी ने आकर एक लाल रत्न दिखाया और पूछा कि कैसा है। उन्होंने उसे देखा और एक मिनट बाद ही कह दिया 'यह नग नकली है।' उसने कहा 'ध्यान से देखिए, यह असली है।' वे बोले 'नहीं, यह नकली है। इसलिए इसकी कोई खास कीमत नहीं है।' तब उस आस्ट्रेलियन ने कहा 'मैं भी जौहरी ही हूँ, मैंने यह नग संसार के अन्दर बड़े-बड़े जौहरियों को दिखाया, सबने इसको असली बताया है। आप पहले व्यक्ति हैं, जिसने इसे नकली बताया। बात आपने ठीक बतायी, परन्तु यह बताइए कि आपने पहचाना कैसे, आपको पता कैसे चला कि नकली है?' उन्होंने कहा 'जीवनभर जौहरी का काम किया है! ऐसे नग को कितना बड़ा होना चाहिये और कैसा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होना चाहिए इसकी सीमाएँ हैं। उन सीमाओं का यह अतिक्रमण कर रहा है, इसलिए यह असली हो ही नहीं सकता। अब तुम बताओ, तुमने इसे बनाया कैसे? तुम्हें मिला कहाँ?' तब उसने बताया 'मैंने असली लाल नग लिए और बहुत अधिक ताप के अन्दर उन्हें गला कर एक कर दिया। इसमें नग हैं असली। परन्तु उन्हें गलाकर बड़ा एक टुकड़ा बनाया गया है। जिस-जिस ने भी इसको देखा, इसका परीक्षण किया, इसे असली ही बताया। परीक्षण में तो असली ही दीखेगा क्योंकि असली को गलाकर इकट्ठा किया था। मैं आज मान गया भारतवर्ष के जौहरियों को! बाकी संसार में किसी ने इसे नकली न कहकर असली ही बताया।' ऐसा परीक्षण दो-चार दिनों में आनेवाला नहीं है, जब दीर्घकाल तक अभ्यास करोगे तब आयेगा।

ठीक इसी प्रकार, बड़े-से-बड़ा दुष्ट या गंदी चीज़ देखकर भी उसकी ब्रह्मरूपता को तब जान जाओगे जब उसके बारे में तुम्हारा संस्कार दृढ होगा। तभी तुम्हारी नजर नाम-रूप-कर्म से ऊपर जायेगी। माया ने भले ही उसे कितना भी कुरूप दिखा दिया, परन्तु है, वह सद्रूप ही, माया ने कितना भी विकृत किया लेकिन तत्त्व निर्विकार है। सूत का कपड़ा बनाओ चाहे रेजे का, और चाहे ढाका की मलमल बनाओ; ढाका की मलमल बारीक और श्रेष्ठ होती है, उसके सब धागे एक-जैसे होंगे जबकि साधारण कपड़े में कोई धागा ज्यादा मोटा तो कोई ज्यादा पतला होता है। इतना सब फर्क होने पर भी है तो सब रुई ही! रुई के अतिरिक्त कुछ नहीं है। साधारण आदमी को यदि दोनों कपड़े दिखाओ तो दोनों की एकता को वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं देख सकेगा, उसको पता नहीं लगेगा। लेकिन पहचान करनेवाला पता लगा लेगा। एक बार कोई खद्दर लेकर आया, हमने देखकर कहा 'ठीक खद्दर नहीं है।' कहने लगा 'नहीं महाराज, यह तो खादी-भण्डार से लाए हैं, वहाँ चीज़ अच्छी मिलती है।' मान ली उसकी बात। रंगने दे दिया। जब उसे रंगा तो बीच-बीच में धारियाँ थीं सफेद। हमने उस व्यक्ति को बताया कि हम निश्चितरूप से कह सकते हैं कि यह शुद्ध खादी नहीं है। सूत पर चढ़ने वाला रंग नाईलॉन के धागे पर चढ़ता ही नहीं। वह कपड़ा ले गया, खादी बेचनेवाले को दिखलाया। उन लोगों ने कहा 'आज-कल जो खादी बनती है उसके बीच में कुछ पॉलिएस्टर फाइबर लगा देते हैं ताकि ज्यादा मजबूत हो जाए और थोड़ा चमके भी। शुद्ध खादी में खुद ही वैसे धागे मिला देते हैं।'

किसी भी चीज़ की परीक्षा जब दीर्घकाल तक करते हो तब चाहे-जिस अवस्था के अन्दर तुमको मिल जाये, तुम उसके मूलरूप को परख लोगे। चाहे जितनी विकृत अवस्था के अन्दर तुमको कोई जीव मिल जाए, कोई पदार्थ मिल जाये, तुम्हारा अभ्यास इतना दृढ होगा कि सच्चिदानन्द को तुम पकड़ लो। इस निश्चय के लिए युक्ति आवश्यक है। निश्चय के लिए साथ में श्रद्धा भी ज़रूरी होती है। जिस चीज़ के विषय में हमारी श्रद्धा नहीं होगी, उसके बारे में भी निश्चय नहीं होता। इसलिए अद्वैतसिद्धि प्रारम्भ करते हुए मधुसूदन सरस्वती लिखते हैं 'मैं श्रद्धारूप सम्पत्ति लेकर धनवाला हूँ।' श्रद्धा ही यहाँ धन है। संसारी लोग रुपये-पैसे को ही धन मानते हैं। वे समझते हैं कि रुपए-पैसे से ही सब काम हो सकते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। आचार्य मधुसूदन सरस्वती मानते हैं कि श्रद्धा से सब कुछ हो सकता है। जब तक किसी चीज़ में श्रद्धा नहीं होगी, तब तक निश्चय पूरा नहीं होता। दोनों की ज़रूरत पड़ती है।

अप्पर के माता-पिता जब वे छोटे थे, तभी मर गए, उनकी बहन ने ही बड़ा किया, तिलकावती उसका नाम था। बहन के पति भी बचपन में ही युद्ध में मर गए थे। लड़का बड़ा हुआ तो जमीन जायदाद का काम सँभालने लग गया। अच्छे ढंग से काम करता था। यद्यपि घर की परम्परा भगवान् शंकर की भक्ति की थी तथापि तरह-तरह की शंका उसके मन में आती थी। जाकर लोगों से पूछता था। शंकाओं का ठीक जवाब नहीं मिलता था। उस समय वहाँ जैन धर्म का ज़ोर था। उनके पास गया, उन्होंने इन सब चीज़ों को अंधविश्वास कहकर और दूसरे ढंग से समझाना शुरू किया। वे लोग मानते हैं कि किसी भी चीज़ के बारे में निश्चित ज्ञान नहीं हो सकता! इसीलिए उनको 'अनेकांतवादी' कहते हैं, स्याद्वादी भी कहा जाता है। किसी भी प्रश्न के जवाब में उनका कहना होता है 'शायद यह भी हो, शायद वह भी हो। शायद है, शायद नहीं है; किसी दृष्टि से है, किसी दृष्टि से नहीं है, किसी दृष्टि से है भी और नहीं भी!' अनेकान्तवाद के अन्दर सब चीज़ों का जवाब ऐसा हो जाता है। क्योंकि सारी सम्भावनाएँ, चाहे जितनी विरुद्ध हों, इस मत में स्वीकार हो जाती हैं, इसलिये सभी सवालों का जवाब संगृहीत हो जाता है। अनेकान्तवाद मानो तो सभी चीज़ें युक्तिसंगत हो जाती हैं।

अप्पर को जैनों की बातें जँच गईं। परमात्मा का मार्ग छोड़कर उसी मार्ग में वह लग गया। अध्ययन करते-करते बड़ा विद्वान् हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गया। उन लोगों ने उसे अपने यहाँ आचार्य भी बना दिया, उसका नाम धर्मसेन रख दिया। सब तरफ उसकी प्रतिष्ठा थी, मान था। उसकी बहन पढ़ी-लिखी थी नहीं, भगवान् शिव से प्रार्थना करती रहती थी कि 'भाई अपने बाप-दादा की मर्यादा को छोड़कर उधर चला गया, आप ही उसे फिर से अपने रास्ते पर लाइए, मैं तो कुछ कर नहीं सकती। मैं उससे बात क्या करूँ, झट-से मेरी बात काट देता है। बड़े-बड़े विद्वानों की बात काट देता है। मैं तो समझा नहीं सकती, आप ही किसी तरह समझाइए।' ऐसे करीब चौबीस साल बीत गए। अब उसकी भी उम्र हो गई।

भगवान् शंकर की विचित्र लीला है! उसके पेट में उदरशूल हो गया। चाहे जितनी दवाओं का प्रयोग किया गया, परन्तु रोग बढ़ता ही गया। दवाइयों से ठीक नहीं हुआ तो मन्त्र-तन्त्र भी सब करके देख लिये। रोग ठीक नहीं हुआ, बढ़ता ही चला गया, उसकी व्यथा और उसका दर्द बढ़ता ही चला गया। कुछ दिन तक तो लोग सेवा करना चाहते ही हैं, लेकिन बीमारी लम्बी हो जाए तो कोई कहाँ तक सेवा करेगा! उसकी भी उपेक्षा होने लग गई। एक बार किसी को जहाँ प्रतिष्ठा मिल जाए और फिर वहीं उसकी ओर ध्यान न दिया जाए तो उसे बड़ा कष्ट होता है। प्रतिष्ठा मिली न हो और कोई ध्यान न दे तो दुःख नहीं लगता। परन्तु एक बार प्रतिष्ठा मिल जाए, फिर उपेक्षा हो तो मनुष्य को सहन नहीं होता। रोग व उपेक्षा के कारण वह दुःखी था। दूसरी बात, आचार्य शंकर कहते हैं कि बिना निश्चित ज्ञान के मनुष्य को शान्ति मिलती नहीं। अनेकान्तवाद निश्चय नहीं होने देता, वहाँ तो तरीका है कि किसी समय कोई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विरुद्ध बात आ जाए तो उसको भी हाँ कह देना। इसलिए निश्चय दृढ हो नहीं पाता। निश्चय दृढ हो तभी मनुष्य का मन उससे ओत-प्रोत होकर जीवन को सर्वभावेन बदल सकता है। सत्संग सुनते हैं, तब तो ठीक लगता है कि शरीर कोई अच्छी चीज़ नहीं है, पर कामकाज में लगते हैं, तो यह भूल जाते हैं, फिर वही सब ठीक और अच्छा लगने लग जाता है। क्यों? इसलिए कि इस ज्ञान का दृढ निश्चय नहीं है। दृढ निश्चय नहीं होगा तो मनुष्य का सारा जीवन नहीं बदल सकता।

अप्पर ने भी उसी अनेकान्त का सहारा लिया था। डाँवाडोल मन:स्थिति जीव को एक दिशा में प्रगति नहीं करने देती। अप्पर को इसीलिये निश्चय हुआ नहीं था कि उनका सिद्धान्त ही अनिश्चय का है। मन में आने लगा 'मैंने जो निश्चय किए थे, क्या पता वे ठीक हैं या गलत हैं! कहीं ऐसा तो नहीं कि जो बातें बहन कहती थी वे ठीक हों? वह कहती थी कि कोई भी कष्ट ऐसा नहीं है, जिसे भगवान् शंकर दूर न कर देवे। तो एक बार चलकर उसके पास जाया जाए।' वहाँ से उसने पहले खबर भेजी तो बहन ने कहा 'मैं घर छोड़कर आने वाली नहीं, तुमको ज़रूरत हो, तो तुम आ जाओ।' उन्होंने प्रतिष्ठा आदि के जो चिह्न थे, वे भी सब छोड़ दिये और फिर अपने गाँव आ गए। बहन से मिले तो कहने लगे 'बहन, मैं उदरशूल से बड़ा व्यथित हूँ, बड़े कष्ट में हूँ, पता नहीं कितने दिन का जीवन है, इसलिए मैं आ गया तुम्हारे पास।' तिलकावती ने बड़े प्रेम से रखा। कहने लगी 'अगर तू भगवान् शंकर को मान लेवे और उन्होंने क्षमा कर दिया तो तेरा यह उदरशूल जा सकता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। कष्ट बहुत बड़ा शिक्षक होता है। तीव्र कष्ट के अन्दर मनुष्य के आग्रह हिल जाते हैं। कहने लगा 'मैं इस रोग से बच जाऊँ, मेरी भगवान् में पूरी श्रद्धा है।' सचमुच उसे लगने लगा कि परमेश्वर से अपने आप को दूर किया था, इसलिए ऐसी स्थिति हुई। बहन उसको लेकर मन्दिर गई। भगवान् शंकर का चरणामृत लेते ही उसे कुछ शान्ति मिली। एक-दो दिन में उसका उदरशूल ठीक हो गया। भगवान् शंकर की ही लीला थी; क्योंकि तिलकावती प्रार्थना करती थी कि किसी तरह से भाई घर आ जाये। विद्वान् था ही, ईश्वरसाधक युक्तियाँ भी जानता ही था पर अनेकान्त की दृष्टि से सोचने पर उन युक्तियों में दोष दीखते थे। अब स्वानुभव का बल मिल गया तो ईश्वरपक्ष की युक्तियाँ स्वीकार हो गयीं एवं जैनमत के दोष दीखने लगे!

जैन सम्प्रदाय के लोगों को बड़ा बुरा लगा, आकर उसे समझाने लगे कि 'यह तो हवा-पानी बदलने से रोग ठीक हो गया, यह पत्थर की मूर्ति क्या करेगी! इससे कुछ ठीक थोड़े ही होना है। शिवलिंग क्या करेगा?' अप्पर ने कहा 'जो युक्तियाँ तुम मुझे सुना रहे हो वे सब मैं सुनाता रहा हूँ, लेकिन मेरा जो यह उदरशूल की निवृत्ति का अनुभव है, उसे तुम्हारी कोई युक्ति काट नहीं सकती। यह मेरा स्वयं का अनुभव है। हवा-पानी बदलने से होता तो मैं ठेठ पटना से चलकर यहाँ तक आया, रास्ते में कितनी जगह हवा-पानी बदला, रोग ठीक हो जाना चाहिए था। यहाँ आकर जब मैंने भगवान् का चरणामृत लिया तभी मैं ठीक हुआ। इसलिए तुम्हारी युक्ति अब नहीं जँचती।' उन्हें अपमानबोध हुआ, वे राजा के पास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गए, राजा भी जैन धर्म का अवलम्बी था। उसे समझाया कि अप्पर दण्डनीय है। राजा ने पूछा 'क्या दण्ड दिया जाए?' उन्होंने कहा 'चूने की भट्टी में इसे रख दिया जाए।' उनका मतलब था कि समाप्त हो जायेगा। उसको बैठा दिया, चूने की भट्टी जला दी। हफ्ते के बाद खोला तो वैसे-का-वैसा बैठा हुआ था! परमेश्वर के ध्यान में बैठा था। उसे पूछा तो कहने लगा 'मैं ठण्डी जगह में बैठा रहा हूँ। आनन्द में मग्न था, मुझे तो गर्मी का पता ही नहीं चला।' श्रद्धा पूर्ण थी, वह निश्चय में बदलती चली गई। उसके बाद यावत् जीवन तरह-तरह के उसके ऊपर कष्ट भी आते रहे, परन्तु श्रद्धा फिर विचलित नहीं हुई। युक्ति से भी निश्चय होता है, परन्तु जब वह निश्चय युक्ति के साथ श्रद्धावाला हो, तब उसमें पूर्णता आती है।

मधुसूदन सरस्वती ने अद्वैतसिद्धि के अन्दर युक्तियों का पहाड़ लगा दिया। एक पंक्ति भी ऐसी नहीं मिलेगी जिसमें कुछ-न-कुछ युक्ति न दी हो। परन्तु प्रारम्भ में ही कह देते हैं कि इन युक्तियों से मैं अपने को धनी नहीं मानता। श्रद्धा के धन से ही मैं अपने को धनवाला मानता हूँ। युक्ति और श्रद्धा दोनों ही मिलती हैं, तब निश्चय ऐसा हो जाता है जो किसी भी परिस्थिति में बदलता नहीं। ऐसा करना ही यहाँ उपासना बताया। जब निश्चय के संस्कार पुष्ट हों, तब सदा तदनुरूप आचार-विचार रहेगा। विरोधी युक्ति आदि में कोई बल ही प्रतीत नहीं होगा कि निश्चय डिगा सके। यही क्रतु है, जिसे प्राप्त करने का यहाँ विधान है। शान्त होकर इसे उपलब्ध करने की प्रक्रिया उपासना है।

❖

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन : ग्यारहवाँ

(९.४.९८)

सामवेद की कौथुमीशाखा की छान्दोग्य उपनिषद् के तीसरे अध्याय के चतुर्दश खण्ड के दूसरे मन्त्र की व्याख्या चल रही है। मूल मन्त्र है—

मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसंकल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽ-वाक्यनादरः।।२।।

पिछले वाक्य में उपासना करने को कहा। उपासना किस प्रकार से की जाए, यह अब बतलाते हैं। परमात्मा कैसा है? मनोमय है, प्राण ही उसका शरीर है, उसका अपना स्वरूप ज्ञान है, उसका जो भी संकल्प होता है, वह सत्य होता है। आकाश की तरह वह निर्मल है। सब कर्म करनेवाला है, सब इच्छाओंवाला है। सारे गन्धों के स्वरूपवाला है, सारे रसों के स्वरूपवाला है। सब जगह व्यापक है, वाणी का अविषय है। परमात्मा के ये कई प्रकार बतलाए, अब इन पर विचार करेंगे।

सबसे पहले प्रश्न यह उठता है कि मनोमय और प्राणशरीर वाला तो जीव प्रसिद्ध है। परमेश्वर का मन भी प्रसिद्ध नहीं, परमेश्वर के प्राण भी प्रसिद्ध नहीं। इसलिये कुछ लोग मानते हैं कि यहाँ जीव की ही उपासना है! परन्तु भगवान् वेदव्यास ब्रह्मसूत्रों में स्पष्ट करते हैं कि उपनिषदों में सर्वत्र ब्रह्म को ही उपास्य बतलाया है, जीव को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं। प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको जीव तो जानता ही है। इसलिये इसके लिए क्रतु करने की जरूरत नहीं है। निश्चय का क्या मतलब? जो बात वेद ने और गुरु ने बतलाई, वह हुआ श्रुति का अर्थ। उसके बारे में संशय न रहे और उसका श्रुति-अनुसारी ज्ञान बना रहे, यह निश्चय है।

जिस बात का हमें पहले ही पता है, उसे कोई सुनाता है, तो सुनकर हमें 'ज्ञान' नहीं होता, स्मृति होती है। ज्ञान उसका होता है, जो पहले जाना न गया हो। पहले जान लिया गया है, उसी की वृत्ति बनती है, तो उसे स्मृति कहते हैं। लोक में क्योंकि काल आदि से वस्तु बदलती रहती है, अत: उसका कालादि के व्यवधान से भी 'ज्ञान' ही हो सकता है। जैसे सात बजे वाले घण्टा-घर के ज्ञान के बाद साढे सात बजे उसी को देखें तो भी ज्ञान ही होगा। शब्द की प्रामाणिकता वहीं होती है, शब्द वहीं 'ज्ञान' कराता है, जहाँ बात हमें पहले पता नहीं होवे। यदि पहले पता है तो जो शब्द से भी हो उसे 'ज्ञान' क्यों कहेंगे! मेरा नाम देवदत्त है, मुझे पता है, मैं अमुक का बेटा हूँ; कोई कहता है 'तुम देवदत्त, यज्ञदत्त के बेटे हो' तो हमें नवीन बात का ज्ञान तो हो नहीं रहा, जो बात हम जान रहे थे, उसी को कहा जा रहा है। जहाँ कोई ऐसी चीज़ बताई जाए, जिसका हमें पहले पता न होवे, वहाँ शब्दादि से प्रमा ज्ञान होता है। हम जो करते हैं, उसका फल भोगते हैं अर्थात् हम कर्ता-भोक्ता हैं, यह हमें मालूम ही है। अगर कोई हमें यही कह भी देवे तो हमें 'ज्ञान' नहीं होगा। वेदों को पढ़ो तो उसमें कई जगह जीव को ब्रह्म से अलग भी बताया जाता है! अनेक लोग कहते हैं कि भेद सिद्ध हो गया। वेद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह भी कह रहा है कि जीव ब्रह्म से अलग है। किन्तु जीव ब्रह्म से अलग है, इस बात में श्रुति का तात्पर्य नहीं हो सकता, वह तो हम अपने को पहले ही जानते हैं! श्रुति जब कहती है 'तुम अकर्ता अभोक्ता हो' तब क्योंकि इसका हमें पहले ज्ञान नहीं इसलिये हमें प्रमा होगी।

प्राचीन काल में शास्त्र पढ़ने-समझने वाले होते थे तो 'शास्त्रार्थ' हुआ करता था। शास्त्रार्थ का अर्थ होता है, शास्त्र में आई हुई बात का निर्णय करना। 'अर्थ' से यहाँ मतलब है, तात्पर्य। शास्त्र जिस बात को कहता है, उसके तात्पर्य का जहाँ निर्णय किया जाता है, उसको शास्त्रार्थ कहते हैं। बाँचते ही जिस अर्थ का पता लगता है, वह शास्त्रार्थ नहीं भी होता, आगे-पीछे की संगति लगाकर जो तात्पर्य का निर्णय किया जाता है, उसको शास्त्रार्थ कहते हैं। वर्तमानकाल में इस मर्यादा को न जानने के कारण लोग एक श्लोक बोल कर कह देंगे 'देखो, गीता में लिखा है, अथवा तुलसीदास जी ने रामायण में लिखा है।' सिद्धान्तरूप में लिखा है या पूर्वपक्ष के रूप में लिखा है, इस तक का अनुसन्धान किये बिना उद्धरण बोल देते हैं! ब्रह्मसूत्र पर आचार्य शंकर के भाष्य को देखो तो द्वैत को सिद्ध करने के लम्बे-चौड़े वाक्य लिखे हैं, पूरे अनुच्छेद मिलेंगे जिनमें द्वैत को सिद्ध किया है। वह सब करने के बाद कहा 'तन्न' 'ऐसा नहीं है, यह जो ऊपर बात कही है, ऐसा नहीं है।' शंकराचार्य जी ने द्वैत के समर्थन में लिखा तो जरूर है लेकिन पूर्वपक्षरूप से लिखा है। जिन्हें शास्त्र पर आस्था नहीं वे ही आधे-अधूरे में अटकते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक मुसलमान कुरान नहीं पढ़ता था। उसकी घरवाली ने मौलवी साहब से शिकायत की। जैसे अपने यहाँ वेद-पाठ का नियम है, वैसे उनके यहाँ कुरान पढ़ने का विधान है वजू करके। मौलवी ने पूछा 'अरे तू कुरान क्यों नहीं पढ़ता?' उसने जवाब दिया 'हदीस में लिखा हुआ है कि कुरान नहीं पढ़ो।' मौलवी साहब ने कहा 'कहाँ लिखा हुआ है?' उसने दिखा दिया, उसमें लिखा था 'कुरान मत पढ़'; मौलवी साहब ने कहा 'आगे भी तो पढ़, लिखा है कि कुरान मत पढ़ जबकि नापाक हो।' जैसे हम लोग नहाते हैं, वैसे ही वे हाथ-पैर धोते हैं, जिसे वजू कहते हैं। जब तक तुम पाक नहीं हो तब तक कुरान मत पढ़ो। कहने लगा 'सारा हम ही बाँचेंगे क्या! आगे का आप बाँच लो। हमने तो इतना बाँच लिया कि कुरान मत पढ़। अपना हो गया काम।' ऐसा ही बहुत-से लोग शास्त्रों का स्वार्थ में उपयोग करते हैं।

किसी गाँव में एक पण्डित ने आकर चुनौती दी 'मैं द्वैतवाद सिद्ध करता हूँ, यही वेदादि सच्छास्त्रों का तात्पर्य है। गाँव का कोई विद्वान् प्रतिपक्षी हो तो मुझसे शास्त्रार्थ करे।' गाँववाले सत्संगी थे, अद्वैत पर श्रद्धा रखते थे, लेकिन ऐसे पण्डित नहीं थे कि शास्त्रार्थ कर पावें। एक वृद्ध समझदार था, बोला 'घबराओ मत, हम इसके साथ शास्त्रार्थ करेंगे।' मंच बन गया। लोग इकट्ठे हुए। जैसे ही शास्त्रार्थ शुरू होने का समय हुआ तो एक नाई आया, बोला 'पण्डित जी, आपने तो मुझे समय दिया हजामत बनाने का, मैं आपके घर पहुँचा और आप यहाँ आ गए!' वृद्ध ने कहा 'अरे भगवन्, तुमको तो पता है, हमें शास्त्रार्थ में आना है।' वह हाथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जोड़कर कहने लगा 'पण्डित जी, मुझे 'भगवन्' कैसे कह रहे हो? मैं तो अदना-सा आदमी हूँ, मुझे काहे को भगवान् कहते हैं।' वह चला गया। फिर बात शुरू होने वाली थी, तब तक एक लकड़ी बेचनेवाला आ गया, बोला 'आपने तो कहा था कि घर पर लकड़ी डाल देना हम पैसे दे देंगे। मैंने लकड़ी तो आपके घर में डाल दी और आप यहाँ आकर बैठ गए! मेरे पैसे कौन देगा?' वृद्ध ने कहा 'अरे भगवन्, तुम्हें तो पता है कि हम यहाँ शास्त्रार्थ में आ गए।' उसने भी कहा 'मुझे क्यों 'भगवान्' कहते हो? मैं तो साधारण लकड़हारा हूँ।' तब तक एक धोबी आकर बोला 'जी आपने जल्दबाजी में तो कपड़े धुलवाए थे, मैं कपड़े लेकर पहुँचा तो आप मिले ही नहीं!' उसे भी वृद्ध ने हाथ जोड़कर कहा 'अरे भगवान्! मैं तो यहाँ बैठा हूँ शास्त्रार्थ में।' उसने कहा 'पण्डित जी, इस धोबी को आप भगवान् क्यों कह रहे हो!' उस वृद्ध ने आगन्तुक पण्डित जी की ओर देखा और कहा 'आप कहते हैं बारह साल काशी में विद्वान् बनकर, पढ़कर आये हैं और सीख कर क्या आए कि 'मैं भगवान् नहीं हूँ।' यह तो हमारे यहाँ के नाई, धोबी, लकड़हारे भी जानते हैं। इसके लिए आपको इतना पढ़ने की क्या जरूरत थी? अगर इसी का नाम ज्ञान है तो यह हमारे यहाँ सबको है। अगर इसके अतिरिक्त आपने कुछ पढ़ा है, तो शास्त्रार्थ होगा।'

जो अनधिगत नहीं होता, वह शास्त्र का तात्पर्य नहीं होता है। चिन्तन किस चीज़ का करना है? जिस नई बात को शास्त्र में कहा गया है, उसे अपने मन में बैठाने के लिए युक्तियों का विचार करना है। नई बात वेद कहेगा, उसे सुनकर मन में आएगा 'यह बात ठीक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है या नहीं"; जो संशय आयें उन्हें हटाने के लिए बार-बार युक्ति के अनुसन्धान की जरूरत पड़ती है। गलत पहाड़े या हिज्जे याद हो जायें तो सहीवालों को अध्यापक सौ-सौ बार लिखवाते हैं। पता तो पहली बार ही चल गया, इतनी बार लिखने से याद स्थिर हो जाती है। अभ्यास से क्रिया में नवीनता नहीं, दृढता आती है। इसी प्रकार से श्रुति ने जब तुमको बतलाया 'सब कुछ परमात्मस्वरूप है' तब तरह-तरह के संशय आते हैं। युक्ति-अनुसन्धान से उन्हें हटाने पर नया ज्ञान नहीं होता पर उसमें दृढता आ जाती है। फिर निश्चय का संस्कार हमेशा बना रहे इसके लिये अभ्यास की जरूरत है। स्थिर निश्चय के लिये संस्कार की दृढता की जरूरत होती है। 'मनोमयः प्राणशरीरः' आदि जीव की उपासना शास्त्र का तात्पर्य हो नहीं सकता क्योंकि तुम्हें इसके संस्कार की दृढता तो है ही कि 'मैं जीव हूँ'। क्रतु का, बार-बार निश्चय करने का उपयोग किस में है? कि उसका संस्कार दृढ बन जाये। जिस बात का संस्कार पहले ही दृढ बना हुआ है, उसके लिए अभ्यास की जरूरत ही नहीं है। अतः मानना पड़ेगा कि यहाँ उपासना है ब्रह्म की, न कि जीव की।

और भी एक बात है : किसी भी बात को कहनेवाले का तात्पर्य, अभिप्राय क्या है, इसका पता इससे चलता है कि उसने किस बात से कहना शुरू किया और अन्त में किस बात में समाप्त किया। जैसे वकील मुकदमा सामने रखता है तो पहले कहता है यह हमारा मुद्दा है। उसके बाद कानून की युक्तियाँ देता है, फिर अन्त में कहता है 'इसलिए मेरे मुवक्किल का मुकदमा पुख्ता है।' शुरू में उसने जो बात कही अन्त में भी वही कही। जिस बात को प्रारम्भ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में कहा जाए और अन्त में कहा जाए वह सन्दर्भ का तात्पर्य होता है। यहाँ शुरू किया 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' और जो शाण्डिल्य उपासना के मन्त्र का अन्तिम हिस्सा है, वहाँ पर भी आएगा 'एष म आत्माऽन्तर्हृदय एतद् ब्रह्मैतम् इतः प्रेत्य अभिसम्भवितास्मि' (३.१४.३) यह जो अंतःकरण में रहनेवाला है, यह ब्रह्म ही है। प्रारम्भ भी ब्रह्म से और समापन भी ब्रह्म से किया, बीच में 'मनोमय, प्राणशरीर' जो कहा गया है, वह भी ब्रह्म के बारे में ही है, उसी की उपासना में तात्पर्य है, जीव की उपासना का विषय नहीं। इसलिए भगवान् भाष्यकार आचार्य शंकर कहते हैं कि जो परब्रह्म है, मनोमय आदि विशेषताओं के द्वारा उसकी ही उपासना करनी है।

एक बात और भी है। प्रश्न हो सकता है कि मनोमय प्राणमय आदि को ब्रह्म की विशेषता कैसे कहा? उत्तर है कि सर्वत्र भ्रमस्थल में आरोप्य की ही विशेषताएँ पता चलती हैं, अधिष्ठान की नहीं। साँप का डरावनापन ही दीखता है, रस्सी की ऐंठन नहीं। अतः मनोमय आदि विशेषरूप जीव के हैं, अत एव इन्हें अधिष्ठान ब्रह्म पर अध्यस्त समझा जायेगा। ब्रह्मधर्मों को जीव में समझना वैसे ही सम्भव नहीं जैसे ऐंठन आदि को साँप में नहीं समझ सकते। समारोपित जीवरूप से सद्वस्तु ब्रह्म रूपवाली हो जाती है अर्थात् ब्रह्मकी मनोमयरूपता, प्राणशरीररूपता की उपासना सम्भव है, जबकि यहाँ बताये हुए सर्वकाम, सर्वरस, सर्वगन्ध आदि धर्मों का जीव में निश्चय कर सको, यह तीन काल में सम्भव नहीं। अतः यहाँ ब्रह्म की ही उपासना बतलाई जा रही है, ब्रह्म सर्वात्मा होने से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवरूप भी है। सर्वात्मकता ही जीवसम्बन्धी मनोमय-प्राणशरीरतादि के साथ जोड़कर बतायी है। यद्यपि यहाँ बताये मनोमय प्राणशरीर इत्यादि धर्म जीव में रहते हैं तथापि जीव में ब्रह्मरूपता की उपासना करनी है।

जीव के बारे में ब्रह्मरूपता की बात सुनते ही तो लगता है कि ऐसा है नहीं। जैसे कोई कहे 'तुम्हारे सिर पर सींग है'। तो सुनते हुये ही पता लग जाता है कि सींग तो है नहीं। ऐसा नहीं कि हम हाथ लगाकर देखें कि सींग है या नहीं! छोटे बच्चों को तो ऐसा बोध होता है। कई बार छोटे बच्चों को चिढ़ाने के लिये कह देते हैं कि 'तेरा कान कौआ ले गया' तो वह बेचारा अपने कान को हाथ लगा कर देखता है कि सचमुच में ले गया कि नहीं! लेकिन उम्र ज्यादा होने पर ऐसा सन्देह भी नहीं होता। कहते-सुनते हुये ही पता रहता है कि बात ठीक नहीं है। इसी प्रकार जब वेद कहता है 'तू ब्रह्मस्वरूप है' तब लगता है कि यह बात असम्भव है। इसीलिए निश्चय करने में श्रद्धा ही कारण होती है। एक बार सुनते ही यदि हम निश्चय कर लें कि कहनेवाला गलत कह रहा है, तब तो आगे उसकी बात युक्तिसंगत है या नहीं इसका हम विचार भी नहीं करेंगे। श्रुति जो बात कह रही है वह है सच्ची, इतनी जब श्रद्धा होगी तभी उस पर विचार से निश्चय भी हो सकेगा।

श्रद्धा और अन्धविश्वास में फर्क समझना : श्रद्धा के अन्दर जो बात कही गई है वह ठीक है, अनुभव के अनुसार है, तर्क के अनुसार है, यह सिद्ध होने के बाद निश्चय होता है। श्रद्धा में 'श्रद्' कहते हैं हृदय को। हृदय में जिसे धारण किया जाता है, वह श्रद्धा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। जिम्मेदार के द्वारा कही गई है, इसलिए उस पर सोचें, विचार करें, यह भाव श्रद्धा का है। अन्धविश्वास में युक्ति, अनुभव और विचार का अवसर नहीं होता। बल्कि प्रमाण-तर्क से विरुद्ध भी प्रतीत होती बात यथावत् स्वीकारना अन्धविश्वास है। श्रद्धा से हमने सुना, फिर उसे युक्ति और अनुभव के अनुसार ठीक पाया, तब उसके बारे में निश्चय होगा। श्रद्धा केवल इस बल से प्रेरित करती है कि कहनेवाला जिम्मेदार आदमी है, उसका कुछ-न-कुछ संगत अर्थ होगा, अतः मुझे उसका अर्थ लगाना पड़ेगा। जैसे लोक में, कोई लड़का बहुत 'तेज' होता है, छोटे-बड़े का कुछ ख्याल नहीं रखता है। लोग कहते हैं 'अरे, उसे नहीं छूना, वह तो आग है।' अन्धविश्वासी मान लेगा कि उसके अन्दर कोई कोयला वगैरह जलता रहता होगा!

एक जाट था, उसने सुना कि ब्राह्मण अग्निमुख होते हैं। जिस प्रसंग में कहा गया है वह श्राद्ध का है। श्राद्धादि के अन्दर जो ब्राह्मण को भोजन कराया जाता है, वह देवताओं को मिलता है; क्योंकि ब्राह्मण का मुख अग्नि है। श्राद्ध में भोजन कराते हैं तो ब्राह्मण का मुख ही अग्नि की जगह है। जाट समझा कि मुँह में आग ही होती होगी। एक दिन वह पण्डित जी के साथ कहीं घूमने जा रहा था, रास्ते में एक जगह लेट गए, सो गये। जाट को चिलम पीने की आदत थी। थोड़ी देर तो इधर-उधर भटकता रहा, चिलम के बिना नींद न आवे, पर चिलम पीए कैसे? उसके पास आग जलाने की कोई माचिस वगैरह नहीं थी। अकस्मात् उसे याद आया कि पण्डित जी के मुँह में अग्नि है ही! उसने छोटा काँटा लिया और पण्डित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जी के मुँह में डालने लगा। पण्डित जी उठे कि क्या कर रहा है, कहने लगा 'मैं थोड़ी-सी आग ले रहा हूँ, चिलम पीनी है।' यह हुआ अन्धविश्वास।

हमें उसका मुख रोज़ दीखता है, कभी कोई लपट तो निकलते नहीं देखी, अथवा बालक को हमने कई बार छुआ है, वह कपड़े भी पहनता है, उसका कपड़ा भी नहीं जलता, हमारा हाथ भी नहीं जला; ढंग का आदमी झूठ तो कहेगा नहीं। अतः जब वह कहता है 'लड़के को मत छेड़ो, आग है' तो इसका कोई अन्य तात्पर्य होगा। अग्नि जलाती है, इसी प्रकार बच्चे की बातें दूसरों को जला देती हैं अर्थात् जलने जैसा दुःख देती हैं। श्रद्धा से यह संगत तात्पर्य निर्धारित किया जायेगा। श्रद्धा में मानते हैं कि कहनेवाले ने कहा तो ठीक है, तात्पर्य हमें समझना पड़ेगा। अश्रद्धा हुई 'अरे, हमें तो वहाँ जलता दीखता नहीं, बेकार की बात बोल रहे हैं।' अतः विचार में ही प्रवृत्ति नहीं होगी। इसी प्रकार श्रुति पर श्रद्धा होगी तब तो श्रुति कहती है हमारी ब्रह्मरूपता, अतः हम विचारपूर्वक ऐसा निर्णय करेंगे। उसे समझने में लगेंगे तो हमारा चित्त उसमें एकाग्र होगा, जिससे शास्त्र का रहस्य प्रकट होगा। ध्यानपूर्वक विचार करते हैं तो जो बात कही गई है, उसका लक्ष्य समझ में आता है, लक्ष्य के अन्दर चित्त प्रतिष्ठित हो जाता है, बैठ जाता है। कैसे पता लगे कि हमारे मन में बात पक्की बैठ गई? उठते-बैठते, शान्ति में, व्यवहार करते उसके बारे में असन्दिग्ध निश्चय रहे तो समझो बात प्रतिष्ठित हो गयी। हमारा निश्चय पक्का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है तो हम चाहे जितना भी व्यवहार कर रहे हैं, निश्चय कभी बदलता नहीं, कभी प्रमादी नहीं होते, उधर से असावधान नहीं होते।

ऐसे समझ लो : तुम दुकान में काम कर रहे हो अथवा घर में भोजन बना रहे हो तो क्या तुम 'मैं देवदत्त हूँ या उषा हूँ, कहीं भूल ना जाऊँ' ऐसा दुहराते रहते हो? चाहे जितना मशगूल हो अपने काम में, कोई तुम्हें बुलाता है 'अरे उषा, इधर आना' तो क्या तुम्हें सोचना पड़ता है कि किसे बुला रहे हैं? 'यह मेरा ही नाम है' क्या ऐसा कुछ विचार करना पड़ता है? सब समय दोहराते नहीं पर निश्चय दृढ रहता है। यहाँ 'सावधानी' का मतलब यह नहीं है कि उधर ध्यान रखना है वरन् निश्चय स्वतः बना रहता है। सन्देह व विपरीत ज्ञान नहीं होते और यथाप्रसंग सही ज्ञान उपस्थित होता है, यह ही निश्चय की प्रतिष्ठा है। जिसे निश्चय हो गया वह चाहे जो करे, उसका निश्चय हटता नहीं। जब आत्मा के वास्तविक स्वरूप से असावधान नहीं होगा तब उसका स्वभाव होगा जितेन्द्रिय। हमें इन्द्रियाँ क्यों खींच कर ले जाती हैं? क्योंकि हमें ऐसा लगता है कि इन इन्द्रियों के खींचने पर हमें ध्यान देना है। इन्द्रियों से तादात्म्य होने के कारण इन्द्रियाँ खींच कर ले जा सकती हैं। जो जानता है कि 'इन्द्रियाँ मेरा स्वभाव नहीं' उसे इन्द्रियाँ कभी खींच नहीं सकतीं। आखिर यह बतलाओ, क्या किसी दूसरे की इन्द्रियाँ तुम्हें खींचती हैं?

कई बार लोग कहते हैं 'हम तो करना चाहते हैं पर मन नहीं मानता।' तुम अभी किससे करना चाहते हो? आत्मज्ञान हो, तब तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करना-न-करना चाहोगे नहीं। ज्ञान नहीं हुआ है तो मन को अपना स्वरूप समझ रहे हो। जब कहते हो 'मैं करना चाहता हूँ' तब भी मैं अर्थात् मन ही है। अतः यही कह रहे हो कि मन के द्वारा कभी चाहते हो, कभी नहीं चाहते। जिस मन में यह अध्यास है कि 'यह मैं हूँ', जिस इन्द्रिय में अध्यास है कि 'यह मैं हूँ', वे ही हमें खींच सकते हैं। निश्चय का पता चलता है जब कभी अपने स्वरूप से प्रमाद न हो और कभी भी इन्द्रियों के वश में न आओ। 'मैं मन के साथ एक हूँ, मन ही मैं हूँ, इन्द्रियों के साथ एक हूँ इसलिए इन्द्रियाँ मैं हूँ' यह विपरीतार्थक निश्चय जब तक पूरी तरह से निवृत्त नहीं हो जाता तब तक कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिए।

निश्चय का आवर्तन कब तक करें? जब तक इन्द्रियों के ऊपर सर्वथा इस प्रकार से नियन्त्रण हो जाए और सर्वथा अप्रमादी न हो जाओ। यह प्रमाद न करे कि 'ये सब हमारा क्या कर सकते हैं!' क्योंकि ये बड़े पुराने कार्यकर्ता हैं, और तुमने इन्हें पूरा अधिकार दे रखा है! दुनिया जानती है कि ये ही तुम्हारे लिए सारे काम करते हैं इसलिए वे कहीं भी तुम्हारे नाम से अपना काम करवा सकते हैं। जिसे लोग तुम्हारा प्रतिनिधि जानते हैं, तुमने अखबार में निकलवा भी दिया 'इस आदमी को हमारे निमित्त रुपया नहीं देना, इस आदमी से हमारा सम्बन्ध नहीं'; पर सभी अखबार बाँचते हों यह जरूरी तो नहीं है। दीर्घकाल तक वह तुम्हारा कार्यकर्ता नहीं रहा तब धीरे-धीरे सबको पता लगेगा। मन और इन्द्रियों के प्रति तब तक प्रमाद नहीं करना चाहिये जब तक उनसे 'मैं'-भाव सर्वथा हट न चुके। जब परमेश्वर का उपदेश होने से वेद का संगत एवं हितकारी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभिप्राय है एवं तदनुकूल जो युक्तियाँ गुरु बता रहे हैं वे निर्दोष हैं ऐसी श्रद्धा हो तभी विचारपूर्वक दृढ निश्चय होगा। जब इस प्रकार से निश्चय करते हैं तब जैसा यहाँ कहा वैसा परमात्मरूप प्रतीत होता है।

भगवान् के एक प्रसिद्ध भक्त हुए हैं, रविदास। कोई भी साधु हो, ब्राह्मण हो, उसकी हमेशा वे सेवा करते थे। एक ब्राह्मण उधर से निकला, उसका जूता फटा हुआ था। रविदास जी ने कहा 'आज मैं आपको नए जूते की जोड़ी दे देता हूँ, यह फटा हुआ जूता उतार दीजिए।' पंडित जी ने कहा 'मेरे पास इतना पैसा है नहीं कि मैं नया जूता लूँ।' रविदास जी ने कहा 'जी, मैं आपसे पैसा लेने के लिए नहीं कर रहा हूँ, मैं तो केवल सेवारूप में देना चाहता हूँ।' पण्डित जी ने विचार किया 'अरे, चमार का पैसा मैं उपयोग करूँ यह तो ठीक बात नहीं" अतः कहा 'नहीं भाई, मैं तुम्हारा जूता नहीं लूँगा।' किसी तरह से पण्डित जी नहीं माने तो उन्होंने कहा 'ठीक है, आप अपना जूता थोड़ी देर के लिए मुझे दे दीजिए मैं इस जूते की मरम्मत कर देता हूँ।' उन्होंने कहा 'ठीक है, मरम्मत कर दो, उसके लिए एक दमडी मुझसे ले लेना।' जूता खोलकर दिया, मरम्मत कर दी, तो पण्डित जी दमड़ी देने लगे। रविदास जी कहने लगे'जी, यह मुझे न देकर मेरे नाम से गंगा जी को भेंट कर देना, मेरी तरफ से दे देना गंगा जी को'। रविदास जानते थे कि एक बार ले लेंगे तो उनके हाथ से वापिस लेने में पण्डित संकोच करेगा। उन्होंने विचार किया कि 'मैं जूता देना चाहता हूँ तो जूता नहीं लेते, मैं मरम्मत करना चाहता हूँ तब मरम्मत भी बिना पैसे के नहीं करवाते। हैं बड़े

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नियम वाले, इसलिए इनको कुछ आगे की बात भी समझ में आवे।' उन्होंने पण्डित जी से कहा 'आप यह दमडी गंगा जी को दे दीजिएगा और कह दीजिएगा कि रविदास ने भेजी है। जब वे बाहर हाथ निकालें ते उनके हाथ में दे दीजिएगा, पानी में मत डालिएगा।' पण्डित जी ने सोचा 'यह कहता है, तो चलो चलकर कह देंगे, वहाँ हाथ तो कौन निकालता है!' वहाँ जाकर जब कहा 'यह दमडी रविदास ने भेजी है' तो झट से गंगाजी का हाथ निकल आया! पण्डित जी ने उसको दमडी दे दी। गंगा जी का दूसरा हाथ निकला उसमें एक सोने का कंगन था, गंगा जी ने कहा 'यह मेरी तरफ से उसको दे दीजिएगा, उसको पता चल जाएगा कि आपने दे दिया।'

सोने का कंगन पण्डित जी लेकर चले तो सोचने लगे कि वह चमार गंगाजी के हाथ का बढ़िया कंगन लेकर क्या करेगा! कंगन लेकर उनकी नीयत डोल गयी। कहाँ तो जूता लेने को तैयार नहीं थे, मरम्मत करवाने के लिए तैयार नहीं थे और अब जब कंगन आया तो सोचा उसे देकर क्या होगा! गंगा ने तो उसी के लिए भेजा था। राजा से पण्डित का परिचय था, गंगा जी का दिया हुआ कंगन, राजा के पास लेकर गए, राजा को दे दिया कि यह गंगाजी का प्रसाद है। राजा ने बड़े प्रेम से प्रसाद लिया। राजा ने पण्डित जी को अच्छी दक्षिणा दे दी कि मेरे लिए प्रसाद लेकर आया। पण्डित चले गए। कंगन एक था, रानी को कंगन बहुत पसंद आया। थोड़े दिनों बाद कहने लगी कि ऐसा एक और मँगवा दो, एक हाथ में कंगन ठीक नहीं। राजा ने पण्डितजी को बुलाया, कहा 'आप जो कंगन दे गए थे वैसा ही एक और कंगन लेना है, पैसे की कोई बात नहीं पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह कंगन मिलना चाहिए।' अब पण्डित जी ने राजा को सच्ची बात बताई कि 'वह तो गंगाजी ने दिया था। इसलिए कोई बाजार की चीज़ खरीदी हुई थी नहीं, अतः ऐसा कंगन कहाँ मिलेगा!' ऐसी चमकवाला कंगन तो और कहीं मिलेगा नहीं। राजा ने कहा 'चलकर हम भी गंगा जी से प्रार्थना कर लेते हैं।' राजा पण्डित जी के साथ गया और पण्डित जी ने गंगाजी के खूब स्तोत्र बाँचे, पर कुछ नहीं हुआ। अब राजा ने कहा ब्राह्मण से 'तू धोखा दे रहा है। गंगा ने दिया है तो गंगा से निकाल, नहीं तो तू चोरी करके लाया है या कहीं और से लाया है, सच्ची बात बता।'

जब राजा से भय आया तब ब्राह्मण ने कहा 'बात यह है कि एक गंगाभक्त है, उसी ने गंगाजी को एक दमड़ी चढ़ाने को दी थी और गंगा ने कहा था कंगन उस भक्त को देना, मैंने सोचा उसे देकर क्या करेंगे, इसलिए मैंने वह आपको दे दिया। रविदास दमड़ी देवे तभी फिर काम हो सकता है।' अभी भी पण्डित के मन में था कि दमड़ी के कारण कंगन मिला। राजा और ब्राह्मण दोनों रविदास के पास पहुँचे, उसने बड़े प्रेम से प्रणाम किया, पण्डित से पूछा 'सब आनन्द से हो गया? बहुत समय लगाया।' पण्डित बोला 'अरे भाई, बहुत समय क्या, मैं तो फँस गया!' उसने पूछा 'क्या बात हुई?' पण्डित जी कहने लगे 'तुम्हारी दी हुई दमड़ी मैंने दी तो हाथ निकला और दूसरे हाथ से उन्होंने एक कंगन दिया। कंगन मैंने राजा को दे दिया, तुम्हें नहीं दिया। अब राजा को दूसरा कंगन चाहिए। मैं कहता हूँ गंगाजी ने दिया तो इन्हें विश्वास नहीं होता है। आप एक दमड़ी और दे दो तो हमारा काम हो जाए।' रविदास ने कहा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'पण्डित जी, इतनी दूर अब गंगाजी जाकर क्या करोगे!' वहीं उनके पास लकड़ी की बनी हुई कठौती में पानी भरा हुआ था, उसी में उन्होंने गंगाजी का आह्वान कर दिया तो गंगाजी की लहरों में कई कंगन निकलने लगे! रविदास ने कहा, 'जितने कंगन चाहिए उतने ले लो, वहाँ जाने की क्या जरूरत है!' अब राजा भी समझ गया और वह ब्राह्मण भी समझ गया कि वस्तुतः हमें समझाने के लिए ही उन्होंने यह लीला की थी, दमड़ी देने से वह कंगन मिला हो यह बात नहीं है।

यह खाली एक रविदास की ही बात मत समझना। हम वेद आदि शास्त्र पढ़ते हैं तो उसमें आता है 'यह कर्म करोगे तो यह फल मिलेगा'। एक-दो नहीं, वेद के छियानबे हजार मन्त्र कुछ-न-कुछ करने को बतानेवाले हैं। केवल चार हजार मन्त्र परमात्मा के स्वरूप को बतानेवाले हैं, जहाँ कुछ करना नहीं है। जब यह कहा जाता है कि 'कर्मों से चीज़ें मिलती हैं' तो जैसे उसने सोचा कि दमड़ी देने से कंगन मिला वैसे ही हम समझते हैं कि कर्म करने से फल मिला। जितने भी पुण्यफल हैं वे अंततोगत्वा तुम्हें सुख ही देने वाले हैं। कर्मों से दुःख भी होगा, केवल सुख तो होना नहीं। जब ज्ञानकांड को पढ़ते हैं, तब पता चलता है कि वह दमड़ी कारण नहीं है, कारण तो उसके अन्दर रविदास का यह निश्चय है कि गंगाजी माता हैं, भगवती हैं। इसी प्रकार हमारा जो निश्चय है कि परमात्मा सब कुछ देनेवाला है, बस इस निश्चय के कारण ही कर्म फल देनेवाला होता है। इस निश्चयपूर्वक जो कार्य करेंगे वह सुख देनेवाला, सफल हो जाएगा और इस निश्चय के बिना करेंगे, श्रद्धा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के बिना करेंगे तो फल देगा नहीं। जैसे वहाँ पहले दमड़ी देने से कंगन मिला, फिर वैसा कंगन नहीं मिला, इसी प्रकार यहाँ जब हमारा स्वरूप बताया गया कि 'तुम सर्वकर्मा' आदि हो तब हम सोचने लगे कि हम जैसे हैं वैसे ही ऐसे भी होंगे। जैसे गंगाजी से जाकर कंगन माँगा वैसे ही हम चाहते हैं कि हम ही सारे कर्मों के फलों को देनेवाले हैं, हमारे निमित्त ही कर्म से फल होता है। रविदास की तरह परमात्मा पर श्रद्धा पूर्ण होती है तभी वास्तव में सर्वकर्मा आदि भाव स्फुट होते हैं। ईश्वर की वाणी और उसका अर्थ योग्य गुरु बतलाते हैं। जिससे यह निश्चय हो जाता है कि अब तक मन और प्राण अपना स्वरूप समझा, जिससे ये हमें दुःख देनेवाले हुए। जब परमात्मा को मनोमय, प्राणशरीर आदि समझेंगे तब ये ही मन-प्राण आदि हमारे दुःख का कारण नहीं रहेंगे। उपासना का ऐसा प्रभाव है।

❖

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन : बारहवाँ

(१०.४.९८)

प्रथम मन्त्र के अन्दर क्रतु करने का, निश्चय करने का विधान किया। ब्रह्म के विषय में ही निश्चय करना है, उपासना करनी है। किस प्रकार से करना है, यह बतलाते हुए कहा—

मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसंकल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽ-वाक्यनादरः।।२।।

वह मनोमय है। मन के स्वरूप को समझना जरूरी है। सामवेद की उपनिषद् में शिष्य गुरु से प्रश्न करता है 'केनेषितम् पतति प्रेषितं मनः' किसके द्वारा प्रेरित हो कर मन चलता है। कौन है वह जिसके द्वारा भेजे हुए की तरह विषयों की तरफ, विचारों की तरफ मन प्रवृत्त होता है। मन के कार्य में स्वतन्त्रता प्रतीत नहीं होती। जिस बात को हम स्वप्न में भी नहीं सोचते वह बात मन में अकस्मात् आ जाती है और जिस बात को बार-बार सोचना चाहते हैं, बार-बार याद करने की चेष्टा करते हैं, वह याद आती नहीं। थक कर दूसरे काम में लग जाते हैं, कई घंटे बीत जाते हैं, वह चीज़ भी सामने नहीं है, अकस्मात् याद आ जाती है। कोई मिलने आया, हम जानते हैं उसका क्या नाम है, बहुत ज़ोर लगाते हैं सोचने का पर नाम याद नहीं आता। उससे बात-चीत हो गई, वह चला गया, थोड़ी देर और कोशिश करते हैं कि याद आवे, फिर थक कर दूसरे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कामों में लगते हैं। तीन घंटे बाद भोजन करने जाते हैं, तो उस आदमी का नाम याद आता है। प्रयत्न करने पर भी मन उधर नहीं गया और बिना प्रयत्न के भी उधर चला गया। इसलिए मानना पड़ता है कि मन पर कोई शासन कर रहा है, कोई धक्का दे रहा है, कोई इसे भेज रहा है। किसके शासन के कारण यह मन विषयों के प्रति जाता है?

मन के गमन के लिये श्रुति विलक्षण शब्द का प्रयोग करती है। श्रुति कहती है, मन विषयों में 'पतति', जिस प्रकार से पत्ता गिरता है, तो उसकी कोई स्वतन्त्रता नहीं होती है। सूख गया, हवा ने धक्का मारा तो पेड़ से नीचे आया। जो कुछ भी भौतिक नियम हैं, पृथ्वी के आकर्षणादि के, उनके अनुसार नीचे गिरता है। उसमें उसकी कोई स्वतंत्रता नहीं है। इसी प्रकार से मन किसी विषय में जाता है, वहाँ उसकी भी कोई स्वतंत्रता नहीं प्रतीत होती! जैसे वहाँ पत्ते को हवा ने धक्का मारा, वैसे ही यहाँ मन की वृत्तियों को धक्का मारनेवाला कोई देव जरूर है। परन्तु वह कौन है? इसी प्रकार से आगे प्राण, इन्द्रियों के बारे में भी प्रश्न किया। यदि वेदान्त की दृष्टि से देखो तो मन किससे बनता है? परमात्मा से पंचमहाभूत उत्पन्न हुए–पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश। उन पंचमहाभूतों के सत्त्वगुण से मन और ज्ञानेन्द्रियाँ बनती हैं। इन्हीं पंचमहाभूतों के रजोगुण से प्राण और कर्मेन्द्रियाँ बनती हैं और उन्हीं पंचमहाभूतों के तामसांशसे पंचीकरण द्वारा ये दीखनेवाले विषय बनते हैं। जड पंचमहाभूत के सत्त्वगुण से बननेवाला मन भी तो जड

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही है; जैसे पत्ता जड है ऐसे ही मन भी जड है। अतः उसे कोई-न-कोई शासित करके भेजता है।

यह प्रश्न किया तो उपनिषद् में गुरु ने विलक्षण जवाब दिया। उन्होंने किसी देवता का नाम नहीं लिया वरन् कहा 'श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसा मनो यत्' आदि। श्रुति कहती है कि मन का जो मन है वह मन को भेजता है! प्रश्न था कि मन को विषयों में प्रवृत्त कौन करता है; जवाब दिया कि मन का मन करता है। 'घड़े का घड़ा' तो हुआ नहीं करता है, घड़ा खुद घड़ा है, वह अपने-आप से कौन-सा सम्बन्ध कर सकता है? इसी प्रकार मन के मन का क्या मतलब? जितनी जड चीज़ें हैं, उन सबको साक्षात् या परम्परा से प्रवृत्त करनेवाला चेतन है। चेतन और जड का यह प्रधान भेद है। चेतन स्वतन्त्र होकर क्रिया करता है और जड परतन्त्र होकर क्रिया करता है। अगर किसी कमरे में कुर्सी रखी हुई है, तुम कमरा बन्द करके चले गए, वापस आए, कुर्सी दूसरे कोने में रखी मिले तो तुम तुरन्त पूछते हो 'इस कमरे में कुर्सी यहाँ से वहाँ किसने की?' कोई जवाब दे 'अपने आप चली गई होगी' तो क्या तुम मान लोगे? नहीं, क्योंकि कुर्सी जड है, स्वतः प्रवृत्ति नहीं कर सकती। परन्तु आप तीन महीने का बच्चा लिटा कर चले गए। वह वहाँ से सरक कर इधर-उधर होता दूसरी तरफ चला गया और कोई कहे 'अपने-आप हो गया' तो मान लेते हो कि हो गया होगा।

शरीर आदि स्वरूप से जड है परन्तु चेतन तत्त्व के साथ युक्त होते हैं तभी चेतन की तरह सचेष्ट होते हैं। सचमुच में शरीर आदि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की प्रवृत्ति करानेवाला चेतन है। परन्तु प्रवृत्ति कराने के लिए उस चेतन के पास कोई औजार नहीं है। घड़े को उठानेवाले को हम चेतन कहते हैं परन्तु क्या चेतन खुद उठाता है? चेतन भी हाथ के द्वारा उठाता है। हाथ उसका साधन है, चेतन साक्षात् नहीं उठाता। उठाने के लिए हाथ में शक्ति चाहिए जिसे कर्मेन्द्रिय कहते हैं। आदमी को लकवा मार जाता है तो हाथ रहता है, परन्तु अब वह बाल्टी तो क्या अपने को ही नहीं उठा सकता! जो हाथ बीस किलो की बाल्टी उठा लेता था, वही अब खुद अपने आपको नहीं उठा पाता। इसलिए मानना पड़ता है कि चेतन और हाथ के बीच में कोई चीज है। चेतन उठाना चाह रहा है, हाथ भी है, परन्तु फिर भी हाथ नहीं उठ पाता इसलिए बीच में कोई चीज है, जिसे इन्द्रिय कहते हैं। हाथ में उठाने की शक्ति कर्मेन्द्रिय हो तो वह उठायेगा, वरना नहीं। चेतन बाल्टी को हाथ से उठाता है, हाथ को कर्मेन्द्रिय से उठाता है, उस कर्मेन्द्रिय की प्रवृत्ति कराता है मन के द्वारा। मन में विचार आता है, 'हाथ उठाओ' तब कर्मेन्द्रिय प्रवृत्त होती है और कर्मेन्द्रिय प्रवृत्त होकर हाथ को प्रवृत्त करती है, हाथ बाल्टी को उठाता है।

अब अगला प्रश्न है कि चेतन जब प्रवृत्त करता है तब कौन से औजार से करता है। यहाँ तक तो बात बनी कि बाल्टी को हाथ ने उठाया, हाथ को कर्मेन्द्रिय ने प्रवृत्त किया, कर्मेन्द्रिय को मन ने प्रवृत्त किया। पर मन को जो चेतन ने प्रवृत्त किया वह किस औजार से किया? अगर बीच में किसी और औजार को मानते हो तो आगे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फिर उस औजार को प्रवृत्त करने के लिए और औजार होगा, इस प्रकार अनवस्था दोष होगा। इसलिए मानना पड़ता है कि मन को जब चेतन प्रवृत्त करता है तो बिना किसी औजार के। बिना किसी औजार के चेतन मन को प्रवृत्त करता है, लेकिन क्या चेतन बिना उपाधि के कार्य करेगा? फिर तो चेतन कर्ता-भोक्ता भी होगा! अगर चेतन अपने आप में, बिना उपाधि के कर्ता-भोक्ता है, तब तो मन को कर्तृत्वादि के लिये उपाधि समझा ही न जाये। आत्मस्वरूप वर्णन के अनुसार वह खुद कर नहीं सकता। इसलिए श्रुति ने यह नहीं कहा कि मन को प्रवृत्त *करनेवाला* कोई देव है। यह कह दिया कि मन का मन ही मन को प्रवृत्त करता है।

ऐसे समझ लो : प्राचीन काल में जब राजा लोग भोजन करते थे, तो उनका भोजन पहले चकोर पक्षी को दिखाया जाता था। चकोर की आँख का स्वभाव है कि यदि जहर मिला हुआ विषाक्त भोजन उसकी आँख के सामने आये तो उसकी आँख का रंग लाल हो जाता है। आँख का रंग लाल हो जाय तो परीक्षा करने वाला समझ जाता है कि भोजन में जहर डाला गया है, विषाक्त भोजन है। यदि रंग नहीं बदले तो राजा वह भोजन ग्रहण करता था। इसलिए यह कहा जाता है कि चकोर की आँख राजा को भोजन में प्रवृत्त अथवा उससे निवृत्त करती है। चकोर की आँख लाल नहीं हुई तो भोजन में प्रवृत्ति, लाल हुई तो भोजन से निवृत्ति हो गई। परन्तु यह बतलाओ, क्या चकोर ने अपनी तरफ से कुछ करके राजा को प्रवृत्त-निवृत्त किया? यह तो उसकी आँख का स्वभाव ही है। चकोर ने अपनी तरफ से कुछ किए बिना राजा की प्रवृत्ति-निवृत्ति करा दी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आचार्य शंकर लिखते हैं कि विक्रियाविशेष से रहित आत्मा प्रवर्त्तक है। मन प्रवृत्ति करता है, मन प्रवृत्त होने पर आत्मा उसे प्रकाशित कर देता है। मन निवृत्ति करता है, तो प्रकाशित कर देता है। बस, इतने-मात्र से आत्मा को मन का प्रवर्तक या निवर्त्तक माना जाता है। जैसे, जहरीले भोजन को राजा क्यों नहीं खाता? मरने के डर से! ऐसा नहीं है कि चकोर की आँख लाल हो गई *इसलिए* नहीं खा रहा! चकोर की आँख लाल होने से तो उसको पता चला कि यह जहरीला भोजन है। सचमुच में तो वह इसलिए नहीं खा रहा है कि वह जहरीला है। अन्य तरह भी पता चलता तो न खाता। कहा यही जाता है कि चकोर की आँख लाल हो गई इसलिए भोजन नहीं किया जा रहा, लेकिन उससे तो केवल पता लगा। इसी प्रकार से कहा तो यह जाता है कि चेतन ने मन को प्रवृत्त किया, पर इसका मतलब यही है कि चेतन का मन में प्रकाश होने से मन ने प्रवृत्ति की। इसलिए मन-आत्मा के बीच में किसी औजार की ज़रूरत नहीं है। मन की किसी प्रवृत्ति-निवृत्ति के लिये आत्मा में विकार के बिना ही उसमें निमित्तता कही जाती है। इन्द्रिय-मन-प्राण-शरीर इन सबका समुदाय ही प्रवृत्ति करता है, परन्तु इनमें ज्ञानस्वरूप आत्मा है तो इन्हें प्रकाशित कर देता है जिससे इनमें जड होने पर भी स्वत: प्रवृत्ति-निवृत्ति सम्भव हो जाती है। नित्य होने पर भी जब मन की वृत्ति बनती है, तो व्यक्त हो जाता है, प्रकट हो जाता है।

कुछ लोग जानते होंगे कि यदि तुम पृथ्वी के वायुमण्डल से बाहर चले जाओ तो चारों तरफ घोर अँधेरा दीखेगा। परन्तु उस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अँधेरे के अन्दर अगर तुम अपना हाथ या कोई चीज़ यान से बाहर करके देखो तो चमकती दीखेगी। कारण क्या है? सूर्य-मण्डल का और नक्षत्रों का प्रकाश आ ही रहा है, उस प्रकाश पर कोई खोल तो चढ़ी नहीं है! वहाँ प्रकाश तो है, परन्तु प्रकाश प्रकट होता है किसी-न-किसी स्थूल चीज़ के ऊपर। अगर वहाँ तक न जाना चाहो, तो ऐसे समझो : वायु में से ही सूर्य की रोशनी जब किसी दीवार पर आकर पड़ती है, तब तो वह चमकती है, परन्तु वायु के बीच में नहीं चमकती। ऐसा नहीं कि वहाँ पड़ने पर प्रकाश में कोई नवीनता आई है। पत्थर उसे प्रकट कर देता है, इसलिए उस पर धूप दिखाई देती है, वायु के अन्दर रोशनी व्यक्त नहीं होती, इसलिए वहाँ चमक, धूप दिखाई नहीं देती।

इसी प्रकार ज्ञान तो नित्य है, परन्तु मनोवृत्ति बनने पर वह व्यक्त हो जाता है। जैसे पत्थर पर धूप पड़ने से कोई विशेषता नहीं आई। इसी प्रकार जब मन की वृत्ति बनती है तब ज्ञान व्यक्त हो गया पर ज्ञान में कोई विशेषता नहीं आयी। जहाँ ज्ञान की वृत्ति नहीं बनती वहाँ वह प्रकट नहीं होता जबकि नित्य ज्ञानस्वरूप है ही। चेतन का प्रकाश मन पर पड़ता है तो प्रवृत्ति करनेवाला मन है, परन्तु बिना चेतन का प्रकाश पड़े वह प्रवृत्त हो नहीं सकता। यह नहीं कह सकते कि जो नित्य प्रकाश सूर्य का है उससे भिन्न कोई प्रकाश पत्थर को चमकाने वाला है। पत्थर को चमकाने वाला सूर्य का नित्य प्रकाश ही है। पत्थर चमकता है क्योंकि पत्थर वहाँ है। इसी प्रकार मन की वृत्ति के अन्दर चेतनता लाने के लिए चेतन में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई दूसरा प्रकाश या दूसरा औजार नहीं है। सारी प्रवृत्तियाँ यह समुदाय करता है। परन्तु बिना चेतन के सम्बन्ध के कर नहीं सकता। इसलिए किसी दूसरी उपाधि से नहीं कह सकते कि मनुष्य के 'मनसो मनः', मन का मन है अर्थात् मन को जो कुछ भी करना है वह करता है, लेकिन सम्बन्धित हो करके, नहीं तो नहीं। इसलिए इसके आगे के मन्त्र में ही कहा कि मन के द्वारा तो उसको नहीं जान सकते, लेकिन वह है इसलिए मन सब चीज़ों को जानता है।

आँख की रोशनी से समझ लो : आँख की रोशनी है, तो सब चीज़ें दीखती हैं, परन्तु क्या आँख की रोशनी आँख को दीखती है? नहीं दीखती; तो तुम्हें कैसे पता चलता है कि तुम्हारी आँख ठीक है या मोतियाबिन्द है? आँख की रोशनी कम हो गई यह किससे देखा? आँख के मंदा देखने के द्वारा।

इसी प्रकार मन आत्मा को नहीं जान सकता परन्तु मन जब चीज़ों को जानता है, तो पता लगता है कि आत्मा की रोशनी है, इसलिए जान रहा है। इसलिए जब शब्द का बोध होता है, रूप का बोध होता है, रंग का बोध होता है, उन बोधों में अभिव्यक्त हो जाता है ज्ञानस्वरूप आत्मा। परब्रह्म परमात्मा को मनोमय प्राणशरीर कह रहे हैं, तो यह मनोमय कैसा है? तुम्हारे ही मन को मन बनाने वाला साक्षी है, इस रूप से ही उसका ध्यान करना है। तुम्हारे मन में तुम क्या सोच रहे हो यह तो हम नहीं जानते, परन्तु तुम्हारे चेहरे को तमतमाया देखकर होठों को फड़कता देखकर हमें पता लग जाता है कि तुम्हें गुस्सा आया हुआ है, गुस्से के कारण तुम्हारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चेहरा लाल हो रहा है। ठीक इसी प्रकार, हमें चेतन प्रकाश मिल रहा है तो हमें निश्चित पता है कि परमात्मा प्रकाशित कर रहा है। हमें प्रकाश दे रहा है, तो यह भी पता लगता है कि वह हम पर कृपा करके दे रहा है। इसलिए आचार्य शंकर कहते हैं—

'उपासकानां त्वमुमासहायः
पूर्णेन्दुभावं प्रकटी करोषि।
यदद्य ते दर्शनमात्रतो मे
द्रवत्यहो मानसचन्द्रकान्तः ॥'

आपका दर्शन करनेमात्र से ही हमारा जो मनरूप चन्द्रकान्त मणि है, उसमें से जल निकल रहा है। चन्द्रकान्त मणि के बारे में प्रसिद्ध है कि चन्द्रकान्त मणि को चन्द्रमा के प्रकाश में रखा जाता है, तो उसमें से जल की बूंदें निकलती हैं। इसी प्रकार हमारा मन चन्द्रकान्त मणि की जगह है। चन्द्रकान्त मणि व्यष्टि हुआ, चन्द्रमा समष्टि हुआ इसलिए अपने समष्टि के सामने जाकर वह पिघलता है, मायने उसमें से पानी की बूँदें निकलती हैं। आजकल के जमाने में काँच-विशेष देखा होगा जो मोटरों में लगा होता है; सामने की तरफ धूप पड़ने पर भी काँच के भीतर धूप नहीं आती, धूप काँच का स्पर्श करती है, परन्तु जो प्रकाश पड़ता है, काँच उसे 'पी' लेता है। इसलिये जो प्रकाश काँच से 'छानकर' मिलता है, वह 'ठण्डा' होता है। ऐसा भी काँच देखा होगा जिसे यदि धूप के अन्दर रख दो तो जितनी तेज धूप है, उससे ज्यादा प्रकाश उससे निकलता है। उसके नीचे हाथ रखोगे तो हाथ जल जायेगा। काँच में गर्मी नहीं है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लेकिन उसमें यह सामर्थ्य है कि सूर्य की गर्मी को केन्द्रित कर, उसे 'तेज' कर दे जैसे दूसरे काँच की विशेषता यह है कि उसे 'ठण्डा' कर दे। सूर्यकान्त मणि सूर्य की गर्मी को तेज कर देती है और चन्द्रकान्त मणि चन्द्रमा के प्रकाश को मानो इतना ठण्डा बना देती है कि जैसे ओस के बिन्दु जम जाते हैं, ऐसे ही चन्द्रकान्त मणि पर पानी की बूँदें बन जाती हैं।

ठीक इसी प्रकार हमारा मन चन्द्रकान्त मणि की तरह है। इसीलिए आज आपके दर्शन करनेमात्र से मन पिघल गया। आप हमारे पूर्ण स्वरूप हैं, सबको प्रवृत्त करने वाले हैं, 'मनोमय' हैं, यह जो आपके मनोमय भाव का विचार है इससे ही हमारा मन पानी बन रहा है। अर्थात् आपकी मनोमयता हमें स्पष्ट प्रतीत हो रही है। परमेश्वर की मनोमयता समझने से ही पता लगता है कि परमेश्वर हमारे ऊपर अनुग्रह, कृपा करता है। जब हम परमेश्वर में अनुग्रह मानते हैं, तब सहज-रूप से हमारे मन में उसकी मनोमयता की कल्पना हो जाती है और तभी हम उसके अनुग्रह के लिये प्रार्थना, स्तुति, अर्चना सब कर सकते हैं। अगर परमेश्वर मनोमय न होवे, अगर हमारी बात सुनकर वह कोई अनुग्रह ही न करता हो, फिर तो यह सारा प्रयास व्यर्थ है। इतना याद रखना कि परमात्मा के अन्दर अनुग्रह भी हम कल्पित कर रहे हैं, परमात्मा तो निर्विकार है। जिस प्रकार से सामने वाले के क्रोध की हम उसके स्वभाव से कल्पना करते हैं, वह क्रुद्ध हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है, इसी प्रकार हम परमात्मा को मनोमय समझ कर साधना करते हैं, मन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसके अन्दर वास्तविक नहीं है। उपासना के लिए उसमें मन है परन्तु वह वास्तव में मन वाला नहीं है, इतना ही मतलब है। ठीक जिस प्रकार से सारे व्यवहार के लिए चकोर की आँख को देख कर ही खाना है या नहीं खाना परन्तु चकोर निर्विकार है, वह नहीं कहता कि खाओ या नहीं खाओ, इसी प्रकार परमात्मा निर्विकार रहते हुए ही उपासक के लिये मनोमय, प्राणशरीर, भारूप हो जाता है, 'बन' जाता है।

बचपन से ही भगवान् शंकर में मन लगाने वाले एक भक्त थे, उनका नाम था माणिक्यवाक् (माणिकवाशगर)। शिव के बारे में सोचते रहते थे। पढ़-लिख कर बड़े हुए, योग्य ब्राह्मण थे। उनके पिता कहीं राजा के प्रधानमंत्री थे। पिता का शरीर समाप्त हो गया तो राजा ने बुला कर कहा 'तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई पूरी हो गई, अब पिता का काम तुम संभालो।' भारतीय विचारधारा के अन्दर हम लोग यह मानते हैं कि जिस परम्परा में जो काम होता रहता है, उस परम्परा के अन्दर विलक्षणता आती है। इसलिए उस काम में सहज उन्नति होती है, और यदि उसको उसी काम में अध्ययन कराया जाए तो उसमें पूरी सफलता होती है। आजकल की समस्या यह है कि बच्चा जब पढ़ता है तो सोचता ही रहता है कि वह क्या पढ़े। प्राचीनकाल में यह समस्या नहीं थी कि क्या पढ़े। चार विषय पढ़ाए जाते थे–दण्डनीति, त्रयी, वार्ता, आन्वीक्षिकी। सबसे पहले हम पढ़ाते थे आन्वीक्षिकी, सोचने का तरीका, किस प्रकार से सोचा जाए। आज उसे तर्क कहते हैं। सोचने का तरीका पहले प्रत्येक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यक्ति को पढ़ाया जाता था। आज यह मान लिया है कि जो दर्शन-शास्त्र पढ़ेगा, दसवीं के बाद या बारहवीं के बाद, वह तर्क सोचने का तरीका सीखेगा। जीवन में सभी काम सोचकर करने हैं, सोचने का तरीका तो सबको आना चाहिए। सोचने के नियम नहीं आते इसलिए दो आदमी बैठकर बात-चीत करते हैं, तो पहले गाली-गलोच होती है फिर धक्का-मुक्की होती है। क्योंकि न यह समझ पाते हैं कि सामनेवाला ठीक क्यों बोल रहा है और न यह कि हमारे बोलने में गलती कहाँ है। सोचने का तरीका किसी ने सिखाया ही नहीं है। इसलिए प्राचीन लोग मानते थे कि सोचने का तरीका सबको ज़रूर आना चाहिए। त्रयी, दूसरी बात जो जरूर मालूम होनी चाहिए वह है वेद जिसमें पता चले कि जीवन के क्या मूल्य हैं, जिससे यह समझ आये कि हमें क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए। तीसरी है दण्डनीति, प्रत्येक व्यक्ति जिस देश में रहता है, उसे वहाँ की दण्डनीति का पता होना चाहिए कि क्या करना अपराध है, क्या करना अपराध नहीं है। अब यह क्रम है कि पहले बी.ए. कर लो, फिर वकालत करो तब तुम्हें कानून सिखाया जाएगा। कानून के अनुसार रहना किसे है? हमें, और कानून जानता कौन है? वकील! भोजन बनाना जानता कोई हो और चूल्हे पर किसी और को बैठा दो, वह गलती करे तो उससे पूछो 'यह गलती क्यों की?' कानून हर-एक को मानना है तो कानून का पता भी सबको होना चाहिए। क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए, यह धर्म का ज्ञान सबको होना ही चाहिए और जिस देश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में रहते हैं उस देश के क्या नियम हैं, क्या कानून हैं, यह जानना चाहिए। और चौथा विषय था वार्ता, कमाई का साधन। तीन विषय तो सबको एक-जैसे पढ़ाये जाते थे। भारतवर्ष में रहते हो, तो सबको सोचने का तरीका आये, धर्म पता हो। दण्डनीति मालूम हो तथा रहने के नियम अर्थात् धर्म की समझ हो। कमाई का साधन हर किसी का वही होगा जो कुल में करते आये हैं, वही वार्ता उसको सिखायी जायेगी।

माणिक्यवाक् मान गया, मंत्री पद अच्छी तरह सँभाला, लेकिन निरन्तर परमेश्वर का चिन्तन करता था कि जो सब काम कर रहा है, वह जीवन का उद्देश्य तो है नहीं। निरन्तर सोचता रहता था फिर भी अपना कार्य कर रहा था। एक बार राजा ने उसे घोड़े लेने के लिए भेजा। पर्याप्त रुपये देकर कहा 'घोड़े खरीद कर लाओ।' उन दिनों, सम्भवतः अब भी, अरब देश के घोड़े सबसे अच्छे माने जाते थे। इसलिए संस्कृत भाषा में अच्छे घोड़े का एक नाम है अरवा, अरब देश से आनेवाला। वह जा रहा था घोड़े खरीदने के लिये, एक जगह से निकल रहा था, तो वहाँ उसे बहुत बड़ा जंगल दीखा और वहाँ वेद की ध्वनि बड़ी जोरों से हो रही थी। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि आस-पास कोई बस्ती दीखती नहीं, वेद की ध्वनि आ रही थी। साथी लोगों से कहा 'तुम यहाँ रुको, मैं जा कर देखता हूँ, वेद की ध्वनि कहाँ से आ रही है?' वह गया जंगल के अन्दर तो देखा कि एक वटवृक्ष के नीचे भगवान् शंकर दक्षिणामूर्तिरूप में बैठे हुए हैं। उसने देखा कि अक्षीण दया के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निधान भगवान् शंकर हैं। दया का निधान, खजाना है जो खजाना घटता नहीं। ऐसा नहीं कि दया कर दी तो कम हो जाये। चाहे जितनी दया करते जायें, उसमें कभी कमी नहीं आती। सबसे पहले परमात्मतत्त्व का उपदेश देने वाले भगवान् दक्षिणामूर्ति ही हैं, वे वट वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे। मौन बैठे थे, चेहरे पर हल्की मुस्कान थी और चारों तरफ बड़े-बड़े महर्षि लोग बैठे थे जो सभी वेदों के मन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे। मन्त्रों का तात्पर्यार्थ परमात्मा है यह उनके मन में दक्षिणामूर्ति उद्भासित कर रहे थे। जैसे ही यह वहाँ पहुँचा उसका मनरूप चन्द्रकान्त बिलकुल तर हो गया, पिघल गया। भगवान् की शरणागति लेकर कहने लगा 'महाराज! आप हमें तत्त्व का उपदेश देवें।' उन्होंने तत्त्व का उपदेश दे दिया। उनके उपदेश देते ही तत्त्व को यह समझ गया। इसने कहा 'अब मैं वापस नहीं जाना चाहता।' उन्होंने कहा 'नहीं जाओ।' उसने कहा 'मेरे पास यह सब धन है।' उन्होंने कहा 'मन्दिर बना दो।' मन्दिर बना कर वहीं रहने लग गया। जो बनाया था वह मन्दिर अभी भी है।

जो साथ के कर्मचारी थे, उन्होंने राजा से जाकर शिकायत की 'आपने जो धन दिया था वह सारा धन तो उसने इस प्रकार से मन्दिर में लगा दिया।' राजा ने तुरन्त आरक्षी भेजे। उन्होंने देखा तो बात सच्ची थी। वे उसे पकड़ करके ले गए। रास्ते में जा रहा था, तो भगवान् शंकर का ध्यान किया और कहा 'महाराज आपके कहने से मैंने मन्दिर बना दिया। मैं जा रहा हूँ, राजा ने मुझे पकड़ कर बलात् बुलाया है।' भगवान् ने कहा 'घबराने की कोई बात नहीं।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब वहाँ पहुँचा तो राजा ने पूछा 'अरे, तुमने मेरे धन को बर्बाद कर दिया?' कहने लगा 'नहीं, मैंने सौदा पक्का कर लिया है, अमुक तारीख को आपके घोड़े यहाँ पहुँच जायेंगे। व्यापारी विश्वासी है।' उसकी दृढता देखकर राजा ने कहा 'इसको नजरबंद कर दो, कहीं भाग न जाये, लेकिन अमुक तारीख तक इसे दण्ड तो कोई देना नहीं है।' उस तारीख में एक दिन रह गया और कहीं से कोई खबर आई नहीं कि इतने हजार घोड़े आ रहे हैं। राजा को सन्देह भी होने लगा। माणिक्य को शान्त देखे तो सोचे 'कोई-न-कोई बात होगी, इसको तो कोई उद्वेग है नहीं।' ठीक जिस दिन घोड़े पहुँचने का समय था, सुबह दस बजे अरब देश का एक व्यापारी आया और कहने लगा 'घोड़े यहाँ आ गए हैं। अमुक आदमी के साथ हमारा आपस में समझौता हुआ है, उनको सामने करिए और घोड़े ले लीजिये।' राजा क्या करता? उसने माणिक्य को बुलाया, क्षमा भी माँगी। व्यापारी ने कहा 'घोड़े अच्छी तरह से सँभाल के ले लो, कोई मार-पीट नहीं होवे। मैं वापस ले जाकर दूसरा देने को तैयार हूँ, मेरे पास माल सारा है।' राजा ने देखा कि जो पहले घोड़े आते थे उनसे भी अच्छे घोड़े आये थे, इतनी आशा भी नहीं थी, बड़ा सस्ता माल आ गया था। सोचने लगा 'मैंने बड़ी गलती की जो इसे बन्द किया, कष्ट दिया।' घोड़ों को बाँध दिया गया घुड़साल में, व्यापारी चला गया, लिखा-पढ़ी पक्की हो गई। सवेरे घुड़साल से कर्मचारी दौड़ कर आए, वहाँ जितने भी घोड़े थे, वो तो सियार हो गए और एक-दूसरे पर झपट रहे थे। उन्होंने माणिक्य को बुलाया, उसने कहा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'जी, मैंने आपके रुपये के हिसाब से घोड़े सँभलवा दिये थे। हमने आपको पहले ही कह दिया था कि हमें आपके यहाँ काम करना नहीं है। इसलिए हमारा आपका कोई सम्बन्ध नहीं है। आपने घोड़े सँभाल लिये, हमारा सम्बन्ध खत्म हो गया।' राजा ने भी स्थिति को समझ लिया और उसको लेकर अंततोगत्वा वहीं गए और अपना अधिकतर जीवन वहीं बिताया।

विचार करो, घोड़े आ जायें यह किसका संकल्प था? माणिक्य के मन का संकल्प था। उस संकल्प को परमेश्वर ने पूरा कर दिया इसलिए और किसी साधन की उनको जरूरत नहीं रही। परमेश्वर से जब तुम प्रार्थना करते हो, उसकी उपासना करते हो, तब कहते हो कि 'वह मन वाला है।' कैसे मन वाला? 'अक्षीणदयानिधान'; दया रहती है मन में। हम लोगों के मन में दया रहती है पर कठोरता भी रहती है। परमेश्वर के मन में दया रहेगी, कठोरता नहीं रहेगी। क्षमा रहेगी, दण्ड नहीं रहेगा। इस प्रकार मनोमयरूप से उनका चिन्तन करना है।

❖

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन : तेरहवाँ

(११.४.९८)

सगुण ब्रह्म की उपासना का स्वरूप बतलाते हुए उसे मनोमय और प्राणशरीर कहा। यद्यपि परमेश्वर के मन की जगह माया है, तथापि हम लोगों को वह मन की तरह लगती है, जैसे हम मन से कार्य करते हैं, उसी प्रकार उसका माया से कार्य होता है। उसकी माया में अनेक देश हैं। सगुण ब्रह्म की माया सर्वव्यापक होने से हमारे मन में भी व्याप्त हो रही है। हमारा मन माया के एकदेश का कार्य है, एक हिस्से का कार्य है। व्यापक माया में सत्त्वगुण शुद्ध है। हमारे मन में रजोगुण-तमोगुण भी मिले हुए हैं। हमारा मन भी सत्त्वगुण से बना है, किन्तु रजोगुण और तमोगुण की अधिकता से दब गया है। जैसे बढ़िया-से-बढ़िया काँच भी हो, परन्तु उसके ऊपर मिट्टी चढ़ जाये तो वह सूर्य के प्रकाश से वैसा जगमगाता प्रतीत नहीं हो पाता। काँच स्वरूप से उस समय भी साफ है जब उसके ऊपर मिट्टी पड़ी हुई है, परन्तु मिट्टी पड़े होने से उसकी चमक दिखाने की जो सामर्थ्य है, वह दब जाती है। इसी प्रकार से हमारा मन भी है तो सत्त्वगुणी परन्तु रजोगुण-तमोगुण भी होने के कारण उसमें कहीं रजोगुण की अधिकता, कहीं तमोगुण की अधिकता, कहीं थोड़ा रजोगुण, कहीं थोड़ा तमोगुण, इस प्रकार अनेक प्रकार के उच्चावच भाव आते रहते हैं। अतः परमेश्वर उसमें प्रकाशित नहीं हो पाता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसलिये भक्त परमेश्वर से कहता है 'भगवन्, मैं जानता हूँ कि आप मेरे मन के अन्दर प्रकाशित क्यों नहीं होते?

'अतिमृदुलौ मम चरणा-
वतिकठिनं ते मनो' भवानीश!
इति विचिकित्सां सन्त्यज
शिव कथमासीद् गिरौ तथा वेशः ॥

आप यह सोचते हैं 'मेरे चरण तो अत्यन्त मृदुल, अत्यन्त कोमल हैं और भक्त का मन रजोगुण और तमोगुण के कारण अत्यन्त कठिन है।' इसलिये आप नहीं आते। लेकिन एक बात बतलाइये, आपके घूमने लायक अनेक जगहें होने पर भी आप पहाड़ों में क्यों चक्कर लगाते हैं? इससे मैं समझता हूँ कि मेरे कठोर मन में पधारने का आपका संकल्प था, इसीलिए कठिन स्थलों पर घूमने का आपने अभ्यास किया है। मैं तो आपके योग्य नहीं हो सकता परन्तु आपके मन में यह संकल्प है कि मेरी रक्षा करें। जब तक आप मेरे अंतःकरण में अटन नहीं करेंगे तब तक मेरी रक्षा हो नहीं सकती। आपने पहाड़ों पर पहले ही घूम कर अपने कोमल चरणों को पथरीली भूमि में घूमने के लायक बना लिया है। आपके लिये सुन्दर-से-सुन्दर शिवालय बनाये जाते हैं, वहाँ न रहकर आप पहाड़ों पर आखिर क्यों जाते हैं? देवता लोग आपके लिये अच्छे-अच्छे बिछौने, गद्दे बिछा कर रखते हैं, उन सब को छोड़कर आप पहाड़ों में चक्कर लगाते क्यों हैं? इसी प्रकार आपके बैठने के लिये अत्यन्त कोमल वेदी, सिंहासन इत्यादि बनाये जाते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं, उन सबको छोड़कर पहाड़ में इसीलिए घूमते हैं कि मुझ जैसा भक्त आयेगा। इसीलिए आप यह नहीं कह सकते 'तुम्हारा अंतःकरण कठोर है इसलिए मैं नहीं आ रहा हूँ।' परमेश्वर को कठोर से कठोर मन में घूमना ही पड़ता है। अंतःकरण चाहे जैसा भी हो, चेतन का प्रतिबिम्ब, तो पड़ेगा ही। जिस प्रकार से सूर्य की रश्मियाँ पत्थरों पर, पहाड़ों पर, सड़कों पर, रोड़ी पर, सर्वत्र पड़ती ही हैं। टेढ़ी-मेढ़ी चीज़ों को भी प्रकाशित करती हैं और अत्यन्त कोमल घास को भी प्रकाशित करती हैं। परमेश्वर की जो माया-शक्ति है, उसका एकदेश हमारा अंतःकरण है। माया-शक्ति सत्त्वगुणवाली और हमारा अंतःकरण रजोगुण-तमोगुण वाला, परन्तु उसका हिस्सा होने के कारण परमेश्वर उसमें घूमते तो हैं ही। हमें साफ नहीं पता चलता, बस इतनी बात है।

भक्त कहता है कि जब आप मन में आते ही हैं तो फिर आप इसे ठीक भी कर दीजिये! क्या सभी का मन ठीक किया जाये? मेरा मन कठोर है फिर भी मैं आपके ध्यान में आसक्त चित्तवाला हूँ इसलिए सफाई के योग्य हूँ। जो मन रज-तम के प्रभाव से परमात्म-विचार में तत्पर ही नहीं उसमें शुद्धि की योग्यता न हो तो उस पर आप कृपा करें, यह मैं प्रार्थना नहीं करता। मैं शुद्ध चित्तवाला अभी नहीं हो पा रहा, मेरा मन रजोगुण और तमोगुण से अभिभूत है, परन्तु मेरा मन आपकी तरफ आसक्ति वाला है, उसे शुद्ध करने का मेरा भाव जरूर है। राग, द्वेष, काम, क्रोध आदि विकार मेरे साथ द्रोह करते हैं, मैं तो चाहता हूँ कि परमात्मा की तरफ लगूँ, परन्तु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काम, क्रोध आदि विकार यह निश्चय डिगा देते हैं। जैसे कई बार सड़क पर रोड़ी बिछाकर समतल बनाने के बाद यदि अलकतरा डालने से पूर्व उस पर मिलिट्री का टैंक, ट्रैक्टर, बुल्डोजर आदि चले तो रोड़ी पुन: ऊबड़-खाबड़ हो जाती है। अथवा और मोटे रूप में समझ लो : सड़क बनानेवाले अच्छी तरह से सड़क बना कर गये, परन्तु बिजलीवाले खोद कर उसमें छेद कर देते हैं, पानी की लाइनवाले उखाड़ देते हैं, सीवर की लाइनवाले खोद देते हैं, फिर थोड़े समय के बाद सड़क बनानेवाले सड़क सीधी करें तब तक फिर कोई बिगाड़ दे। ठीक इसी प्रकार मैं आप में आसक्त चित्त वाला होकर थोड़ा-बहुत अपने मन के राग-द्वेष को नियन्त्रित करता हूँ, तब तक कोई-न-कोई व्यवहार का टैंक, बुलडोजर आ जाता है, फिर खराब कर जाता है, मेरा किया हुआ प्रयास व्यर्थ ही हो जाता है। मन ठीक न हो जाए मानो इसलिए काम, क्रोध, राग-द्वेषादि मुझसे द्रोह करते हैं। आपके हाथ में मौजूद बाणों से मेरी रक्षा करें, मैं तो अपने को नहीं बचा पाता हूँ। परब्रह्म परमात्मस्वरूप आप खुद ही उन सबको समाप्त करें, यह कार्य आप ही कर सकते हैं।

भगवान् शंकर के बाण क्या हैं? उपनिषदों में बतलाया है कि हमारा प्रत्यगात्मा ही बाण है। हमारा अपना आत्मा शुद्धरूप है, उसकी तरफ ध्यान जाता है तो अंत:करण से हमारा ध्यान हट जाता है। जब तक अंत:करण की तरफ ध्यान रहता है, तब तक तो वह फिर-फिर बिगड़ता रहता है, परन्तु जब भगवान् शंकर बाण का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रयोग करते हैं, अर्थात् अंत:करण की तरफ देखना छोड़ कर जब हम अपने आत्मस्वरूप की तरफ देखते हैं, प्रत्यगात्मा की तरफ देखते हैं, तब अनात्म पदार्थ मारे जाते हैं। परन्तु यह तब होगा जब बाण छूटने के लायक हो जाय, मन के अन्दर शुद्धि आ जाये, भक्तिवश शरणागत हो जायें तो कोई जरूरी नहीं कि शुद्धि आने पर ही भगवान् अपनावें। भगवान् शंकर के सिर के ऊपर चन्द्रमा है। द्वितीया का चन्द्रमा भगवान् शंकर के मस्तक के ऊपर विराजमान है। उस चन्द्रमा को वहाँ रख कर भगवान् क्या कह रहे हैं? चन्द्रमा के द्वारा यह बतलाते हैं कि वक्राकार, कलंकी, जडतनु आदि होकर भी भगवान् द्वारा स्वीकार किये जा सकते हो! चन्द्रमा वक्राकार है, द्वितीया का चन्द्रमा बिलकुल टेढ़ा होता है। कलंकी है, चन्द्रमा के बीच में कलंक भी होता है। एक खरगोश-सा बीच में दीखता है। चन्द्रमा का स्वरूप जड है ही। टेढ़ा, कलंकी, जड शरीरवाला भी भगवान् शंकर के चरणों की सेवा के प्रभाव से अत्यन्त उन्नत स्थिति पा जाता है। की थी चरणों की सेवा परन्तु भगवान् शंकर ने उठा कर ऊँचा कर दिया! क्यों ऐसा करते हैं? भगवान् शंकर की करुणा सुलभतर है। सुलभतर उनकी करुणा बहती है, प्रवाहित होती है। जैसे पहाड़ बाहर से अत्यन्त कठोर दीखता है, परन्तु पहाड़ में जगह-जगह नाले, झरने होते हैं जिनमें अत्यन्त मीठा और अत्यन्त ठण्डा पानी बहता है। ऊपर देखो तो पहाड़ कठोर है, लेकिन पहाड़ के अन्दर से बहता पानी बहुत मीठा और अत्यन्त ठण्डा होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान् शंकर को बाहर से देखते हैं, तो कैसे दीखते हैं? मुंडमाला पहने हुए, व्याघ्रचर्म पहने हुए, साँपों को लपेटे हुए, चिताभस्म लगाए हुए हैं। बाहर से देखनेवाले लोग सोचते हैं कि भगवान् शंकर अत्यन्त कठोर होंगे, परन्तु उनके अन्दर से जो कृपा की धारा बहती है, वह हमारे सारे दोषों को धोने में समर्थ है। इसीलिए वे चन्द्रमौलीश्वर हैं, जिन्होंने चन्द्रमा को अपनी मौलि में धारण किया है। चन्द्रमा को वहाँ रखकर यह बतलाते हैं कि उनकी सेवा करो तो सहजता से कल्याण होता है। यह बात चन्द्रमा उनके सिर पर अपनी अवस्था से ही बतलाता है। चन्द्रमा को कहना नहीं पड़ता, लेकिन हम समझ सकते हैं कि वक्राकार भी, कलंकी भी इस स्थान को प्राप्त कर गया! वह सभी जनों को मानो यही समझा रहा है।

'जन' का मतलब होता है जिसका जन्म हुआ है। शरीर में जन्म होने पर ही भगवान् शंकर उसे अधिकारी समझ रहे हैं, तभी उसे मनुष्य शरीर में जन्म दिया। यदि वह योग्य नहीं होता तो मनुष्य शरीर क्यों मिलता, और कोई भी शरीर दे दिया जाता! मनुष्य का शरीर इसलिए ही मिला है कि भगवान् शंकर समझते हैं कि उनको प्राप्त करने के योग्य हो। और इसी मनुष्य शरीर में उन्होंने हमें राग-द्वेष वाला अंतःकरण भी दिया है, काम-क्रोधवाला मन्दिर दिया है! इसका मतलब हुआ कि काम-क्रोध-राग-द्वेष इत्यादि दोषों के रहते हुए भी अंतःकरण के द्वारा तुम उनको पा सकते हो। क्योंकि दोनों चीज़ें उन्होंने दीं, मनुष्य जन्म भी दिया और अंतःकरण भी उन्होंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिया, इसलिए यह नहीं कह सकते कि दोनों के रहते हुए परमेश्वर की तरफ नहीं जा सकते।

मन की वक्राकारता का कारण क्या है? जो चीज़ जिधर से आती है, आगे जाकर मुड़कर फिर उधर ही चली जाती है। कोई भी चीज़ टेढ़ी होती है, तो जिधर से आई उधर को ही मुड़ती है; थोड़ी मुड़े या ज्यादा मुड़े। यही टेढ़ेपन का कारण है। इसी प्रकार हमारा मन परमात्मा की तरफ इस मायावी संसार से जाता है और फिर मुड़कर मायामय संसार की तरफ ही आ जाता है। इसलिए हमारा मन टेढ़ा है। बार-बार प्रयत्न करने पर भी यह फिर-फिर मुड़कर माया की तरफ चला जाता है। जब तक परमात्मज्ञान होगा नहीं तब तक इसका माया की तरफ जाना रुकेगा नहीं क्योंकि इसका रूप ही टेढ़ा है। जितनी भी देर तक इसे दबा कर रखो ध्यानादि-काल में, सत्संग में, विचार-काल में, तब तक तो लगता है कि ठीक हो गया, लोग कहते हैं 'सत्संग के समय तो बात ठीक से समझ में आती है लेकिन फिर जहाँ व्यवहार में गए तो सब गड़बड़ हो जाता है।' इसमें घबराने की बात नहीं है; हमारा मन है ही वक्राकार, आत्मा की तरफ जाता है, फिर थोड़ी देर में ही मुड़कर माया की ओर चला जाता है, जहाँ से आया है। मन हमेशा ही हमें धोखा देता है। पुराने लोग कहते थे कि यह जिस पत्तल में खाता है उसी में छेद करता है। मन हमसे ही सत्ता पाता है, हमारे कारण ही सब कुछ कर पाता है और हमारे साथ ही धोखा करता है। नया संवत्सर शुरु होने पर हर एक आदमी सोचता है 'इस साल मैं यह काम नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करूँगा।' विद्यार्थियों का नया संवत्सर शुरु होता है तो वे सोचते हैं 'गए साल इतना अच्छा नतीजा आया नहीं, सालभर पढ़े नहीं, इस साल तो शुरू से ही पढ़ेंगे।' दो-चार दिन पढ़ते भी हैं। सभी यथाशक्ति दो-चार दिन नियम रखते भी हैं। चार दिन ठीक रख कर फिर गलत तरफ मुड़ जाते हैं। क्यों? जिस मन ने हमें पहले यह दिखाया कि अब हम गलती नहीं करेंगे वही मन पलटकर कहने लगता है 'अरे! यह गलती किए बिना आज तो काम चला लो, कल फिर से अपने ढर्रे पर आ जायेंगे।' जिस मुझपर यह बैठा है, उसी मुझको धोखा देता है।

कितना धोखा देता है? बहुत साल पहले इलाहाबाद कुम्भ में हम कहीं जा रहे थे, रास्ते में हमें एक डॉक्टर साहब दिखाई दिए। मेलाक्षेत्र में स्वस्थता रखने के लिए सरकार की तरफ से नियुक्त थे। वहाँ सड़क पर खड़े चाट पकौड़ी खा रहे थे। हमने कहा 'तुमने सब जगह इश्तिहार लगा रखा है कि बाजार की खुली चीज़ों को मत खाओ, बीमार पड़ोगे और खुद खा रहे हो!' कहने लगे 'जी, वह तो सरकारी काम है।' निश्चय है कि नहीं खाना चाहिए पर मन कहता है कि कुछ नहीं होगा। हमें पता है कि हमारे पेट में अम्ल-पित्त है, हम यह चाट खायेंगे तो नुकसान करेगी। लेकिन मन क्या कहता है? 'अभी तो बहुत दिनों से तबीयत ठीक ही चल रही है, खा लो, क्या फर्क पड़ता है।' खाने के बाद रात में परेशानी होती है, जी घबराता है। तब मन क्या कहता है? 'क्यों खाया?' अरे, तेरे कहने से ही तो खाया था। दुनिया टोके सो टोके, तू तो मत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

टोक! लेकिन मन कहता है 'मेरा तो काम ही है कि जिस पत्तल पर बैठूँगा उसी में छेद करूँगा। तेरे आश्रय रहता हूँ, तुझे ही दुःखी करूँगा।'

जडतनु, बार-बार समझाने पर भी जो अपने लाभ को न समझे उसे कहते हैं 'यह तो जड आदमी है।' जिस प्रकार से दीवाल के सामने खड़े होकर तुम दीवाल को कितना भी समझाओ, दीवाल नहीं समझती वैसे ही जो जड बुद्धिवाला आदमी होता है, उसे सब कुछ कह लो, कुछ भी समझा लो, फिर अन्त में वही बात कहेगा जो पहले कह रहा था। कोई युक्ति नहीं बताता कि तुम्हारी बात में गलती है, लेकिन कहेगा 'मुझे यही जँचता है।' इसी प्रकार से मन को तरह-तरह से समझाया जाता है कि अनादि काल से तू इन विकारों वाला बना रहा, तुझे क्या मिला? फिर भी यह अपने पुराने ढंग से ही राग-द्वेष-ग्रस्त रहता है। अतः मन जडतनु है। आत्मतत्त्व की सेवा करता है अर्थात् आत्मतत्त्व के श्रवण-मनन की तरफ अपनी शक्ति को लगाता है, तब कल्याण पाता है। चरणों का काम होता है चलना, परमात्मा की प्राप्ति के लिए साधन है श्रवण और मनन, सुनना और सुनी बात को पूरी तरह से विचार करके अपने जीवन के साथ उसे सम्बद्ध करना। जब तक सुनते हैं, तब तक लगता है कि यह शास्त्र की बात है। परन्तु जब विचारपूर्वक, युक्तिपूर्वक सोच लेते हैं, फिर तब वह 'मेरी बात' हो जाती है। श्रवण के द्वारा शास्त्र की बात का पता लगता है। मनन के द्वारा वह अपने जीवन से सम्बद्ध हो जाती है, शास्त्र की बात मेरी बात हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाती है। श्रवण और मनन इन दोनों चरणों की जो सेवा करता है, वह मन उत्तम हो जाता है अर्थात् परमात्मा को ग्रहण करने के योग्य बन जाता है, यही उसकी उन्नतभाव की प्राप्ति है।

आत्मतत्त्व में सुलभतर कृपा है तभी मन उसके श्रवण-मनन में तत्पर हो तो आत्मस्थितिमें दृढतर होता जाता है। मन में अनादि काल से पड़े संस्कार हटना आवश्यक हों तो आत्मदर्शन असम्भव हो जाय क्योंकि असंख्य संस्कार सीमित प्रयास से हटते नहीं एवं जीवनक्रम में नये संस्कार पड़ते ही हैं। जैसे पुरातन-नवीन अँधेरे में भेदभाव किये बिना प्रकाश अँधेरा मिटाता है, वैसे आत्मदर्शन मूलाज्ञान हटाता है। जितने समय में दो सेकेंड का अंधकार हटता है, उतने समय में ही गुफा का अनादि अंधकार भी दूर हो जाता है। इसी प्रकार अनादि काल से बहिर्मुख हुए हमारे मन की वृत्ति जैसे ही परमात्मा की तरफ जाती है वैसे ही उसे ग्रहण करने लगती है। जैसे प्रकाश का अनुग्रह है, प्रकाश की दया है कि चाहे जितना पुराना अँधेरा हो उसे तुरन्त नष्ट कर देता है, इसी प्रकार आत्मरूप परमशिव की कृपा है कि जैसे ही उसकी तरफ अंत:करण जाता है, उसके अन्दर चाहे जितने पुराने संस्कार पड़े हुए हैं, सब नष्ट हो जाते हैं।

एक बार देवता और दानवों का संघर्ष हुआ। उस समय बलि दानवों के राजा थे। बलि को शुक्र ने बताया था 'तुम्हारे पिता को देवताओं ने मारा, उसके पहले तुम्हारे परदादा को भी मारा।' विरोचन, हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष सभी को मारा था। शुक्राचार्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नीतिशास्त्र के मर्मज्ञ हैं, इतिहास से सीख ग्रहण करना समझते हैं। उन्होंने समझाया कि पुनः पुनः अमृतपान से देवता सशक्त होते जाते हैं, अत: दैत्यों से पीडित होकर भी पराजित नहीं होते। उन्हें अमृतप्राप्ति न हो सके तभी वे हराये जा सकते हैं। बली ने ऐसी व्यवस्था की कि स्वर्ग से अमृतप्राप्ति के सारे मार्ग दैत्यों ने घेर लिये ताकि युद्ध करते देवता अमृत से वंचित हों। कुछ दिनों के लिये अमृत तो देवताओं के पास था, तब तक लड़ने के बाद जब अमृत-लाभ बन्द हुआ तब वे हारने लगे! देवताओं ने भगवान् विष्णु से प्रार्थना की। उन्होंने कहा 'हम लोग तो कुछ कर नहीं सकते, क्योंकि हम जिसके ज़ोर से लड़ते थे वह हमारे पास नहीं। अब आप ही मदद करें।' भगवान् विष्णु गरुड पर बैठकर आए। भगवान् दैत्यों को मारते थे और गरुड उन्हें निगल जाते थे! भगवान् विष्णु ने सुदर्शन चक्र के द्वारा दैत्यों को काटना शुरू किया तो दैत्य घबराए। बलि का एक पुत्र था कालनेमि, उसके सौ सिर थे। बली ने कहा 'चक्र के द्वारा विष्णु दैत्यों को काटते हैं और गरुड खा जाता है। तुम जाओ, यह तुम्हें खा नहीं सकेगा और तुम्हारे एक-दो सिर कटेंगे भी तो कुछ नुकसान होगा नहीं।' कालनेमि अपनी भयंकर गदा लेकर गरुड और भगवान् विष्णु की तरफ दौड़ा। भगवान् विष्णु ने पहले तो चक्र के द्वारा उसकी गदा को काट दिया फिर उसके हाथों को काट दिया। उसके हाथ और गदा कट गए तो वह आक्रमण करने के लायक रहा नहीं। चक्र के द्वारा उसके एक-एक सिर को काटने लग गए। धीरे-धीरे सारे सिरों को काट दिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारे सिर कटने पर बिना सिर के, बिना हाथों के धड़ से ही वह युद्ध करता रहा! राजस्थान में बहुत से युद्धों में सिर कटने के बाद धड़ वही लड़ता रहा ऐसा प्रसिद्ध है। अन्त में गरुड ने जाकर अपने पंखों से प्रलयानल बहाकर उसके उस शरीर को गिरा दिया, तब उसका लड़ना बन्द हुआ। उसे मार कर भगवान् विष्णु फिर अन्तर्धान हो गए।

विचार करो, देवताओं और दानवों का संघर्ष ऋग्वेद से लेकर पुराणों तक सब जगह आता है। यह पूर्व काल के देव-दानवों के संघर्ष को भी बतलाता है और प्रत्येक जीव के अंतःकरण में दैवी भाव और आसुरी भाव के संघर्ष को भी बतलाता है। दानव भावनाओं को दैवी भावनाएँ कैसे नष्ट कर सकती हैं? दैवी भावनाओं को अमृत रस का स्वाद मिलता रहे तब तक देवता प्रबल रहते हैं और वह नहीं मिले तो प्रबल नहीं रहते। अगर शुभ कर्म के बाद हमें सुख मिल जाता है, तब तो हमारी दैवी भावना प्रबल होती है। यदि हमने शुभ कर्म किया और तदनुकूल फल नहीं हुआ तो हमारी दैवी भावना बलवान् नहीं बन पाती। आधारभूत ढंग से मनुष्य अदृष्ट की अपेक्षा दृष्ट को ज्यादा महत्त्व देता है। जो पुण्य अपूर्व उत्पन्न होता है वह अदृष्ट है, उसका फल तुरन्त दीखता नहीं। यदि हमने शुभ कर्म किया और उसके तुरन्त बाद विपरीत फल मिल गया तो हमें लगता है कि हमारा किया हुआ व्यर्थ गया। व्यर्थ जाता नहीं है, परन्तु फल देखने में नहीं आया तो हम उस पर आश्वस्त नहीं रह पाते। शुक्राचार्य ने बताया कि शुभ कर्म करने पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अच्छा फल नहीं मिलेगा तो दैवी भावनाएँ अपने आप हारने लगेंगी, उनको सहायता नहीं मिलेगी। यह दैवी भावनाओं की कमजोरी है। देवताओं ने विष्णु भगवान् अर्थात् सगुण ईश्वर की उपासना की। अपनी सामर्थ्य से नहीं कर पाए तब परमेश्वर का सहारा लिया।

हमारा मन कालनेमि है। 'नेमि' संस्कृत में कहते हैं धुरी को। काल की नेमि किसे कहते हैं? मन को। मन के रहते ही काल का पता लगता है, बिना मन के काल का पता नहीं लगता। गहरी नींद में सो जाओ, कितना काल बीत गया कुछ पता नहीं लगता। मन रहता है, तो काल का पता रहता है, मन नहीं रहता तो काल का पता नहीं चलता। इसलिए काल की नेमि मन है। इसे मारने के लिए गरुड के ऊपर भगवान् विष्णु आते हैं। गरुड के पंखों में प्रलय-वायु रहती है। प्राणायाम गरुड है, उसके अन्दर प्रलयानल रहता है। प्राणायाम के अभ्यास से हम मन के विकारों को नियन्त्रित कर सकते हैं। भगवान् विष्णु का जो 'सुदर्शन' अर्थात् अच्छी प्रकार से दीखने वाला सच्चिदानन्दरूप, वही चक्र है। यदि हम प्राणायाम-सम्बन्धी साधनाओं को करते हुए मन के ऊपर नियन्त्रण करें एवं सगुण ब्रह्म का दर्शन पाने का प्रयास करें, उनके अन्दर मन को लगाएँ, तब हम कालनेमि की गदा को काट सकते हैं। कालनेमि की गदा क्या है? वासनाएँ ही उसकी भयंकर गदा है। प्राणायाम और परमेश्वर की, सगुण ब्रह्म की उपासना इन दोनों की सहायता से ही हम वासना-जाल को काट पाते हैं। तब इन्द्रियों की गति में मंदीभाव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आ जाता है और सगुण ब्रह्म के ध्यान को ज्यादा-ज्यादा करें तो पहलेवाली वासनाएँ नष्ट होने लग जाती हैं। मन सौ सिर वाला है अर्थात् उसमें अनेक तरह की वासनाएँ हैं। वह अनेक आकारों को ग्रहण करता चला जाता है। सब सिरों को काट देने पर बिना सिर के भी यह मन लड़ता रहता है। सिर को काटना द्वैतभाव को खत्म करना है, उसके बाद छायारूप से मन रहता है। उसको जब प्राणायाम के अभ्यास से नई खुराक मिलना बन्द हो जाती है, तब वह गिरा दिया जाता है। वह गिर गया तो केवल निर्गुण निराकार प्रत्यगात्मा से अभिन्न परमात्मा रह गया।

इस प्रकार वक्राकार, कलंकी, जडतनु भी मन शिवचरणों की सेवा से श्रेष्ठभाव पा सकता है। भगवान् के विचरण के लिये सर्वथा योग्य न सही पर यथासम्भव उनके अनुकूल इसे तैयार करना भक्त का कर्त्तव्य है। परमेश्वर-प्रेम ही इसमें प्रेरक है कि साधक मन से असुरवृत्तियाँ हटाकर दैववृत्तियाँ बढ़ायें। यद्यपि पूर्ण शुद्धि जीवयत्न से साध्य नहीं तथापि यथाशक्ति शुद्ध किये मन में परमेश्वर का आविर्भाव होता है।

❖

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन : चौदहवाँ

(१२.४.९८)

सामवेद की कौथुमीशाखा की छान्दोग्य उपनिषद् के तीसरे अध्याय के चतुर्दश खण्ड के द्वितीय मन्त्र का विचार चल रहा है। मूल मन्त्र है—

मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसंकल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽ-वाक्यनादरः।।२।।

परमात्मा की उपासना के प्रतीकों को छोड़कर साक्षात् सगुण ब्रह्म की उपासना के प्रकार का प्रतिपादन कर रहे थे। वह परमात्मा किस प्रकार से समझा जाए? कहा कि वह मनोमय है। जिस प्रकार से हमारे मन की वृत्ति है, वैसे ही उसकी भी वृत्ति है, अर्थात् जैसे हमारे मन में दया इत्यादि सद्भाव हैं, वैसे ही उसकी भी मायावृत्ति के हैं। चूँकि हमारा मन भी उसकी माया का एक हिस्सा है, इसलिये वहाँ भी परमेश्वर नृत्य करते हैं। कल बतलाया था कि हमारा मन चाहे जैसा ऊबड़-खाबड़ हो, फिर भी वे तो अपनी करुणा से उसमें आने के लिए तैयार हैं। जिस प्रकार से चाहे जैसा ऊबड़-खाबड़ पत्थर हो, सूर्य की रोशनी तो उस पर भी आने को तैयार है। परन्तु उसका पूरा लाभ उठाने के लिये तुमको पत्थर को चिकना, चमकीला बनाना पड़ेगा ताकि वह सूर्य की किरणों से भली प्रकार से प्रकाशित होकर मानो सूर्य का ही ज्ञान करा देवे। मन की चाहे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसी वृत्तियाँ हों, परमात्मा तो सर्वज्ञ वैसा ही है। इसीलिये कहा कि परमात्मा सर्वगन्ध है, सारे गन्धों को परमात्मा देता है, सारे गन्धरूप वही है। यहाँ सर्वगन्ध कहा; दूसरी तरफ, गीता में भगवान् अपनी विभूति बतलाते हुए कहते हैं कि पृथ्वी में 'पुण्य गन्ध' मैं हूँ। अर्थात् पृथ्वी, जैसे फूल के अन्दर होनेवाली सुगन्धि मेरा रूप है। सर्वगन्ध कहने पर वह सुगन्धि भी है, दुर्गन्धि भी है। सुगन्ध का प्रकाशक कौन? परमेश्वर। और दुर्गन्ध का प्रकाशक कौन? परमेश्वर। दुर्गन्ध का भी ऐसा ही ज्ञान होता है, जैसा सुगन्धि का ज्ञान होता है। इसी प्रकार यहाँ कहा सर्वकाम, सारी कामनाओं का प्रकाशक वही है। इसीलिए अच्छी कामनाएँ, बुरी कामनाएँ सब उसी का रूप है। गीता में लिखा है कि जो धर्म के विरुद्ध नहीं हैं ऐसी कामनायें मैं हूँ। इसी प्रकार यहाँ कहा सर्वरस और अन्यत्र बतलाया कि जो कुछ सात्त्विक रस है वह मैं हूँ।

दोनों में विरोध-प्रतीति होती है, परन्तु विरोध है नहीं। वहाँ भगवान् अपनी विभूति कह रहे हैं, ऐश्वर्य कह रहे हैं, अर्थात् जिनके अन्दर परमेश्वर की ईश्वरता प्रकट होती है और यहाँ अपनी सर्वरूप-उपासना का प्रतिपादन कर रहे हैं। इसलिए वस्तुतः दोनों में विरोध नहीं है। वह सर्वरूप तो है, परन्तु उसका ईश्वरभाव प्रकट वहाँ होता है जहाँ सुगन्ध है, धर्म से अविरुद्ध काम है। ठीक जैसे सूर्य का प्रकाश ऊबड़-खाबड़ पत्थर पर और चिकने ग्रेनाइट पत्थर पर पड़ता है; ग्रेनाइट पत्थर पर तो वैसा ही चमकदार दीखता है जैसा सूर्यप्रकाश है, उस पत्थर पर मैला नहीं दीखता। सर्वत्र उपस्थित होने पर भी सूर्य की चमक, सूर्य का वैभव वहाँ प्रकट होता है। इसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकार यद्यपि हमारे मन के अन्दर होनेवाले ज्ञान और हमारी इन्द्रियों के अन्दर होनेवाले सारे ज्ञान उसी के प्रकाश से प्रकाशित हैं, किंचिन्मात्र भी अतिरिक्त नहीं हैं, तथापि उसका जो आनन्दघनरूप है, व्यापक, अनन्त रूप है, वह तभी प्रकट होता है, जब मन तदनुकूल हो जाये। अभी हमारा मन अत्यन्त अस्थिर है।

आचार्य शंकर लिखते हैं कि हमारा मन कैसा है 'सदा मोहाटव्याम्' हमेशा ही मोह का जो जंगल है, उसके अन्दर ही घूमता रहता है। हम हमेशा अज्ञान के अन्दर ही घूमते रहते हैं, एक अज्ञान से दूसरे अज्ञान में, दूसरे से तीसरे अज्ञान में जाते हुए उसी को ज्ञान समझते रहते हैं। रस्सी में सर्प देखा तो उसे सच्चा समझा, जलधारा देखी तो सोचा वह सच्ची है, फिर दण्ड देखा तो सोचा वही सच्चा है, माला देखी तो सोचा वह सच्ची है। परन्तु सच्ची रस्सी को कहीं नहीं देख पाते! जब हम छोटे बच्चे थे, खिलौनों से खेलते थे तब सोचते थे कि खिलौना ही सब कुछ है। और किसी चीज़ से बच्चों को मतलब नहीं है, खिलौनों से ही मतलब रहता है। बड़े लोग डाँटते रहते हैं कि पढ़ो, तो बच्चों की समझ में ही नहीं आता कि पढ़ने का टण्टा काहे के लिये! गुल्ली-डण्डा खेलते हैं, मौज लेते हैं। पहले जो समझता था कि खिलौनों में सुख है, वह थोड़ा बड़ा हुआ तो उसे दोस्त चाहिये, अब खिलौना नहीं चाहिये, समझता है कि दूसरे बच्चों के साथ खेलें तो सुख होवे। उस उम्र के बच्चों को दूसरे बच्चे मिल जायें तो आनन्द से खेलते रहते हैं, न मिलें तो उनका मन नहीं लगता। ज़रा और बड़ा हो गया, ब्याह हो गया तो अब दोस्तों की तरफ नहीं, अपनी पत्नी की तरफ आकृष्ट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो गया। आगे, बच्चे हो गए तो उनकी तरफ आकृष्ट हो गया। अब पहले की चीज़ों को भूल गया, बच्चों को डाँटता रहता है 'क्या खिलौनों से खेलते रहते हो! भूल गया कि वह भी खिलौनों से खेलता रहता था। भूल गया कि दोस्तों में पड़ा रहता था, पत्नी के साथ घूमने जाने की सोचता रहता था। पहले अज्ञान था यह हर बार पता लग गया, लेकिन अगले अनुभव को ठीक समझ कर फिर उसी को पकड़ता है! जो सुख की आशा की डालियाँ हैं, उन्हीं पर कूदता रहता है। एक शाखा से दूसरी शाखा पर कूदने में इसे देर नहीं लगती। स्वयं स्वतन्त्र है, जो मर्जी सो करता है।

यह नियन्त्रण में कैसे आए? आचार्य कहते हैं 'मुझसे तो इसका नियन्त्रण नहीं हो पाता, बहुत कोशिश की। इसलिए हे कपालिन्! आप ही नियन्त्रित करें।' भगवान् शंकर को 'कपालिन्' कहते हैं, कपाल जिनका हो वह कपाली। हमारे संस्कार उद्बुद्ध होने के लिए गोलक में रहते हैं। जैसे स्थूल देह की आँखें गोलक हैं, इनमें देखनेवाली शक्ति 'चक्षु इन्द्रिय' अलग है, इसी प्रकार स्थूल कान तो श्रोत्र इन्द्रिय का गोलक है, यहाँ श्रोत्रिय इन्द्रिय रहती-सुनती है। गोलक-इन्द्रिय का अन्तर पता कैसे चलता है? कभी-कभी ये आँख-कान ऐसे ही बने रहते हैं, बस, दीखना-सुनना बन्द हो जाता है। तब समझ आता है कि देखने-सुनने की शक्ति गोलक से अलग है। डॉक्टर गोलक का ही इलाज कर सकते हैं, देखने-सुनने की शक्ति का इलाज नहीं कर सकते; क्योंकि वे सूक्ष्म हैं, इन्द्रियों का विषय नहीं हैं। इसी प्रकार चिन्तन करने की शक्ति तो मन की परन्तु उसका गोलक हमारा कपाल है। जो कुछ भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुभव होते हैं, वे सारे आकर कपाल में अंकित हो जाते हैं। जैसे कम्प्यूटर के अन्दर सूचना अंकित हो जाती है, जब चाहो तब देख सकते हो, इसी प्रकार हमारे अनुभवों के संस्कार बनते रहते हैं और जब हम चाहते हैं तब उन्हें प्रकट कर सकते हैं।

जैसे कम्प्यूटर या उसी तरह के दूरभाष के दुरुपयोग को रोकने के लिये सूचनाओं या सेवाओं पर संख्यामात्र से 'ताला' लगा लेते हो, वैसे हमारे संस्कारों पर देवताओं का ताला है। कम्प्यूटर के अन्दर कोई सूचना भर दी और संख्या लिखकर ताला लगा दिया। जिसको उस संख्या का पता है, वह तो देख सकता है कि क्या लिखा है, परन्तु दूसरा व्यक्ति यदि वही बात जानना चाहे तो नहीं जान सकता। पहले दूरभाष द्वारा जिसे संख्या पता होती थी वह संख्या घुमाकर सम्बन्ध बना लेता था, बात कर लेता था। चाहे तो विदेश भी बात कर लेता था। अब दूरभाषवालों ने उस यन्त्र के अन्दर एक ताला बना लिया है, किसी संख्या द्वारा यन्त्र की सेवा बन्द की जा सकती है। जैसे दिल्ली में तो वह सम्पर्क कर लेगा, परन्तु दिल्ली से बाहर के लिये संख्या घुमाओ तो बात नहीं होगी। इसी प्रकार हमारे मन के अधिष्ठाता देवताओं ने हमारे कपाल के अन्दर जितनी भी खबरे हैं, सूचनायें हैं, उन पर एक ताला लगा रखा है! जब हमारा पुण्य प्रारब्ध होता है, तब उस ताले को खोल देते हैं तो हमें जो भी खबर चाहिए हम ले सकते हैं और जब हमारा पुण्य प्रारब्ध नहीं होता है, तब वह ताला बन्द हो जाता है। अब याद करते रहें, सिर खुजाते रहें, घण्टा-भर निकल जाये, किन्तु वह बात याद आती नहीं। क्यों नहीं आती? क्योंकि वह बन्द कर दी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गई। है तो वहीं, कहीं गई नहीं है, जैसे संगणक से, कम्प्यूटर से सूचना हटी नहीं, केवल ताले में है। भगवान् कपाल के मालिक हैं। सब कपाल उनके हैं। जितने भी संस्कार भरे हुए हैं, उन सबके मालिक शिव हैं, सब की चाभी उन्हीं के पास है। यह ठीक है कि मैं निरन्तर मोहाटवी में विचरण करता हूँ, आशा की डालियों पर कूदता हूँ, परन्तु जिन संस्कारों से यह सब करता हूँ उन संस्कारों के मालिक तो शिव हैं। चाभी उन्हीं के पास है।

शिव भिक्षु हैं। सब चीज़ों में मौजूद व्यापक होने पर भी उन्होंने नियम कर लिया है 'मैं भिक्षु हूँ, भिखारी हूँ'। परमेश्वर की विचित्र माया है! सारे संसार को तो देते रहते हैं पर स्वयं हाथ में पात्र लेकर भिक्षा करते हैं। काशी में भगवान् शिव की स्वर्णमूर्ति एक दिन अन्नपूर्णा के मन्दिर में जाती है। उनका भिक्षापात्र खुला है, देवी भगवती उनको अन्न-दान कर रही हैं, खिचड़ी दे रही हैं। हैं तो आप विभु, सब कुछ आपका है, सब कुछ आप में है और आपके बिना कुछ नहीं, ऐसे सर्वाधिकारी होकर भी भिक्षु क्यों बने? भगवान् का अभिप्राय है : तुम यदि मेरी इच्छा करोगे तो मैं तुम्हारे सामने आकर सारे कार्यों को सिद्ध कर दूँगा पर यदि तुम मेरी इच्छा नहीं करोगे, अन्य चीज़ों की इच्छा करोगे तो मैं केवल तुम्हें वही चीज़ें देता रहूँगा, अपने आपको नहीं दूँगा। जब तक अन्य इच्छाओं की निवृत्ति नहीं हो जाती, एकमात्र परमात्मा की इच्छा नहीं रह जाती, तब तक उसकी प्राप्ति भी नहीं होती। परमात्मा निरन्तर चाहता है कि तुम उससे सब कुछ ले लो, परन्तु एक अंश में वह अपने आपको भिक्षु मानता है कि जब भक्त मुझे चाहेगा तब मैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने आपको इसे दूँगा। तुम्हारी इच्छा को, तुम्हारे प्रेम को जब उसके भिक्षा-पात्र में डालोगे तब वे तुम्हारा बाकी सब काम कर देंगे। इसलिए आचार्य ने कहा 'मैं जानता हूँ कि आप कपाली भी हैं और भिक्षु भी। इसलिये कह रहा है कि 'मन मेरे वश में नहीं है, आप इसे प्रेमरूपी, भक्तिरूपी रस्सी से मजबूती से बाँध लीजिये, जिससे यह इधर-उधर न जाये। इसको बाँधकर अपने नियन्त्रण में लें। मैं नहीं चाहता कि मैं इसका नियन्त्रण करूँ।' जब अपनी सारी इच्छाओं की निवृत्ति करते हैं, इच्छामात्र को परमेश्वर के अर्पण कर देते हैं, तब परमेश्वर ही सामर्थ्यवान् है, वही इसे बाँधता है। हम बाँधने में समर्थ नहीं होते, परन्तु बाँधता वह तभी है जब हम उससे यह प्रार्थना करते हैं।

अभी हम कहते जरूर हैं कि हम परमात्मा को चाहते हैं, परन्तु परमात्मा की अपेक्षा अनात्म चीज़ों को हम ज्यादा चाहते हैं, क्योंकि अनात्म चीज़ें हमारे सिर के ऊपर प्रतिक्षण खड़ी रहती हैं। वह अपनी माँग निरन्तर करती रहती हैं। सवेरे उठे, नल में पानी नहीं आया तो नहायेंगे कैसे? नलके में पानी नहीं आये तो छटपटाहट होने लगती है; पम्प चलाते हैं तो बिजली नहीं है। इस प्रकार एक-के-बाद एक आवश्यकताएँ हमारे सिर पर आती रहती हैं जिन्हें निपटाते रह जाते हैं। ये इच्छाएँ निरन्तर हमारा ध्यान खींचती रहती हैं। परमेश्वर के काम को निपटाने की बात मन में आना तो बहुत दूर है। लोक में भी दर्जी को कपड़ा सीने के लिए देकर छोड़ दो तो तुम्हारा काम टलता रहेगा, लेकिन सामने बैठकर सिलवा लो तो जल्दी तैयार हो जाता है। यदि तुमने रोज जा कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देखा और सिर पर खड़े रहते हो तब तो कपड़ा समय पर मिल जाता है। यह मनुष्य का स्वभाव है कि जो सिर पर आकर खड़ा हो जाये वह काम समय पर कर लेता है। संसार के जितने पदार्थ हैं, वे रात-दिन तुम्हारे सिर पर खड़े रहते हैं, लेकिन परमेश्वर कभी खड़ा नहीं रहता! वह कभी नहीं कहता 'पहले मेरा काम करो।' इसलिए अनादिकाल से अनन्त जन्म हमारे बीत गए इन अनात्म पदार्थों का काम करते हुए, परन्तु आज भी यही स्थिति है कि इनसे निपट लेवें तब परमेश्वर की ओर चलें! जब हम 'संसार का काम पूरा होने का नहीं' यह समझ लेते हैं तब सारी कामनाओं को छोड़ कर केवल परमेश्वर को चाहते हैं। विषयों के प्रति हममें कोई कामुकता नहीं रहती है, वे मिलें या न मिलें यह उपेक्षा होती है, तब परमेश्वर प्रकट होते हैं। उन्हीं से प्रार्थना है कि हमारे अंतःकरण को अपने हाथ में कर लें।

मन स्वरूप से साफ है; क्योंकि सत्त्वगुण से बना हुआ है। जैसे पानी हमेशा शुद्ध ही रहेगा। पानी के परमाणुओं के बीच में कोई गंदगी आ जाये तो भी पानी का परमाणु तो पानी का ही रहेगा। जल के परमाणु शुद्ध ही हैं। हम कहते हैं 'पानी गंदा हो गया' तो हमारा मतलब है कि पानी के परमाणुओं के बीच में कोई दूसरी चीज़ है। कोई कीड़ा या कोई कचरा पानी के परमाणु में तो नहीं घुस सकता! इसी प्रकार हमारा अंतःकरण भी जल की तरह अत्यन्त शुद्ध है, सत्त्वगुणी है। ऐसा होने पर भी रजोगुण और तमोगुण उसके बीच में फँसे हुए हैं, इसलिए वह इस संसार की ओर हमें ले जाता रहता है। अतः वहाँ परमात्मा का प्रतिबिम्ब पड़ते हुए भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परमात्मा प्रकाशित होता नहीं। रजोगुण और तमोगुण जब हट जाते हैं, तब वह प्रकाशित हो जाता है। पहले तो इसमें कचरा इतना ज्यादा है कि मन में ख्याल भी नहीं आता कि अशुद्ध है! इसलिए पहला सोपान तो यह होता है कि उसके अन्दर होनेवाले कुछ रजोगुण के कणों को हम काम करने दें।

ऐसे समझ लो : श्रावण के महीने में गंगाजी के किनारे से बाल्टी भरकर हम लोग लाते थे, उसके अन्दर बिलकुल मटमैलापन होता था। फिटकरी का खण्ड दो-तीन बार उसमें घुमाकर छोड़ देते थे, दो घण्टे बाद जितनी धूल थी वह सब नीचे जम जाती थी। उसमें पहले ही बालु, गंदगी भरी हुई थी और तुमने उसमें फिटकरी डाली! फिटकरी कोई खाने की चीज़ तो है नहीं, वह भी गन्दगी ही है। परन्तु दो घण्टे बाद देखो तो पानी साफ हो जाता है। फिटकरी ने क्या किया? वहाँ जितना भी मैल था उसे फाड़ कर बैठा दिया और खुद भी बैठ गई। यद्यपि फिटकरी भी मिट्टी की तरह दोष ही है, तथापि उसमें यह गुण है कि बाकी दोषों को बैठाकर खुद भी बैठ जाती है। ठीक इसी प्रकार रजोगुण है तो दोष ही, लेकिन कोई रजोगुण ऐसा होता है जो बाकी दोषों को बैठा कर खुद भी बैठ जाता है। शुभ कर्म ऐसे ही रजोगुण हैं।

लोग पूछते हैं कि कामनापूर्वक कर्म करने से क्या फायदा? फायदा बताते हैं : पहले तुम कामना से कर्म करोगे परन्तु शुभ कर्म करोगे तो उस कामना की रज को भी बैठा देगा और स्वयं अपनी रज को भी बैठा देगा! इसलिए वेद ने काम्य कर्मों को भी करने के लिये कहा। यदि मनुष्य उन काम्य कर्मों को भी करना प्रारम्भ कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दे तब तो वह फिटकरी का काम करते हुए उसे बैठा देगा। यदि कहो कि निष्काम कर्म ही करना है तो अभी मन में कामना भरी होने से तुम निष्काम कर पाओगे नहीं और सकाम कर्म तुम्हें करना नहीं है। नतीजा होगा कि मन शुद्ध होने का तरीका ही नहीं मिलेगा।

शास्त्रकार बताते हैं कि क्यों मेरा मन परमात्मा के अधीन नहीं हुआ। कारण है कि मैंने इस प्रयोजन वाले सरल काम भी किये नहीं। शिवापराधक्षमापन स्तोत्र में बताया है कि हमने क्या गलतियाँ कीं। प्रत्यूष अर्थात् सूर्योदय से दो घण्टे पहले जब तक तारे भली प्रकार से आकाश में प्रकाशित हो रहे हैं, तब तक स्नान करना चाहिए। तारों के रहते जो स्नान किया जाता है उससे सोने की थाली में मोती भरकर दान देने के बराबर पुण्य होता है। सोने की थाली भी मुश्किल से दो-चार के पास होगी। फिर मोती भरी थाली एक-आध के पास होगी। इतना दान करना सबके लिये बड़ा मुश्किल है, परन्तु शास्त्र सरल उपाय बताता है कि तारों के रहते जो स्नान कर लेता है, उसको सोने की थाली में मोती भरकर दान करने का पुण्य होता है। यह भी काम्य कर्म हो गया यदि कामना है कि इतना पुण्य हो जाये। अगर पौ फट गई, लालिमा आ गई, परन्तु सूर्य का उदय नहीं हुआ तब तक नहा लो तो चाँदी की थाली में चावल भरकर दान करने का पुण्य होगा। यह पहले की अपेक्षा कम पुण्य का है। रोज चाँदी की थाली में चावल दान करना जिनके पास थालियाँ हैं, उनके लिये भी बहुत मुश्किल है! जिनके पास चालीस थाल होंगे तो चालीस दिन दे पायेंगे। सूर्य उदय होने के बाद नहाते हो तो लोहे की थाली में कोयले भरके दान करने का फल होगा। इन पुण्यों की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कामनाओं से प्रवृत्त होगे तो धीरे-धीरे अन्त में निष्कामता बन जायेगी। ऐसा करके देख लेना, आठ साल तक स्नान करना। उसके बाद एक-आध दिन बुखार आ जाये तो डॉक्टर कहेगा 'स्नान नहीं करना, आराम करो।' तुम सोचना कि जैसे पहले आठ बजे उठते थे, डॉक्टर ने मना किया है अत: नहाना नहीं है, तो आज आठ बजे तक सोयेंगे। पर आदत पड़ी हुई है चार बजे उठने की तो आँखें चार बजे खुल जायेंगी, सोने नहीं देंगी और मन में आयेगा कि 'बुखार तो उतर गया है, दो लोटा पानी डाल लें'। विचार करो कि आज जो तुम स्नान की तरफ प्रवृत्ति कर रहे हो, चार बजे जग रहे हो, यह किसी कामना से प्रवृत्त होकर नहीं कर रहे हो। शुरू भले ही किया तुमने काम्य कर्म, पर बाद में तुम्हारा अभ्यास हो गया तो स्वत: ही वह निष्काम हो गया।

जैसे मैं प्रत्यूष काल में नियमत: नहाया नहीं वैसे भगवान् शंकर को स्नान कराने के लिये जिस विधि से गंगाजी से जल लाना चाहिये उस विधि से जल लाया नहीं। पहले-पहल नलके के पानी को भोजन के, पीने के काम में नहीं लेते थे लेकिन अब नलके के पानी से ही भगवान् शंकर का अभिषेक भी हो जाता है। शिवपूजा के लिये जल कैसे लाया जाये? गंगाजी में स्नान करने के बाद गंगाजी का दूध इत्यादि से पूजन करके, बाल्टी या लोटा भरकर के जब तक भगवान् के पास न पहुँच जाओ तब तक 'ॐ नमः शिवाय' यह जप करते हुये जाना चाहिये, रास्ते में गप्पें मारते हुए नहीं! जाकर भगवान् का अभिषेक किया जाता है। रास्ते में कोई गलत स्पर्श नहीं होना चाहिए। इस प्रकार से मैंने सकल विधि-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विधान के अनुसार गंगाजल लाकर आपका अभिषेक किया नहीं। न आपके लिए मैं पूजार्थ पुष्पादि संचित कर सका। पूजा के लिए नियम है कि पूजा में जो पत्र-पुष्प आदि सामग्री चढ़ाई जाती है, वह स्वयं तोड़ कर लानी चाहिए। आगमों में तो लिखा है कि उस फूल के पेड़ को भी स्वयं लगाना चाहिए। अगर खुद नहीं लगाया है तो घोर जंगल के अन्दर चले जाओ, जहाँ फूल-पत्ते किसी के हैं नहीं, वहाँ से तोड़कर लाने चाहिए। मैंने पौधे लगाये भी नहीं और फूल लेने के लिए कभी घने जंगल में गया नहीं। वहाँ जाता तभी अखण्ड बिल्वदल आदि योग्य वस्तु मिलती। आजकल फूलों के अन्दर कीड़े हों तो भी भगवान् पर चढ़ा देते हैं, भगवान् पर कीड़े भी रेंगने लगते हैं! कहें 'इसमें कीड़े हैं, मत चढ़ाओ' तो कहेंगे 'ये दुकानदार बड़े खराब होते हैं।' पूजा करने तुम आये हो या दुकानदार आया है? बिल्वपत्र 'वज्र' से रहित होवे, बीच में खण्डित न होवे। आजकल संख्या का जोर है। हम लोग तो मानते हैं कि चीज़ गुण वाली होनी चाहिये, आजकल लोग सोचते हैं संख्या होनी चाहिए। हमारे शास्त्रों में आहुति देने का विधान है और वह भी मृगमुद्रा से। बीच की दो अंगुलियों के बीच अँगूठा, यह मृगमुद्रा है। इसमें जितना तिल-चावल आता है, उसी की आहुति देने का विधान है, वह तिल-चावल इधर-उधर गिरना नहीं चाहिये। आजकल मुट्ठा भरकर डालेंगे! सब चीज़ों में संख्या की गिनती है, चीज़ों की गुणवत्ता की दृष्टि नहीं रही। खुद जंगल में जायें, तोड़कर जैसा शास्त्रों में बताया है तदनुकूल अखण्डित दल लावें, उसे वज्ररहित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करके चढ़ायें यह श्रेष्ठ है। परन्तु आज तो पचास बिल्व चढ़ायेंगे, वे जैसे भी होवें, वे भी नौकर लेकर आयेगा!

न मैं कभी आपके लिये बिल्वपत्र जंगल में जाकर लाया, न कभी मैंने आपको कमलों की माला चढ़ाई। कमलों की माला के पुष्प कहाँ से आने चाहिए? तालाब में जो कमल का फूल स्वभाव से खिल गया उसको लेकर आना है। उसी फूल की माला बनेगी। बाजार से लाओगे तो माला कैसी आयेगी? क्योंकि वे सूर्योदय से पहले तोड़कर लाते हैं, सारे फूल बंद होंगे, फिर सब बैठकर खोलेंगे। विकास तो कर लेते हैं, खोल तो लेते हैं, लेकिन स्वाभाविक नहीं होता। विकसित कमल के लिये तालाब में जाना पड़ेगा। हो सकता है एक ही फूल ला सको, दो ही ला सको। न मैंने आपके लिए चन्दन घिसा। भगवान् शंकर से प्रार्थना करते हैं कि मेरे इन अपराधों को आप क्षमा करें। क्योंकि आप महादेव शम्भु हैं, इसीलिए आपसे क्षमा-प्रार्थना करता हूँ। ये कर्म कामना से प्रयुक्त होकर किये जायें तो भी इनकी विशेषता है कि धीरे-धीरे कामनाओं को बैठा देते हैं। हमारी कामनायें मानो थक जाती हैं, तब सोचते हैं कि यह काम हमने पहले कर लिया होता तो आज हमारी यह स्थिति क्यों होती!

लोग पूछते हैं कि इस जन्म में मोक्ष होगा कि नहीं। मोक्ष अगर इस जन्म में नहीं हुआ तो आगे होगा इस बात का क्या निश्चय! परमेश्वर की तरफ अच्छी तरह से केवल एक बार ही जाना पड़ता है। भगवान् शंकर का नाम है त्रिपुरहर। तीन पुरों का हरण करते हैं। एक तो यह स्थूल पुर जो हमें सामने दीखता है, स्थूल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शरीर। दूसरा इसे चलाने वाला सूक्ष्म शरीर जिसमें मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, प्राण आदि हैं। तीसरा जो इनका कारण अज्ञान है, जिसके कारण हमने शरीरों को अपना स्वरूप मान रखा है, वह अज्ञान कारण-शरीर है। इन तीनों शरीरों को भगवान् शंकर नष्ट करते हैं। इसीलिए परमेश्वर से प्रार्थना करते हुए किसी ने कहा है कि मुझे यह शरीर मिला, इससे यह निश्चित है कि आपकी तरफ जाने का पहले कभी मैंने प्रयत्न किया नहीं। यह शरीर प्रादुर्भूत हुआ है, इसमें कोई सन्देह तो है नहीं। यह शरीर तुम्हें भी दीखता है और हमें भी दीखता है। शरीर जो प्रकट हुआ उससे यह अनुमान हो जाता है कि इससे पहले के जन्मों में मैंने कभी आपको नमस्कार नहीं किया, आपके सामने मैंने कभी अपने अहम् का त्याग नहीं किया। नमन का मतलब होता है, झुकना। अकड़ कर खड़ी रहने वाली चीज़ क्या है? अहम् ही ऐसी चीज़ है। अहम् को झुकाने पर ही नमन होता है, अहंकार को बचाकर रखोगे तो नमन नहीं होगा, नमन का दम्भ होगा।

एक बार हम काशी-विश्वनाथ में दर्शन करने गये थे। कोई सज्जन ऐसे कपड़े पहने हुये आये थे जो एक-दम जगमगा रहे थे। कोई वहाँ पानी गिराता है, कोई प्रसाद गिराता है। वे वहाँ आये तो वहाँ कीचड़-जैसा था। उनके मन में आया कि नमस्कार तो करना चाहिये पर दण्डवत् प्रणाम किया तो कपड़े खराब हो जायेंगे। उन्होंने चतुराई की कि थोड़े हाथ नीचे करके, थोड़ी कमर झुकाई। हमने सोचा, बीस-पचीस रुपये की धुलाई की बात थी, जिसके पीछे वे भगवान् के अनुग्रह से वंचित रह गये। इससे अच्छा होता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुराने कपड़े पहनकर आ जाते। कई बार हम लोगों से कहते हैं कि मन्दिर में जाया करो तो जो टायर की चप्पल आती है, दो रुपये की, वह पहन कर जाया करो। उत्तम पक्ष हमारे शास्त्रों में है कि मन्दिर जाते हो तो बिना जूते के जाओ। तुमसे ऐसा नहीं होता तो तुम ऐसे जूते पहनकर जाओ कि अन्दर जाकर जब तुम पूजा कर रहे हो तब तुम्हारा ध्यान जूते पर न जाए। पाँच रुपये का जूता पहन कर आओगे तो सत्संग सुनते हुए भी मन में आयेगा कि 'कोई जूता नहीं ले जाये'। कपड़े-जूते आदि चाहे जिसका हो, अहम् ही नमन में रुकावट डालता है। जन्म मिलने से निश्चित है कि आज तक आपके सामने अपने अहम् को छोड़ा नहीं, आपको नहीं चाहा, आपसे अपने लिये ही चीज़ें चाहता रहा, आप मिलें यह भावना नहीं रही।

अब इस जन्म में मैंने आपको नमस्कार कर लिया है। अपने अहम् को आपके हाथ दे दिया। अतः आप मेरे तीनों पुरों को नष्ट जरूर कर देंगे। न मुझे आगे स्थूल शरीर मिलेगा, न ही सूक्ष्म शरीर को कोई भोग भोगना पड़ेगा और मेरे कारणरूपी अज्ञान शरीर को भी आप नष्ट कर देंगे। भगवान् की यह प्रतिज्ञा है कि जिसका अंतःकरण उनकी तरफ आता है, उसके अन्दर ज्ञान का प्रकाश दे देते हैं, जिससे अज्ञान नष्ट हो जाता है। अतः अब आगे मुझे स्थूल-सूक्ष्म शरीर मिलने नहीं हैं। आगे मन-अहंकार तो मिलेंगे नहीं, इन्द्रियाँ-प्राण मिलेंगे नहीं, इसलिए इस जन्म के बाद आपको नमस्कार कर नहीं सकूँगा! इसके पहले नहीं किया यह पता लगा क्योंकि शरीर मिला; इसके बाद कर नहीं सकूँगा क्योंकि आगे शरीर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिलेगा नहीं; पहले नहीं किया एक अपराध, आगे कर नहीं सकता यह दूसरा अपराध, मेरे ये दोनों अपराध यहीं क्षमा कर देना। ज्ञान इसी जन्म में हो जाता है, हमेशा के लिए बन्धन की निवृत्ति हो जाती है।

अगर तुमने परमेश्वर की तरफ अपने अहम् को मोड़ दिया तो आगे परमात्मा स्वयं ही तुम्हारा कल्याण कर देते हैं। इसलिए उनको कहा मनोमय। जितनी कामनाएँ हैं उन सबका वह प्रकाशक है। अब मैं यह नहीं चाहता कि गलत कामनाएँ रहें, धर्मविरुद्ध रहूँ क्योंकि आपके प्रकाश से प्रकाशित हूँ। इसी प्रकार पुण्य-पाप मुझे सुगन्धि-दुर्गन्धि देने वाले हैं, परन्तु अब मुझे दुर्गन्धि की कामना नहीं है, मैं यही चाहता हूँ कि पुण्य गन्ध ही मेरे अन्दर रह जाये, अर्थात् अंत:करण की वासनाएँ केवल शुभ ही रह जायें। जब अंत:करण इस प्रकार शुभ हो जाता है तब परमात्मा का यथार्थ प्रतिबिम्ब पड़ता है। मेरे मनोमय में परमात्मा का उचित प्रतिबिम्ब पड़े इसके लायक मैं इसे बनाऊँ। इसके कौन से साधन हैं, यह आगे बतायेंगे।

❖

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन : पन्द्रहवाँ

(१३.४.९८)

परमेश्वर हमारे ध्यान का विषय बनता है जब सगुण रूप वाला होता है। वह मनोमय, प्राणशरीर, भारूप है। यद्यपि वह मन का भी कारण है, फिर भी ध्यान के लिए मानो कि उसके मन है। मन के दया, करुणा इत्यादि सारे गुण उसमें हैं। इस प्रकार उसका ध्यान करना है। केवल मनोमय ही नहीं, प्राणशरीर भी है। प्राण मायने क्रिया। क्रियाशक्ति उसकी ऐसी है कि 'सर्वकर्मा' सारे कर्म करता है! हमारी क्रियाशक्ति थोड़ा-सा काम कर सकती है और वह भी करके थक जाती है। पैरों से पचास मील चल दिए तो पैर थक जाते हैं। हाथों से आठ घंटे युद्ध किया तो हाथ थक जाते हैं। वाणी से छह घंटा निरन्तर गाते रहे या बोलते रहे तो वाणी थक जाती है। हमारी क्रियाशक्ति सीमित है, थोड़ा काम कर सकते हैं और वह भी थोड़े समय के लिए, उसके बाद आराम करके उस क्रियाशक्ति को पुनः जीवित करना पड़ता है। विचार करो, वह किससे पुनर्जीवित होती है? आजकल बैटरी आती है उसमें तुम बिजली भर लेते हो; खाली हो जाती है तो वापस कब भरती है? जब बिजली आ रही हो। यदि बिजली चली गई, तुमने 'इमरजेंसी' की रोशनी जला ली, बैटरी खत्म हो गई, तब तक बिजली वापस नहीं आई, तो क्या उसको भर सकते हो? इसी प्रकार हमारी चलने की शक्ति, बोलने की शक्ति पकड़ने की शक्ति थक गई। चार-छह घंटे आराम करके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह शक्ति वापस आती है क्योंकि कोई-न-कोई उसमें शक्ति दे रहा है। आराम करते हैं, तब उस इन्द्रिय के ऊपर हमारा नियन्त्रण नहीं रह जाता, हमारा अहम् हट गया। तुम लेट गए हो तो तुम्हारे पैर के ऊपर तुम्हारा कोई नियन्त्रण नहीं है। जैसे ही अहम् का नियन्त्रण हटा, सर्वव्यापक परमेश्वर के साथ ही उसका सम्बन्ध रह गया। परमेश्वर का सम्बन्ध तो सब समय रहता है, परन्तु बीच में जब तुम्हारा अहम् किसी कार्य को करने लगता है, तो परमेश्वर की शक्ति अहम् के द्वारा आती है। जैसे ही तुम्हारा अहम् हटा, जब तुम उसका उपयोग नहीं कर रहे हो, तब तुम्हारा अभिमान हटा, तो परमेश्वर की शक्ति पूर्णतः प्राप्त होने लग गई।

सब चीज़ों से इकट्ठा ही अहम् का सम्बन्ध हटता है गहरी नींद में। सुषुप्ति-काल में तुम्हारी सारी ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ और अंतःकरण, विलीन हो जाते हैं, सारे तुम्हारे अहम् से सम्बन्धित रह नहीं जाते, इसलिए गहरी नींद में न तुम चलते हो न देखते हो न छूते हो, न सूँघते हो, न बोलते हो, तुम कुछ नहीं करते। मन से भी कुछ नहीं करते, न सोच रहे हो, न निश्चय कर रहे हो। किसी भी प्रकार की क्रिया नहीं करते अतः सुषुप्ति काल में सब उपाधियाँ पुनः पूर्ण शक्ति को प्राप्त कर लेती हैं। जैसे ही उठते हो, तुम पहले-जैसे ताजे होकर उठते हो। कभी परमात्मा साक्षात् कर्म कर रहा है और कभी तुम्हारे अहम् के द्वारा कर रहा है। जिसको तुम 'आपद् अलात' (इमरजैंसी लाइट) कहते हो उसमें भी जो जल रही है, वह है तो 'डेसु' से आने वाली बिजली ही, परन्तु तुमने जितना भरा है उतनी ही वह जलेगी। जल वहाँ भी वही रही है और सड़क

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की रोशनी में भी 'डेसु' की ही बिजली जल रही है। इसी प्रकार कभी सर्वकर्मा परमात्मा तुम्हारे अहम् के द्वारा काम कर रहा है और जिस समय तुम्हारे अहम् का सम्बन्ध नहीं है उस समय वह साक्षात् काम कर रहा है। इसलिए कहा कि प्राणशरीर सर्वकर्मा है, सब कर्म करनेवाला है।

इतना याद रखना कि परमात्मा सर्वरूप होने पर भी स्वयं तो शुभ है। गीता में पुण्यगन्ध परमात्मा का रूप कहा है। जीव अपने अहम् से पाप द्वारा उसे बुरी गन्ध बनाता है। इसी प्रकार भगवान् कहते हैं कि धर्म से विरुद्ध जो कामनाएँ नहीं हैं, वे साक्षात् परमेश्वर से आती हैं और धर्म-विरुद्ध कामनाएँ अहम् के द्वारा आती हैं। अहम् के द्वारा उसकी जो शक्ति काम करती है वह परिच्छिन्न हो जाती है। जीव में शक्ति परमात्मा की लेकिन साथ में राग-द्वेष भी आ गए। जैसे गन्ध आदि में पुण्य-अपुण्य का भेद है वैसे ही कर्मों में भी समझ लेना। उसका कार्य तो राग-द्वेषरहित होता है, इसलिए अशुभ कर्म होता नहीं। अशुभ कर्म वहीं होता है, जहाँ बीच में अहम् का काम आ जाता है। दुष्कर्म या पापकर्म का एकमात्र कारण होता है–अज्ञान। परमात्मा का अज्ञान के साथ कोई सम्बन्ध नहीं, उसमें अज्ञान का लवलेश नहीं इसलिए उससे जब भी होगा ठीक ही होगा, धर्म ही होगा। यद्यपि वह सर्वकर्मा है, तथापि जब अहम् के द्वारा कर्म करता है तब शुभ भी हो जाते हैं, अशुभ भी हो जाते हैं क्योंकि अंतःकरण का सम्बन्ध है। जब बिना अहम् के करता है, तब उसमें किसी प्रकार के दोष की सम्भावना नहीं। हर हालत में, सारे कर्म साक्षात् या अहंकार के माध्यम से वही करता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राणशरीर के द्वारा बतलाया कि जैसे शरीर हमारे द्वारा नियन्त्रित होता है, वैसे ही प्राण परमात्मा के द्वारा नियन्त्रित होते हैं। शरीर में अन्य क्रियाएँ हम 'स्वतन्त्र' होकर करते हैं, भले ही परमात्मा का नियन्त्रण रहता है। परन्तु प्राण की गति, जीवनी शक्ति ऐसी है, जिस पर हमारा कोई नियन्त्रण नहीं है! बहुत जोर लगाओ तो दो मिनट प्राण शक्ति को रोक सकते हो। प्राण स्वाभाविक ढंग से हमेशा चलता रहता है, उसके ऊपर नियन्त्रण परमात्मा का, इसलिए जैसे ही प्राण का सम्बन्ध शरीर से छूटनेवाला होता है, तुम लाख कोशिश कर लो, लेकिन प्राण शरीर में रहने वाला नहीं। ज्ञान-शक्ति और क्रिया-शक्ति दोनों सर्वथा परमात्मा में हैं–इस प्रकार परमात्मा का ध्यान करना है।

वह हमारे अन्दर प्रस्फुटित हो इसके लिये मन भी ऐसा बनाना है और प्राण-शक्ति की क्रिया भी ऐसी ही बनानी है, जिससे परमेश्वर उसमें यथावत् प्रतिफलित हो सके। परमात्मा का सम्बन्ध तो सब समय है, परन्तु जैसा परमात्मा है वैसा अभी प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता। हमारा मन 'जानता' है, यह परमेश्वर का प्रतिबिम्ब ही है; परन्तु मन के अन्दर अज्ञान का प्रभाव भी होने से कुछ ठीक भी जानता है, कुछ गलत भी जानता है! इसी प्रकार अहम् चूँकि अज्ञान से आवृत है, इसलिए हमारे प्राण कुछ ठीक भी करते हैं, कुछ गलत भी करते हैं। यदि सब समय ठीक ही करें और ठीक ही जानें तब परमात्मा का प्रतिबिम्ब ठीक पड़ा। इसके अनुरूप मन को और क्रियाओं को शुद्ध करना पड़ेगा, तब मन का जो सत्त्वगुण है, वह पूर्णरूप से प्रकाशित हो जायेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह कैसे होवे? आचार्य शंकर कहते हैं—

'हितमितपरिभोजी नित्यमेकान्तसेवी
सकृदुचितहितोक्तिः स्वल्पनिद्राविहारः।
अनुनियमनशीलो यो भजत्युक्तकाले
स लभत इह शीघ्रं साधु चित्तप्रसादम्॥'

(सर्व. ३७२)

जो हितकारी और मित भोजन करता है, उसका चित्त शान्त रहता है। हमेशा देखना पड़ता है कि हितकारी भोजन करें। यदि हमने रजोगुणी और तमोगुणी भोजन किया तो अन्न से ही मन बनता है, इसलिए मन के अन्दर भी वे रजोगुण-तमोगुण अवश्य ही आयेंगे। सत्त्वगुणी भोजन जहाँ बतलाए हैं भगवान् ने वहाँ स्पष्ट कहा है कि भोजन हृद्य होना चाहिए, हृदय को अच्छा लगने वाला होना चाहिए। भोजन ऐसा होना चाहिए जो खाने के बाद देर तक शरीर में रहे। खाने के बाद कुछ समय तक उस अन्न के प्रभाव से हमारे मस्तिष्क में भी थोड़ी गरिष्ठता आती है, भारीपन आता है। इसलिए जितनी बार खायेंगे उतनी बार हमारे मस्तिष्क पर ज़ोर पड़ेगा। आजकल के चिकित्सक मन के ऊपर ध्यान नहीं देने के कारण केवल शरीर के लिए हितकारी भोजन का ही चिन्तन करते हैं, उसका मन पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसको नहीं सोचते। अतः हमारी ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति को बढ़ानेवाला हितकारी भोजन होना चाहिए, जो हमारे मस्तिष्क को ठीक प्रकार से सोचने दे और हम अपनी क्रियाओं को ठीक प्रकार से कर सकें। खाली सोच ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सको, कर कुछ न सको, वह भोजन भी अपुष्टिकर है और क्रिया ही कर सको, सोचने की ताकत न हो तो वह भी हम लोगों की दृष्टि से अपुष्टिकर भोजन है। यदि इतने भारी हो जाते हो कि तुम्हारे शरीर का चलना ही मुश्किल हो जाये तो वैसा भोजन शरीर को पुष्ट चाहे कर रहा है, किन्तु वह सात्त्विक नहीं है क्योंकि शरीर की क्रियाशक्ति को अवरुद्ध कर रहा है। वेदान्त कहता है कि इससे कोई मतलब नहीं कि तुम मोटे हो या पतले हो, परन्तु तुम सभी क्रियाओं को अपने शरीर से भली प्रकार सम्पन्न कर सको यह ज़रूरी है। चालीस साल तक का सामान्य पुरुष एक-साथ तीन तल्ले बिना बीच में रुके दौड़कर ऊपर चढ़े और साँस न फूले, किसी प्रकार की घबराहट न हो तो कोई डॉक्टर कहे 'तुम्हारा वजन बढ़ा हुआ है' तो भी चिन्ता मत करो। तुम चाहे जितने दुबले-पतले हो पर तीन तल्ले दौड़कर चढ़े तो अपने-आपको सामान्य महसूस नहीं करते तो तुम्हारी क्रियाशक्ति पुष्ट नहीं है। जो ज्ञानशक्ति-क्रियाशक्ति को पुष्ट करनेवाला हो वह हितकारी भोजन है।

हितकारी भोजन भी सीमित होना चाहिए, तादाद में अधिक नहीं होना चाहिए। सत्त्वगुण को बढ़ाने के लिए शास्त्रकार कहते हैं कि आधा पेट भोजन करें, चौथाई पेट जल के लिए, चौथाई पेट हवा के लिए रहे। बहुत से लोग इतना भोजन कर लेते हैं कि आगे पानी पीना मुश्किल, यहाँ तक कि साँस लेना भी मुश्किल हो जाता है! बीकानेर में पण्डित लोग कहते हैं कि भोजन करके यदि खड़ा होना पड़े तो भोजन करना बेकार है! भोजन करने के बाद तो वहीं खटिया हो और लेट जायें तो ठीक है। इतने को सात्त्विक नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहेंगे। पता कैसे लगे कि 'आधा पेट' भोजन कितना होता है? शास्त्रकारों ने बतलाया है : दिन में मध्याह्न में एक ही बार भोजन करो, उससे अगले दिन कुछ न खाओ, अगले दिन फिर मध्याह्न में पेट भर कर अच्छी तरह से एक बार में जितना भोजन कर सकते हो वह करो। इतनी तुम्हारी 'एक' खुराक हुई। उसका आधा रोज़ खाना चाहिये। 'रोज़' शब्द कह रहे हैं अर्थात् उतना दो बार में खाओ, चाहे तीन बार में खाओ, पूरे दिन में उतना ही खाना है। कई लोग तीन-चार घंटे बाद आधा-आधा पेट खाते रहते हैं! ऐसे शाम तक कई गुना खा लोगे। उक्त रीति से निर्धारित 'आधा पेट' दिन भर का, चौबीस घंटे का परिमाण है।

भोजन तुमने हितकर व परिमित कर लिया, परन्तु निरन्तर संसार के व्यवहारों में अपनी इन्द्रियों से तरह-तरह के ज्ञानों को ग्रहण करते रहो तो भी चित्त शान्त नहीं होगा। आँखों से तुम विक्षेप लेते हो, कानों से विक्षेप लेते हो, नाक से विक्षेप लेते हो, हाथ-पैर से विक्षेप लेते हो, वह सब भी तुम्हारे शरीर में रजोगुण लायेंगे। तुम्हारा स्वभाव होना चाहिए कि जितना आवश्यक है उतना कार्य करो, उसके बाद व्यर्थ अपनी इन्द्रियों को प्रवृत्त मत करो। आवश्यक कार्य करने के बाद नित्य एकांतसेवी रहो। 'एक' किसका नाम है? 'एकम् एव अद्वितीयम्', एक – यह परमात्मा का नाम है। एक ही परमात्मा जहाँ सामने है, वह है एकांतसेवन। गीताभाष्य में भगवान् भाष्यकार कहते हैं कि जो परमात्मा का चिन्तन करनेवाले लोग हैं, उनके साथ व्यवहार करना एकांत-सेवन ही है क्योंकि वे निरन्तर परमात्मा की याद दिलायेंगे। सत्संगी लोगों का चिह्न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान् गीता में बतलाते हैं कि वे परमात्म-सम्बन्धी निश्चय करते हैं। हम लोग रात-दिन अनात्म-सम्बन्धी निश्चय करते हैं। बाहर क्या हुआ, इसके बारे में सोचना-समझना, निर्णय करना अनात्म-सम्बन्धी निश्चय है। वस्तुतः बाहर कुछ नहीं होता है, 'बाहर होता है' यह तो हमें अज्ञान के द्वारा प्रतीत हो रहा है। उसका निश्चय करना व्यर्थ है। एक दो कोटि भले ही सोच लो, जिसमें तुम्हारा व्यवहार चल सके, आगे तुम उसमें ज्यादा विचार करोगे कि 'यह कैसे, यह कैसे' तो दो चार कोटि के बाद अन्त में यही कहना पड़ेगा 'पता नहीं।' वेदान्ती कहता है कि 'पता नहीं' मायने अज्ञान। जब तुमने दस कोटि भी जाकर अन्त में मानना है कि 'पता नहीं' तो पहले ही मान लो! अनात्मा की चिन्ता चाहे जितनी करते जाओ, अन्त में अज्ञान ही हाथ आना है। इसलिए माया के कार्य के बारे में निश्चय करने की ज्यादा प्रवृत्ति नहीं करो।

निश्चय तो परमात्मा के विषय में करो क्योंकि उसका निश्चय दृढ होता है। कुसंगी लोग उल्टा करते हैं : संसार की चीज़ों का तो निश्चय करने का प्रयत्न करते हैं, परमात्मा के सम्बन्ध में कह देते हैं 'अरे, उसको तो कोई जान नहीं सकता, वह मन-वाणी के परे है, उसके बारे में क्या सोचना! उसका तो किसी को पता नहीं चलता।' जबकि बात बिलकुल उलटी है। जगत् का तो कुछ पता नहीं चलता लेकिन परमात्मा का पूरा पता चलता ही है। इसलिए भगवान् ने कहा कि जो परमात्मा को ही सामने रखनेवाला है, उनका लक्षण है मत्‌चित्त होना, मेरे बारे में, परमात्मा के बारे में निश्चय करना। वे संसार के बारे में चिन्ता करने में नहीं पड़ते। उनके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राण भी मुझमें ही लगे रहते हैं, परमात्मा में ही उनकी आसक्ति और प्रेम बना रहता है। संसार के किसी भी विषय में उनकी आसक्ति होती नहीं।

वे आपस में बातें करेंगे तो एक-दूसरे को परमात्म-सम्बन्धी बोधन ही करेंगे। बोधन अर्थात् चेतावनी। एक-दूसरे से परमात्मा की ही बात करेंगे। संसारी लोग जैसे संसारी चीज़ों में बात-चीत करते हैं, वैसे सत्संगी परमात्म-विषयक बात-चीत करते हैं। सड़क पर परिवहन-अधिकारी (आर.टी.ओ.) जाँच कर रहा हो, तो वहाँ से गुजरती गाड़ियों के चालक आती गाड़ियों के चालकों को इशारे से सूचित करते जाते हैं ताकि किसी की कोई कमजोरी हो तो बचाव कर ले। उन चालकों का आपसी इतना ही सम्बन्ध है कि चालक हैं, इतने मात्र से एक-दूसरे का हित साधते हैं। कहीं दंगा-फसाद हो, उधर जाने लगो तो अनजान लोग भी कहते हैं 'वहाँ झगड़ा हो रहा है, वहाँ नहीं जाओ।' तुमको बोधन, सावधान करते हैं। संसारी आदमी कभी तुमको सत् के प्रति सावधान नहीं करता। 'तुम अपना सारा जीवन संसार के लिए नष्ट करके खो रहे हो, आगे तुम्हारा क्या होना है!' यह बोधन वह कभी नहीं करेगा। जैसे संसारी स्वयं भी संसार के प्रति सावधान रहता है, दूसरों को भी सावधान करता है। इसी प्रकार सत्संगी जब कभी कोई वार्ता करेंगे तो परमात्म-सम्बन्धी ही करेंगे। उसी में उनको सन्तोष होता है, उसी में उनको आनन्द आता है, उसी में सावधान रहते हैं, उसी में सावधान करते हैं। आचार्य शंकर कहते हैं कि ऐसे लोगों के साथ रहना एकांत-सेवन है। यदि तुम कमरे में अकेले बैठे हो, पर सोचते रहो तुम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संसार की बातें तो वह एकांत-सेवन नहीं है। उसकी अपेक्षा यदि तुम कार्य कर रहे होते तो कुछ काम की बात ही सोचते! व्यर्थ बैठ जाओगे तो व्यर्थ की बातें ही सोचोगे। सत्त्वगुणी होने के लिये जितना व्यवहार अनिवार्यतः करना है, उतना आवश्यक व्यवहार करके सत्संगी एकांत का सेवन करता है।

'सकृदुचितहितोक्तिः' वह उचित हित की बात एक बार बताता है। एक बार किसी ने तुम्हारे हित की बात कही तो तुरन्त उसके अनुसार आचरण करो, उचित बात बार-बार कहने की जरूरत नहीं पड़नी चाहिए। किसी संसारी को 'नुकसान' की बात बतलाओ तो झट कर लेगा! कोई सूत्र किसी के हाथ लग जाए कि किसी कलम को ऐसे लिखें तो टैक्स बच जायेगा; वह किसी अन्य को बतला रहा हो तो भी तुरन्त तुम कान खड़े करके बड़े ध्यान से सुनोगे और तुरन्त अपने मुनीम को जाकर कहोगे कि ऐसा-ऐसा हिसाब बना लो। वह 'हितकारी' बात नहीं है, चोरी का तरीका है। उसे तो एक बार ही सुनकर झट काम में ले लोगे और जब हित की बात कहेंगे 'किसी भी हालत में सत्य का परित्याग नहीं करना चाहिए', तो कहेंगे 'बात तो ठीक है, लेकिन सच्ची बात है कि सौ बार भी कहिये तो यह हमसे होनेवाला नहीं है।' इसलिए कहा कि उचित हित की बात एक बार सुनकर भी मान लेना चाहिए; क्योंकि सत्पुरुष बार-बार बतायें यह जरूरी नहीं।

साधक को निद्रा भी अपनी कम करनी पड़ती है क्योंकि निद्रा के अन्दर तमोगुण आ जाता है। एक विलक्षण बात है; थोड़ी देर सो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर उठ जाओ तब तो ताजा महसूस करते हो और आवश्यकता से अधिक सोकर आदमी उठता है, उस समय उल्टा ताजा नहीं रह जाता। प्रातः चार बजे आँखें खुल गईं फिर भी बहुत-से लोग इधर-उधर बिस्तर में करवट बदलते रहते हैं, बीच-बीच में झपकी आती रहती है पर वे ताजा नहीं उठते, उल्टा वे उठते हैं तो उनके शरीर में भारीपन रहता है क्योंकि तमोगुण बढ़ जाता है। नींद से जाग गए तो उठ जाओ, अपने कार्य में लग जाओ। इसी प्रकार से विहार खेलना-कूदना परिमाण में होना चाहिए, थोड़ा होना चाहिए। रोज पचास मील चलोगे तो कहाँ से सत्त्वगुण आयेगा, उल्टा रजोगुण बढ़ जायेगा।

सत्संगी अपने लिए शास्त्र में कहे नियमों का ठीक प्रकार से पालन करता है। नियम बता रखे हैं 'अमानित्वम् अदम्भित्वम्' इत्यादि। अमानिता अर्थात् किसी भी रूप में अपने धन, कुल, विद्या, शरीर आदि का अभिमान न करना। अमानिता आजकल के लोगों को बड़ी खटकती है, जबकि मानिता हमारे यहाँ 'क्लेश' है! महर्षि पतंजलि ने पाँच क्लेश बतलाये हैं : अज्ञान; उसके कारण अस्मिता आती है कि 'मैं अमुक हूँ', फिर राग, द्वेष और अभिनिवेश (आग्रह) होते हैं। अस्मिता को हम तो क्लेश अर्थात् दोष मानते हैं, जबकि आजकल लोग कहते हैं 'अपनी अस्मिता तो होनी ही चाहिए।' वे बन्धन की कड़ी को अच्छी चीज़ सोच रहे हैं। अपने कुल, धर्म, विद्या आदि किसी भी चीज़ का मान मन के अन्दर लाना मनुष्य के सद्गुण को रोकेगा। 'अदम्भित्वम्'; इसी प्रकार 'सब लोग मेरे धर्म को जानें कि मैं कितना बड़ा धर्मात्मा हूँ'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह दम्भ है जो सत्संगी कभी न रखे। भगवान् ने जो नियम बतलाए उनके अनुसार चलनेवाला होवे।

जब ऐसा चलता है, तब 'उक्तकाले' ठीक समय पर भजन करता है। नियमोंवाला होकर तो भजन बनेगा, यदि ये सत्त्वगुणी प्रवृत्तियाँ नहीं रहीं तो 'भजन' नहीं बनेगा। भजन करने बैठोगे तो भोजन की चिन्ता करते रहोगे, भोग की चिन्ता करते रहोगे! भोजन ख़ाली मुँह से ही नहीं होता, अपने लिये सुखादि-हेतु समझते हुए रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श सब का ग्रहण भोग ही है। ग्रहण केवल मानस कल्पना से भी हो सकता है, मन-ही-मन भी भोग हो जाता है। जो उक्त साधन करता रहता है, वह शीघ्र ही अपने चित्त को भगवान् का वात्सल्य-स्थान बना लेने में समर्थ हो जाता है।

एक बड़ा तपस्वी ब्राह्मण था। एक दिन पुण्यवेला में गंगा-किनारे बैठा हुआ गायत्री का जप कर रहा था। भगवान् शंकर का ध्यान किया और फिर रेचक प्राणायाम करके बाह्य कुम्भक में स्थिर हो गया। उसी स्थिति में एक अत्यन्त विकराल मुँहवाला प्राणी, जिसकी बड़ी-बड़ी दाढ़ी, मूँछें बिलकुल सीधी और जीभ बाहर लटक रही, ऐसा पिशाच उसको अपने सामने दीखा। पहले तो थोड़ा घबराया, तुरन्त उसने विचार किया की 'घबराने की क्या जरूरत है, जब सब कुछ परमेश्वर-स्वरूप है तो मैं किससे डरूँ और किससे घबराऊँ!' उसने उससे पूछा 'तू कौन है?' वह अपने दाँत निकालने लगा तो ब्राह्मण बोला 'मुझे तुझसे डर नहीं है। मेरे हृदय में भगवान् शंकर बैठे हुए हैं, मेरे गले में रुद्राक्ष पड़ा हुआ है, मेरे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मस्तक पर भस्म लगा हुआ है। तू मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकता। इनमें से जिसके पास एक भी हो उसका पिशाच कुछ नहीं कर सकते। मैंने तो ये तीन कवच पहने हुए हैं, मेरा कुछ बिगाड़ नहीं कर सकता।' पिशाच ने भी उसे देखकर समझ लिया कि इसका कुछ नुकसान नहीं कर सकता।

तब पिशाच शान्त होकर कहने लगा मैं भी इससे पहले मंदराचल में रहनेवाला ब्राह्मण था, परन्तु मैं अपने जीवन में सबका प्रतिग्रह लेता था। कोई भी दान आवे तो तुरन्त उसे ग्रहण करने के लिए तैयार रहता था। यहाँ तक कि कुरुक्षेत्र में भी सूर्य-ग्रहण आदि के समय मैंने दान लिया। दान लेने में तो मैं हमेशा आगे रहता था, परन्तु मैंने कभी किसी को जीवन में दान दिया नहीं।' शास्त्रों में जहाँ ब्राह्मण के छह कर्म कहे हैं, वहाँ यज्ञ करना और यज्ञ करवाना, दान लेना, देना, वेद पढ़ना-पढ़ाना सब गिने हैं। ब्राह्मण को यज्ञ करवाने के लिए ही नहीं कहा है, स्वयं यज्ञ करे भी और करवावे भी। इसी प्रकार वेद पढ़े और पढ़ावे। यह नहीं कि केवल पढ़ाये, स्वयं पढ़े नहीं अर्थात् अभ्यास न करे। इसी प्रकार दान देवे और दान लेवे; केवल लेवे ही, देवे नहीं ऐसा नहीं।

पिशाच ने कहा 'दान लेने में कभी संकोच मैं करता नहीं था पर देने का कर्म मैंने कभी नहीं किया। इस प्रकार का जीवन बिताने के कारण एक बार मैं रेगिस्तान में दान लेने के लिए गया हुआ था। वहीं से लौटते हुए मैं भूखा और प्यासा मर गया। वहाँ मरकर मुझे पिशाच योनि मिली। पिशाच योनि में जल्दी खाने-पीने को कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिलता नहीं, मैं ढूँढ़ रहा था कि कोई शरीर मिले तो मैं उसमें जाऊँ। एक बार एक ब्राह्मण बिना लंगोटी और लाँग लगाए हुए मिला, वह कभी शौचाचार और संध्या नहीं करता था। मैंने उसमें प्रवेश कर लिया! अब जो-जो वह खाए वह सब मुझे भी खाने को मिल जाए। जो-जो वह करे उस भोग में मेरा भी हिस्सा हो जाए। उसी शरीर से वह भी ग्रहण करे और मैं भी ग्रहण करूँ।' जैसे अपने शरीर के अन्दर पेट में बड़े-बड़े कीड़े हो जाते हैं, वे क्या खाते हैं? जो तुम खाते हो उसमें से ही वे खा लेते हैं। इसी प्रकार वह पिशाच जिसके शरीर में प्रविष्ट था, उसका खाना-पीना-भोगना सब उसे भी मिलता था और सारा-का-सारा पिशाच को भी मिल जाता था।

'मैं आराम से रहने लगा। थोड़े दिनों के बाद तीर्थयात्रा के प्रसंग में वह चन्द्रेश्वर महादेव का दर्शन करने गया। जैसे ही चन्द्रेश्वर महादेव के पास जाने का प्रसंग आया वैसे ही शिवदूतों ने कहा 'अरे तू अन्दर जाने के लायक नहीं है, निकल यहाँ से।' अब क्या करता! मुझे निकलना पड़ा, नहीं तो वे मार रहे थे। निकल कर मैं क्या करूँ? कोई दूसरे लोग आवें तो मैं सोचूँ कि उन में प्रवेश करूँ। मैं जैसे ही प्रवेश करने के लिए तैयार होता तो वे लोग जो मन्दिर से आ रहे होते थे 'ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय' बोल रहे होते थे, अतः मैं उनमें प्रवेश नहीं कर पाता था। मेरा खाना-पीना फिर बन्द हो गया। वहाँ से निकल पड़ा, नये शरीर में प्रवेश मुझे मिला नहीं। इस प्रकार मैं इधर-उधर भटकता रहा। उनमें प्रवेश करने के लिए उनके पास जाता था, तुरन्त जब वे 'ॐ नमः शिवाय' कहते थे, तब सुनाई तो मुझे भी दे जाता था। पञ्चाक्षरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन्त्र सुनने के प्रभाव से मुझमें कुछ शुद्धि आ गयी, मेरे कुछ पाप कट गये। इसलिए मुझे यह समझ आ गया कि मैं इस पिशाच योनि में किस प्रकार से आया हूँ। अब मैं आपकी शरण में आया हूँ, आप मेरा उद्धार करें। मैंने आपको देखकर यह निश्चय कर लिया है कि आप ही मेरा उद्धार करने में समर्थ होंगे।'

ब्राह्मण तपस्वी, दयाशील था, उसने विचार किया 'यह कष्ट में पड़ा हुआ और प्रायश्चित्तोन्मुखी है तो इसकी रक्षा करनी चाहिए।' कहा 'यहाँ तीर्थ में स्नान करो, इससे तुम्हारी शुद्धि होगी।' उसने कहा 'आप कह रहे हैं पानी में स्नान करूँ, हम पिशाच योनिवालों की तो स्थिति है कि हम पानी पी भी नहीं सकते, स्नान करना तो दूर की बात है! स्नान कर नहीं सकता।' ब्राह्मण के मन में दया आई, कहा 'अच्छा, मैं गंगाजल के द्वारा कुश से जल को अभिमंत्रित करके तुम्हारे ऊपर जल छिड़कता हूँ।' तपस्वी में पूर्ण सामर्थ्य थी। ब्राह्मण उस कुश के द्वारा जल से जैसे-जैसे अभिषेक पूरा करता चला गया वैसे-वैसे उसका पिशाचपना चला गया। पिशाचपना जाने से उसने उसी कुण्ड में उसी गंगातीर्थ में स्नान किया, स्नान करते ही वह अत्यन्त दिव्य रूप, दिव्य वस्त्र धारण किये हुए दिव्य लोक को जाने लगा। जाते हुए उसने ब्राह्मण को नमस्कार करते हुए अपना मुक्त होना जताया।

विचार करो, जब हमारे अन्दर रजोगुण-तमोगुण की वृद्धि हो जाती है, तब हम पिशाच की तरह ही हो जाते हैं। पिशाच की तरह हो जाने के कारण यद्यपि यह शरीर-मन हमारे हैं नहीं, हैं ये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परमात्मा के, तथापि शरीर-मन के अन्दर घुस कर इसके भोग के फल का मालिक भले ही परमात्मा है पर हम भी इसमें अपने हिस्से का भोग करने लगते हैं; इसके द्वारा किए कार्यों के अन्दर हम अभिमान कर लेते हैं। इस प्रकार हम कर्ता-भोक्ता बन जाते हैं, जबकि वस्तुतः शरीर-मन हमारे हैं नहीं, परमात्मा के हैं। जैसे वह बार-बार मन्त्र सुनता था, जिससे उसकी शुद्धि हुई, ऐसे ही परमेश्वर के विषय में सुनते-सुनते अन्त में हमारी समझ में आता है 'अरे, यह जो हमने अपना कर्तृत्व-भोक्तृत्व बना लिया है यह गलत है।' हम तो केवल साक्षि-मात्र हैं, केवल प्रकाशरूप हैं। परमेश्वर सारे मनों का, प्राणों का, सारे कर्मों का, सारी कामनाओं का मालिक है, हम इसके अन्दर 'भारूप' (साक्षिमात्र) हैं, हमारा वह प्रकाशरूप भी परमात्मा का ही है! वह परमात्मा सत्यसंकल्प है, उसका संकल्प कभी मिथ्या होता नहीं। हम लोगों के संकल्प मिथ्या होते हैं क्योंकि हमारे संकल्प अज्ञान के द्वारा होते हैं। परमेश्वर का संकल्प हमेशा सत्य होता है। जो इस बात को जान लेता है, उसकी सब कामनाओं से, सब चिन्ताओं से निवृत्ति हो जाती है। वही होना है, जो परमेश्वर का संकल्प है क्योंकि वही सत्यसंकल्प है। हम व्यर्थ में संकल्प करके दुःखी होते हैं। वह परमात्मा 'आकाश-आत्मा', सर्वव्यापक है, आकाश की तरह है। सर्वकाम, सर्वरस, सर्वगन्ध है। इन्द्रियों के द्वारा जो कुछ भी हमें प्रतीत होता है उस सब में वही व्याप्त है, वही देखा जाता है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' सब दृश्यों में वही व्याप्त है।

परमेश्वर को सत्यसंकल्प, मनोमय आदि कहते हैं, तो मन में शंका आ जाती है कि क्या परमेश्वर के भी हाथ-पैर-नाक-कान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन्द्रियाँ हैं? क्योंकि जब सर्वगन्ध, सर्वरस कहा अर्थात् सारे रस और सारे गन्धों को लेता है, तब लगता है कि उसकी बहुत बड़ी नाक और बहुत बड़ी जीभ होती होगी! अतः कह दिया 'अवाकी' वह बिना वागिन्द्रिय के बोलता है! वागिन्द्रिय से उपलक्षणा कर दी कि बिना नाक के सूँघता है, बिना पैरों के चलता है। अन्यत्र भी उपनिषदों के अन्दर यह बतलाया कि इन्द्रियों से रहित होकर ही वह इन्द्रियों का सारा काम कर लेता है। 'अनादरः' वह किसी भी प्रकार के संभ्रम से रहित है। यदि तुम कुछ प्राप्त करना चाहो और प्राप्त न कर सको तो तुम्हारे अन्दर 'संभ्रम' आता है। परन्तु जो सत्यसंकल्प होगा उसका संकल्प होते ही हर चीज़ प्राप्त होती है; अतः उसे कभी संभ्रम नहीं होगा, सारे संभ्रमों से रहित रहेगा। इस प्रकार परमात्मा का चिन्तन करना है, ध्यान करना है।

❖

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन : सोलहवाँ

(१४.४.९८)

सामवेद की कौथुमी शाखा की छान्दोग्योपनिषत् के तीसरे अध्याय के चतुर्दश खण्ड में तीसरे मन्त्र का विचार चल रहा है। प्रथम मन्त्र के अन्दर परमात्म-विषयक निश्चय करने का, उपासना करने का विधान किया। दूसरे मन्त्र में, उसकी उपासना किस प्रकार से की जाये यह बतलाया कि किन गुणों से विशिष्ट परमेश्वर ध्यान का विषय बनाया जाये। वह मनोमय, प्राणशरीर, भारूप, सत्यसंकल्प, सर्वकर्मा, सर्वकाम इत्यादि सारे गुणों से विशिष्ट है, उस परमेश्वर का ध्यान करे। अब, ध्यान कहाँ करे? यह बतलाते हैं—

एष म आत्माऽन्तर्हृदयेऽणीयान् व्रीहेर्वा यवाद् वा सर्षपाद् वा श्यामाकाद् वा श्यामाकतण्डुलाद् वा, एष म आत्मा अन्तर्हृदये ज्यायान् पृथिव्या ज्यायान् अन्तरिक्षाद् ज्यायान् दिवो ज्यायान् एभ्यो लोकेभ्यः।।३।।

हमारे हृदय देश के अन्दर जो 'मैं' इस आत्मरूप से स्फुरण करता है, वह आत्मा है। हृदय में अत्यन्त छोटा छिद्र है, उसके अन्दर अत्यन्त छोटा आकाश है, वहाँ ध्यान करना है। वह कितना छोटा है, यह कई दृष्टान्तों से बतलाते हैं। चावल के एक दाने से भी छोटा है, सरसों के एक दाने से भी छोटा है, सामक के एक दाने से भी छोटा है। सामक का जो एक छोटा-सा दाना होता है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उससे भी यह छोटा है। उसकी सूक्ष्मता को बतलाना है, न कि वह छोटा है! कई दृष्टान्तों से उसकी सूक्ष्मता को बतलाया। इन सब की अपेक्षा से वह छोटा है कहने का उसकी सूक्ष्मता में तात्पर्य है। प्रश्न होता है कि ऐसे अतिसूक्ष्म का ज्ञान कैसे हो सकता है? इतनी छोटी चीज़ को जानकर क्या लाभ होगा? तब कहते हैं कि इतना छोटा होने पर भी पृथ्वी से बड़ा है! अंतरिक्ष से भी बड़ा है, स्वर्ग से भी बड़ा है, ब्रह्माण्ड में जितने लोक हैं, सबसे बड़ा है। अर्थात् उस छिद्र में ध्यान करने पर जिसका निश्चय होता है, वह अत्यन्त व्यापक है। पूर्व मन्त्र में परमात्मा का प्रतिपादन करना शुरू किया मनोमय-प्राणशरीर कहकर; तब प्रश्न आया कि मन और प्राण तो जीव के स्वरूप हैं, इसलिए यहाँ शायद जीव का ध्यान कहा होगा; तब बतलाया था कि सत्यसंकल्प आदि जीव के नहीं, अत: यहाँ परमेश्वर का ही ध्यान है। ऐसे ही, हृदय में अतिसूक्ष्म बतलाने से सन्देह हो सकता है कि फिर तो यह जीव होगा, यहाँ जीव का ही ध्यान बताया होगा। इसके समाधान में कहा कि वह बड़े-से-बड़ा है, अत: ईश्वर का ध्यान है।

तो छोटा क्यों बताया? भगवान् वेदव्यास ब्रह्मसूत्र में (१.२.७) लिखते हैं 'अर्भकौकस्त्वात्'; अर्भक कहते हैं छोटे को, खासकर छोटे बच्चे को। छोटे बच्चे का 'ओक:' मायने घर। छोटे बच्चे के घर में दीखता है। प्रथम मन्त्र में बतला दिया था 'शान्त उपासीत', राग-द्वेष से रहित होकर ही उसकी उपासना करनी है। राग-द्वेषरहित क्यों होना है? सब कुछ ब्रह्मस्वरूप है, इसलिए न कोई राग करने के योग्य और न कोई द्वेष करने के योग्य है, सब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक-जैसे ब्रह्मस्वरूप हैं। राग-द्वेष से रहित ही बालक होता है। इसलिए जहाँ बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा कि ज्ञान होने के बाद बालक की तरह रहे, वहाँ किसी ने शंका की कि क्या वह चाहे-जहाँ खा लेवे, चाहे-जो मुँह में डाल लेवे, चाहे-जहाँ टट्टी-पेशाब कर देवे? तब बतलाया कि बाल्य का मतलब यह सब नहीं है, वरन् जैसे बालक राग-द्वेष से रहित होता है, वैसा राग-द्वेष-रहित होवे। जो बालक की तरह राग-द्वेषरहित है, वही इस हार्दाकाश में प्रवेश कर पाता है, उसी का घर है। राग-द्वेषवाला तो हमेशा बहिर्मुखी रहता है। जब तक बहिर्मुखी रहेगा तब तक अंतर्मुख होगा कैसे? अत्यन्त सूक्ष्म क्यों बतलाया? क्योंकि जैसे बालक के रहने की जगह सूक्ष्म होती है, वैसे ही राग-द्वेष से रहित व्यक्ति के रहने की जगह सूक्ष्म होती है। जीव को विस्तार देनेवाली चीज़ राग-द्वेष हैं। जितने तुम्हारे राग-द्वेष बढ़ते जायेंगे, उतना ही तुम्हारा फैलाव बढ़ता जायेगा। जितने राग-द्वेष कम होते जायेंगे, उतना ही फैलाव कम होता जायेगा। इसलिए इस सूक्ष्मता का प्रतिपादन किया और साथ ही बतला भी दिया कि वह पृथ्वी इत्यादि से बड़ा है। दोनों तरह से बताने का मतलब हो गया कि महान् व्यापक तत्त्व को उसकी उपलब्धि की जगह अर्थात् जहाँ उसकी प्राप्ति होती है, उसे लेकर सूक्ष्म कहा है।

यदि पूछें कि इसे अन्यत्र भी सूक्ष्म कहा है, यहाँ भी दो तरह से कहा है—'हृदय में' यों छोटी जगह रहनेवाला कहा फिर कई दृष्टान्त दिये छोटी चीज़ों के। अतः छोटापन बताने में तात्पर्य क्यों न मानें? उत्तर है कि ऐसा इसलिए नहीं कि निश्चय उसका यही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करना है कि वह सर्वव्यापक है। आचार्य शंकर लिखते हैं कि परिच्छिन्न को तो सर्वगत कहा नहीं जा सकता, जबकि व्यापक को उपलब्धि-स्थान की दृष्टि से छोटा कहना बन जाता है। ऐसे समझ लो : कहीं एक बूँद पानी है, उसे समुद्र तो नहीं समझ सकते। छोटी चीज़ को बड़ी चीज़ नहीं कह सकते। परन्तु समुद्र बड़ा है, उसमें किसी बूँद को दिखाकर कहना बन जाता है कि यह समुद्र है। कोई कहे 'मुझे समुद्र दिखाओ', तो कलकत्ते से लेकर ठेठ मुम्बई तक घुमाकर समुद्र तो उसको दिखाना नहीं पड़ता! चाहे कलकत्ता हो, चाहे जगन्नाथपुरी हो, चाहे मद्रास हो, रामेश्वरम हो, कन्याकुमारी हो, गोवा हो, मुम्बई हो, द्वारका हो; कहीं भी दिखाकर कह देते हो 'यह समुद्र है'। बूँद को तो तुम समुद्र नहीं कह सकते, छोटी चीज़ को तुम बड़ी चीज़ नहीं कह सकते, लेकिन बड़ी चीज़ के एकदेश को छोटी चीज़ होने पर भी बड़ा शान से कहा जा सकता है। इसी प्रकार से आचार्य शंकर कहते हैं कि जो सर्वगत है, सर्वव्यापक है, वह सब देशों में विद्यमान है, इसलिए वह तुम्हारे हृदय के छोटे से छिद्र में भी उपलब्ध है ही। इसलिए वहाँ भी अँगुली दिखा कर कहा जा सकता है 'यह सर्वव्यापक परमात्मतत्त्व है।' इस मन्त्र में यद्यपि उसको अत्यन्त छोटा भी कहा और अत्यन्त बड़ा भी कहा तथापि वह सचमुच में बड़ा है। छोटी जगह में ध्यान के लिए उसे छोटा बता दिया। उलटा नहीं की छोटा है और ध्यान के लिए बड़ा बताया जा रहा है! क्योंकि यदि ऐसा होता तो इसका *निश्चय* करने के लिए नहीं कहा जाता। जो ठीक हो, उसी का निश्चय कर सकते हो, जो गलत है, उसको *मान* तो सकते हो, परन्तु उसका निश्चय नहीं हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकता क्योंकि जैसे ही निश्चय करने जाओगे वैसे ही पता चल जायेगा कि यह गलत है। यहाँ निश्चय करने का विधान है, इसलिए सर्वव्यापक परमात्मा का हृदय-देश में प्रतिपादन करना उपपन्न हो जाता है।

किसी अपेक्षा से कोई भी व्यवहार होता है। यदि हम मद्रास में हैं तो मद्रास की अपेक्षा से वहाँ समुद्र दिखा दिया, अगर हम मुम्बई में हैं, तो मुम्बई की अपेक्षा से वहाँ समुद्र दिखा दिया, यदि हम जगन्नाथपुरी में हैं तो जगन्नाथपुरी की अपेक्षा से वहाँ समुद्र दिखा दिया। प्रश्न करो कि यदि सारे समुद्र को हम किसी एकदेश में बतलायें तो कौन-सा देश ग्रहण करें? तो उत्तर है कि जहाँ हो वही पर्याप्त है। इसी प्रकार, कौन बन्धन का अनुभव कर रहा है, कहाँ बन्धन का अनुभव हो रहा है? 'मैं बद्ध हूँ' इस मैं-में ही। जहाँ हृदय का अनुभव हो रहा है, वहीं तुम्हें शोक-मोहादि बन्धन की प्रतीति है। शोक-मोह ही बन्धन है। जहाँ तुम्हें शोक-मोह हो रहा है, उसकी अपेक्षा से कहा जा रहा है कि वहीं वह व्यापक तत्त्व विद्यमान है। जिस-किसी को भी समझायेंगे, उसे अनुभव अपने हृदय में ही हो रहा होगा। इसलिए हृदय में रहनेवाले स्वरूप का प्रतिपादन किया जाता है। वहीं बन्धन सबको प्रतीत होता है, इसलिए वहीं उपस्थित परतत्त्व को आत्मा कह देते हैं। यहाँ श्रुति ने यह नहीं कहा कि *किस के* हृदय में परमात्मा है; बल्कि क्या कहा? 'मेरे हृदय में' जहाँ मैं शोक-मोह का अनुभव कर रहा हूँ वहाँ। इस प्रकार अतिसूक्ष्म स्थल में परमात्मा के दर्शन का प्रयत्न करना है। वहीं उसका निश्चय होगा, वहीं उसका साक्षात्कार करना है। जिस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकार सर्वव्यापक भगवान् विष्णु की पूजा करनी है। विष्णु सर्वव्यापक है, शालिग्राम में ही उसकी पूजा हो जायेगी। तुम कह सकते हो 'दरवाजे में भी विष्णु है, वहाँ उसकी पूजा कर लें?' है वह वहाँ भी पर शालिग्राम में ही पूजा का विधान है, चाहे-जहाँ नहीं। इसी प्रकार अपने हृदय के अन्दर ही ध्यान करने का विधान है, चाहे-जहाँ नहीं।

लोग परमात्मा का ध्यान अनेक स्थलों में करने का प्रयत्न करते हैं, बाहर की अनेक चीज़ों में भी परमात्मा का ध्यान करने का प्रयत्न करते हैं। शरीर में भी कोई कहता है सहस्रार में ध्यान करो, कोई कहता है विशुद्ध चक्र में ध्यान करो, कोई कहता है आज्ञा चक्र में करो। श्रुति ने यहाँ स्पष्ट कह दिया कि हृदय में ध्यान करना है। हृदय क्या है? जहाँ तुम्हें 'मैं मोहग्रस्त हूँ, शोकग्रस्त हूँ, मैं बद्ध हूँ' यह अनुभव होता है, बस वही हृदय है। इसके लिए किसी डॉक्टर से निर्णय कराने की जरूरत नहीं है! चीन देश के लोग मानते हैं कि हृदय दाहिने होता है, हम लोगों को पढ़ाया जाता है कि हृदय बायें होता है। किसी चीनी का अंग्रेज से इस बारे में झगड़ा हो रहा था, दोनों ही अंग्रेजी में बोल रहे थे : चीनी कह रहा था 'हृदय दाहिने होता है' दूसरा कह रहा था 'बायें है'। चीनवाले बड़े बुद्धिमान् होते हैं! उसने कहा 'जहाँ हो वहाँ हो, लेकिन 'राइट प्लेस में रहे' (अंग्रेजी में 'सही' और 'दायें' दोनों के लिये 'राइट' शब्द का प्रयोग होता है)। इसी प्रकार श्रुति कह रही है कि जहाँ मुझे अनुभव हो रहा है 'मैं शोकवाला हूँ, मैं मोहवाला हूँ, मैं बद्ध हूँ' बस वहीं ध्यान करना है। आचार्य शंकर कहते हैं–'तत्रास्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुद्धिविज्ञानं ग्राहकम्। सर्वगतोऽपीश्वरः तत्रोपास्यमानः प्रसीदति।' (सूत्रभा. १.२.७)। वहाँ करने से जो तुम्हें ज्ञान उत्पन्न होता है, वह परमात्मा को पकड़ता है अर्थात् वहीं उसका ज्ञान होता है। है वह सर्वव्यापक लेकिन ज्ञान वहीं होता है। ऐसे समझ लो : कमरे के अन्दर लट्टू जल रहा है, प्रकाश है। कमरे के अन्दर सब जगह प्रकाश फैला होने पर भी यदि उसका मूर्त रूप देखना चाहते हो तो लट्टू की तरफ देखना पड़ेगा। सूर्य का प्रकाश चारों तरफ फैला हुआ है, परन्तु यदि सूर्य का मूर्त रूप देखना चाहो तो आकाश में सूर्य की तरफ देखना पड़ेगा। कोई कहे 'यदि सूर्य सर्वव्यापक है तो उसी तरफ क्यों देखें, यहाँ भी सूर्य है?' है तो सही परन्तु यहाँ सूर्य जैसा है वैसा प्रतीत नहीं होता, मूर्त प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार सर्वत्र विद्यमान परमात्मा भी वहाँ बुद्धि के द्वारा ठीक प्रकार से ग्रहण होता है। सर्वव्यापक ईश्वर की वहीं जब उपासना की जाती है, तब वह प्रसन्न होता है, कृपा कर देता है।

अत्यन्त छोटा होते हुए भी हृदयाकाश व्यापक तत्त्व को कैसे दिखाता है? ऐसे समझ लो : तुम किसी किले के अन्दर हो। किला बहुत बड़ा है, चारों तरफ ऊँची दीवाल है, इसलिए बाहर की चीज़ तुम्हें नहीं दीख रही। दीवार में एक छोटा-सा छेद है। यदि तुम आँख छोटी करके उस छेद से देखो तो बाहर का सारा इलाका दिखाई देगा! तुम एक आँख बन्द कर लो, दूसरी आँख उस क्षेत्र में जमा लो तो तुम्हें किले के अन्दर की कोई चीज़ नहीं दिखाई देगी, किले के बाहर की सब चीज़ें दिखाई दे जायेंगी। वह है तो छोटा-सा छेद, परन्तु छोटे-से-छेद से बाहर की सब चीज़ें दिखाई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दे जायेंगी। इसी प्रकार है तो बाहर भी सारा परमात्मा का विस्तार, परन्तु यह जो तुम्हारी दीवाल बनी हुई है, इसके कारण तुम्हें परमात्मा का वास्तविक स्वरूप दीखता नहीं, 'मैं' के किले के अन्दर का तो सब दीखता है! दृष्टान्त में एक ही दीवार बता रहे थे, यहाँ तो पाँच दीवारें हैं! अन्नमय कोष की एक दीवार, मनोमय कोष की एक दीवार, प्राणमय कोष की एक दीवार, विज्ञानमय कोष की एक दीवार, आनन्दमय कोष की एक दीवार, इस प्रकार तुम पाँच दीवारों में बन्द हो! इसके अन्दर-ही-अन्दर का तुमको ज्ञान होता है, बाहर का कोई ज्ञान नहीं है। बाहर के व्यापक परमात्मा का तुमको ज्ञान करना होवे, तो यह जो ध्यान है, यही वह छोटा-सा छेद है।

कहो 'अहम् को हम देख तो रहे हैं, इससे व्यापक क्यों नहीं दीख रहा?' जैसे दीवार के छेद से देखो पर दोनों आँखें खोलकर, तो बाहर की व्यापकता नहीं दीखेगी, दीवार से बाहर का नहीं दिखाई देगा। अन्दर का सारा देखना छोड़ो और वहीं आँख लगाओ तभी व्यापक दीख सकता है। इसी प्रकार इन कोषों से अपनी दृष्टि हटाकर वहीं अपनी दृष्टि जमाते हो, तब पता चलता है। राग-द्वेष से रहित हो जाओ तो अन्दर की वासनाएँ तुम्हें प्रताडित कर नहीं सकतीं और तुमने अपनी चित्तरूपी आँख को वहाँ जमा दिया तो जो सत्यसंकल्प, सर्वकर्मा, सर्वरस, सर्वगन्ध स्वरूप वह वहाँ दीख जायेगा, उस व्यापकता का ज्ञान हो जायेगा। अतः वहीं उपासना करने से यह फल होता है। परमात्मा की अद्भुत कृपा है कि उन्होंने अपनी प्राप्ति के लिए यह छोटा-सा छेद रख छोड़ा है। छेद के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्दर आकाश अत्यन्त सूक्ष्म है। दीवार में यदि छेद बड़ा होता तो लोग उसको पाट देते कि कहीं दुश्मन न देख लेवे! छोटा है, इसलिए वह बचा हुआ है। इसी प्रकार परमेश्वर ने अहम् का छोटा-सा छेद रख छोड़ा है, जिससे तुमको सब चीज़ों का ज्ञान हो जाये। सबसे बड़ा होते हुये भी सबसे छोटे रूप को धारण करने क़ी सामर्थ्य उसके अन्दर है। रोज आप लोग महिम्न में पाठ करते हो—

'वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते ।।'

सारे आकाश में असंख्य तारे हैं, सभी गंगाजी में प्रतिबिम्बित हो जाते हैं! अतः गंगाजी का विस्तार भी असीम है, परन्तु भगवान् शंकर ने गंगाजी को सिर में धारण कर लिया तो वह एक बूँद से भी छोटी दिखाई देती हैं! जिस गंगाजी के अन्दर सारे तारे प्रतिबिम्बित होते हैं और गंगाजी के अन्दर जैसे फेन शोभा बढ़ाती है ऐसे ही वे सारे तारे शोभा बढ़ाते हैं, वही गंगाजी भगवान् शंकर के सिर में अत्यन्त छोटी 'हो गईं'। पर छोटी हो गई क्या? क्या छोटी कर दी होगी भगवान् ने? कहते हैं कि छोटी नहीं हुई

'जगद् द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतम्'

गंगाजी जो छोटी हुई दीख रहीं हैं उनके सिर पर, वही बाहर आती हैं तो सारे समुद्र को भर देती हैं और सारी पृथ्वी उसके अन्दर एक द्वीप की तरह हो जाती है! चारों तरफ के समुद्र को भरनेवाली गंगाजी जब तक भगवान् शंकर के सिर पर थी, तब तक दीखती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थी छोटी, पर अगर छोटी हो गई होती तो बहकर सारे समुद्रों को भरती नहीं।

'इति अनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः'

यह आपकी अद्भुत सामर्थ्य है, उसी से आपकी दिव्य महिमा का पता चलता है। विचार करो, एक-साथ ही वह बड़ी भी है और छोटी भी है। यही परमेश्वर की सत्यसंकल्प-शक्ति है। जैसे ही उसका संकल्प होता है, अत्यन्त असम्भव चीज़ भी सम्भव हो जाती है। एक ही साथ कोई चीज़ बड़ी हो और छोटी भी हो तो आपस में लगता है विरोध है। परन्तु सचमुच में बड़ी रह कर भी छोटी हो सकती है। जैसे गंगाजी सचमुच में बड़ी रह कर भी छोटी हो गई। इसी प्रकार तुम चेतनरूप से सर्वव्यापक हो, सर्वव्यापकता तुम्हारी कहीं गयी नहीं, सर्वव्यापक होते हुए ही तुम अपने को इन पाँच कोषों में बँधा हुआ समझ रहे हो। यही तुम्हारी अद्भुत सामर्थ्य है, यही तुम्हारी सत्यसंकल्पता है।

आचार्य शंकर ने भगवान् शंकर की बहुत बड़ी, सौ श्लोकों की स्तुति की है। अन्त में भगवान् शंकर ने दर्शन दिया। आचार्य उनकी स्तुति करते हुए कहते हैं : महाराज! आपने दर्शन दिया, यह ठीक काम नहीं किया। 'इदं ते युक्तं वा परमशिव कारुण्यजलधे' हे परमशिव! आप करुणा के समुद्र हैं। जो आपने अभी किया क्या ठीक है? क्यों ठीक नहीं है? आपके रूप को, सिर को देखने के लिए ब्रह्माजी हंस बनकर गये और भगवान् विष्णु आपके पैरों को देखने के लिये वराहरूप लेकर गये। सिर और पैर के दर्शन के लिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्युलोक और पाताललोक में दोनों जाते रहे। अत्यन्त थक गये पर एक को सिर नहीं दीखा और दूसरे को पैर नहीं दीखे! ऐसी सामर्थ्यवाले गये फिर भी उनको एक अंग भी नहीं दीखा। एक को खाली सिर दीख जाता यह भी नहीं हुआ, दूसरे को पैर दीख जाते पर यह भी नहीं हुआ। ऐसे रूपवाले आप पैर से लेकर सिर तक मुझे दिखाई दे रहे हैं! ब्रह्मा-विष्णु को सिर और पैर नहीं दीखे और मुझ पर आपकी इतनी कृपा है कि मेरे सामने आप सिर से पैर तक दीख रहे हैं! क्या यह आपके लिए योग्य है! अथवा, यह आपके ही योग्य है कि ऐसी असम्भव बात भी सम्भव कर लेते हैं। अनन्त मूर्ति धारण कर लेते हैं तो ब्रह्मा-विष्णु को भी पता नहीं चलता और कृपा करके प्रकट हो जायें तो मुझ जैसे साधारण व्यक्ति को भी दर्शन हो जाते हैं। सारी सृष्टिप्रक्रिया में विचार करो तो ऐसे ही विरोधी तत्त्व दीखते हैं। आग को बुझानेवाली चीज़ होती है पानी। आग को पानी बुझाता है पर ईश्वर की प्रक्रिया में आग से ही पानी पैदा होता है! पानी का बहना स्वभाव है, पानी को पत्थर रोकते हैं। पानी को बहने से रोकनेवाली मिट्टी या पत्थर पानी से ही पैदा होते हैं। आग का विरोधी जल आग से पैदा होता है और जल का विरोधी पत्थर जल से पैदा होता है! ये अत्यन्त विरोधी चीज़ें दीखती हैं किन्तु ईश्वर की सृजना शक्ति ऐसी है कि वे झट ऐसा कर देते हैं। यह विरोधाभास भगवान् के अन्दर पूरी तरह से विद्यमान रहता है।

'मार' नाम का एक बड़ा भारी वैदिक कर्मकाण्डी था। सभी यज्ञों में अत्यन्त प्रवीण था, साथ ही भगवान् शंकर का बड़ा भक्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी था। अपने काम में लगा रहता था और बाकी समय जहाँ 'त्यागीश्वर महादेव' हैं वहाँ जाकर भगवान् शंकर की सेवा करता था। उनके मन्दिर में जाकर पंचाक्षरी 'नमः शिवाय' का जप करता था। पत्नी को उसने कह रखा था 'जो कोई भी भगवान् शंकर के रूप में आवे उसे भोजन-वस्त्र आदि जो भी आवश्यकता हो यथासम्भव देती रहना। काफी दिनों यह क्रम चलता रहा। उसके मन में बार-बार आवे कि 'इसी शरीर के अन्दर रहते हुए त्यागीश्वर महादेव को साक्षात् मैं देखूँ इसका क्या उपाय है'—यही विचार करता रहता था। वह अनेक लोगों से पूछता रहता था, परन्तु कोई उसको ठीक बात बतला नहीं पाये। अन्त में उसे पता चला कि भगवान् शंकर का एक अत्यन्त भक्त है 'सुन्दर' जो भगवान् शंकर से बात-चीत निरन्तर करता रहता है।

उसने सोचा कि 'उनका भगवान् के साथ इतना सम्पर्क है, तो किसी तरह वे मुझे मिल जायें तो ठीक रास्ता बता सकेंगे। किन्तु यों ही सुन्दर से पूछेंगे तो वह काहे के लिये बतायेगा!' ब्राह्मण था, तपस्वी था, होशियार था, उसने विचार किया कि यदि यह पता लग जाये कि सुन्दर को खाने में सबसे अच्छी चीज़ क्या लगती है, और वह उसको खिलायी जाये तो वह प्रसन्न हो जायेगा। उसने धीरे-धीरे सुन्दर के रसोइये से दोस्ती गाँठी। परिचय अच्छा हो गया तो पूछा 'अरे भाई, तुम्हारे मालिक को खाने में सबसे ज्यादा क्या चीज़ पसन्द आती है?' रसोइए ने बतलाया 'श्वेत-अर्क इनको बहुत पसन्द है, उसका शाक भी खाते हैं, उसके फल को, पत्तों को भी खाते हैं। वही इनको पसन्द है। किसी-न-किसी रूप में वह जरूर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन्हें चाहिए खाने के लिए और बहुत प्रेम से खाते हैं।' मार ने पता लगाना शुरू किया कि श्वेतार्क मिलता कहाँ है? ढूँढते-ढूँढते चार कोस, आठ मील की दूरी पर मिला, वहाँ बहुत पैदा होता था। उसने नियम कर लिया कि रोज वहाँ जाकर लेकर आना और चुपचाप सुन्दर के घर के सामने रख देना। रसोईया उसे ले लेवे और बना देवे गरम-गरम, पसन्द की चीज़ उसकी। रसोइये ने समझा सुन्दर ने इसे कह दिया होगा रोज ले आया कर इसलिए रोज ले आता है। सुन्दर भी खा कर बड़े प्रसन्न होने लगे, उन्होंने सोचा कि रसोइया बाजार से ले आता होगा। करीब-करीब एक साल होने को आया और मार रोज लाकर रखता रहा।

एक दिन ज़ोर का पानी बरसा। जहाँ वह श्वेतार्क लेने जाता था, वहाँ बीच में एक छोटी नदी पड़ती थी। रोज़ तो उसे पार करके ले आता था, बरसात में वह नदी इतनी ऊपर चढ़ गई कि वह जाकर ला नहीं सका! तीन दिन हो गए, सुन्दर ने पूछा रसोइये से 'अरे, क्या बात हुई आज अर्क नहीं बना? बाजार में मिला नहीं क्या?' रसोइए ने कहा 'महाराज, हम लोग बाजार से नहीं लाते थे।' पूछा 'तो आता कैसे था?' रसोइये ने कहा 'मार लाकर रख देता था, हमने सोचा आपने उसे कह दिया होगा तभी वह ला देता है।' उन्होंने कहा 'वह जब भी आवे तुरन्त उसे मुझसे मिलाना।'

तीन दिन बाद जब पानी उतरा तो वह श्वेतार्क लेकर वहाँ पहुँचा। रसोइए ने कहा 'सुन्दर आपसे मिलना चाहते हैं। उन्होंने कहा है कि जब भी आवे हमसे मिलाना।' उनके पास प्रसन्न होकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गया कि आज तो मेरा काम बन गया! सुन्दर ने पहचान लिया 'तुम सोमयाजी ब्राह्मण हो! मैं साधारण आदमी हूँ, मेरे लिए यह सब क्यों करते हो, क्या बात है?' भगवान् शंकर के आठ शरीर रोज़ आप महिम्नःस्तोत्र में बोलते ही हैं—पाँच महाभूत (तेज, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश), दो काल-निर्णय करनेवाले सूर्य-चन्द्र और आठवाँ यजमान। सुन्दर ने कहा 'आप सोमयाजी ब्राह्मण होने के साथ-साथ साक्षात् भगवान् शंकर के यजमानरूप आठवें स्वरूप हैं। मैं साधारण आदमी हूँ। मेरे लिए आपने इतना कष्ट क्यों किया?' मार ने कहा 'आप भगवान् शंकर के बहुत बड़े भक्त हैं। आगे आनेवाले वैशाख के महीने में मैं यज्ञ करने जा रहा हूँ, जिसके देवता भगवान् शंकर हैं, मैं चाहता हूँ कि आपका भगवान् शंकर के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है, मेरे यज्ञ में आकर वे साक्षात् हवि को ग्रहण कर लेवें, भोग लगा लेवें। बस, आपके सहयोग से मैं यही चाहता हूँ।' सुन्दर भोला-भाला था, कहा 'इतनी-सी बात के लिए साल-भर क्यों कष्ट किया! तुम बतला दो कब लाना है।' उसने बतला दिया कि वैशाख सुदी एकादशी को आहुति होगी, वे आएँ और साक्षात् हवि को ग्रहण करें, साक्षात् भोग लगायें।

एक-दो दिन में सुन्दर को भगवान् से बात करने का मौका मिला तो उन्होंने कहा। पहले तो भगवान् शंकर ने उन्हें बहुत डाँटा 'सोचे-समझे बिना तू वहाँ कैसे कह आया! ब्रह्मा-विष्णु इत्यादि देवता भी अपने मुख से भोग नहीं लगाते, हवि ग्रहण नहीं करते, अग्नि के द्वारा ही ग्रहण करते हैं। छोटे देवता भी किसी के हाथ से ग्रहण नहीं करते और तुम मुझे ग्रहण करने के लिए कह रहे हो!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह नहीं हो सकता है।' सुन्दर कई बार उनके सामने आर्त प्रार्थना करने लगा, 'गलती तो मुझ से हो गई, परन्तु मैंने हाँ कर दिया है, मुझे झूठा मत बनाना।' अन्त में भगवान् शंकर ने कहा, 'अच्छा, अगर तुम्हारा इतना ही आग्रह है, तो मैं आऊँगा लेकिन मेरी एक शर्त है; मैं किसी भी रूप में आऊँ वह उसी रूप में मेरा आदर करे और मुझे समझ लेवे।' सुन्दर ने कहा 'मैं उसे कह दूँगा।' जाकर कहा 'भाई, भगवान् ने आना मंजूर तो कर लिया लेकिन किसी भी रूप में आ सकते हैं, तुम घबराना नहीं। यह जो वेद का वाक्य है 'सर्वो वै रुद्रः' सब रुद्ररूप है, इस बुद्धि को बिना छोड़े वे किसी भी रूप में आवें उनको उसी रूप में स्वीकार करके आदरपूर्वक पूजन करना। उसमें अपने मन में कोई शंका मत लाना।' उसने कहा 'बात तो ठीक है, परन्तु मैं पहचानूँगा कैसे? आप मुझे बतला देना कि भगवान् आ गए। आयें किसी भी रूप में, मैं उनका स्वागत करूँगा।'

वैशाख मास आया। उसने यज्ञ प्रारम्भ किया, सारा यज्ञ विधिवत् सम्पन्न भी किया। एकादशी का दिन आ गया। वह सोच ही रहा था कि भगवान् आयेंगे, सारी आहुतियों की तैयारी हो गई, ऋत्विक् ने मन्त्र बोल दिया। ठीक जिस समय भगवान् रुद्र को आहुति देने का समय था अकस्मात् एक चाण्डाल अपने गले के ऊपर एक मरे बछड़े को डाले हुये, साथ में उसकी चाण्डालिन सिर पर शराब का घड़ा रखे हुये, दो बच्चे, और साथ में चार कुत्ते लिये यज्ञ की तरफ बढ़ते हुये आ रहे थे। जैसे नशे में चलते हैं, नशे में बोलते हैं, वैसे ही बोल रहे थे। वहाँ जितने ऋत्विक् ब्राह्मण थे, वे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चिल्लाने लगे 'अरे ये कैसे आ गये। इन्हें दूर हटाओ। यज्ञवेदि अपवित्र हो जायेगी।' सुन्दर ने दूर से ही संकेत कर दिया कि भगवान् आये हैं। मार उनका स्वागत करने के लिए जाने लगा तो सारे पण्डित बोलने लगे 'देखो! यह तो यज्ञ को भ्रष्ट करने के लिये उधर जा रहा है।' वे सब लोग वहाँ से भाग गए। कुछ लोग इतनी जोर से भागे कि गिर भी पड़े, डर गए। उसने उनको आदर-पूर्वक नहलाया बैठाया, बैठाकर अर्घ्य दिया और आँखें बंद कर ध्यान करने लगा तो देखता है कि वह चाण्डाल साक्षात् भगवान् शंकर हैं। वह जो मरा बछड़ा है, वह वृषभ है, नन्दी है। साथ में जो चाण्डालिन है वह भगवती पार्वती है और गंगाजल उनके सिर के ऊपर घड़े के अन्दर है। गणेश और कार्तिकेय उनके दोनों तरफ हैं। सारे देवता और गन्धर्व स्तुति कर रहे हैं, फूल चढ़ा रहे हैं। इस प्रकार से दिखाई दिया। जो विश्वरूप की माया है उसके द्वारा शम्भु का दर्शन हुआ। केवल उन्हीं का दर्शन वहाँ नहीं, सारा-का-सारा चर और अचर जगत् भगवान् शंकर के अन्दर दीख गया। उसकी आँखों से जल निकलने लगा, वह अत्यन्त प्रसन्न हो गया और जो आहुति का नैवेद्य था, वह उसने भगवान् शंकर के हाथ में दिया, भगवान् ने उसे ग्रहण कर लिया। ग्रहण करके भगवान् अंतर्हित हो गए।

यह है उनकी विरोधाभासिता : एक तरफ परमात्मा न खाता है न पीता है, यहाँ तक कि साधारण देवता भी कुछ खाते-पीते नहीं। वेद कहता है कि देवता न खाते हैं, न पीते हैं। वे तो देवों के महादेव हैं, उनका खाने-पीने से कोई मतलब ही नहीं। फिर भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्यन्त करुणामय होने से सोमयाज्ञिक से इस प्रकार नैवेद्य ग्रहण करके उसका कल्याण किया। तत्त्व अत्यन्त अल्प नहीं अतः मनुष्य उसे अत्यन्त अल्प सुनकर घबरा जाता है। सुन्दर ने सावधान किया था 'जिस रूप में भी आवें, तुम उन्हें पहचान लेना।' ऐसे ही अत्यन्त छोटा रूप तुम्हारे हृदय पुण्डरीक के अन्दर है। तुम्हारे हृदय पुण्डरीक के छिद्र की छोटी-सी जगह में उसी परमेश्वर का दर्शन होता है।

विचार करके देखो : जो भी परमेश्वर के मार्ग में चला है, वह सोम अर्थात् भगवान् शंकर के लिये ही अपने कर्मों को करता है। भगवान् शंकर के निमित्त नियमों को करता है, परन्तु मन में इच्छा रखता है कि उनके दर्शन होवें। दर्शन कैसे होवें? जैसे मार सुन्दर के पास गया वैसे जो परमेश्वर का भक्त है वह जो परमेश्वर से आत्मसम्बन्धवाले गुरु हैं, उनके पास जाता है। वे कहते हैं 'तुम्हें दर्शन हो जायेंगे।' सृष्टि करना, स्थिति करना, लय करना, प्रलय करना, तिरोधान करना, अनुग्रह करना, कर्मफल देना—ये सब परमेश्वर के कृत्य बतलाये हैं। जिनका कभी मल से स्पर्श नहीं हुआ ऐसे ये सब उस परमेश्वर की ही सत्यसंकल्पनाएँ हैं। सृष्टि तब बतलाई है जब कोई मन था ही नहीं! महाप्रलय में तो कोई मन था ही नहीं, उस समय सृष्टि करने वाला कोई देव तो हो नहीं सकता क्योंकि मन की उपाधि वहाँ है नहीं। अतः सृष्टि कर्म ईश्वर का है और वहाँ अकर्म भी निहित है अर्थात् वहाँ उसकी प्राप्ति भी नहीं है। इन कृत्यों को छोड़कर बाकी सबमें जीव उपासना से सत्यसंकल्प हो सकते हैं। जीव सृष्टि इत्यादि करने में अधिकृत हो ही नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकता। यदि सृष्टि इत्यादि करने में जीव अधिकृत हो जाए तो दो जीवों के परस्पर विरुद्ध संकल्प व्यवस्था चलने ही न दें। पर सृष्टि के अन्तर्गत भोग के लिए संकल्प में सामर्थ्य हो तो कोई विरोध नहीं।

इसलिए यहाँ उपासना के गुणों में सृष्टि-स्थिति-संहार का नाम लिया ही नहीं है। जो गुण यहाँ कहे हैं, वे सारे प्रकट हो सकते हैं, इनसे अन्य जो ईश्वर के गुण हैं, वे ईश्वर के ही हैं। यह उपासना का प्रकरण है। महर्षि शाण्डिल्य ने इस विद्या का प्रथम प्रतिपादन किया इसलिए इसे 'शाण्डिल्य विद्या' कहते हैं। परमात्मा का इस प्रकार से अनुभव करके आप लोग कल्याण के भागी बनें।

❖

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन : सत्रहवाँ

(१५.४.९८)

सामवेद की कौथुमी शाखा की छान्दोग्य उपनिषद् के तीसरे अध्याय के चतुर्दश खण्ड में चतुर्थ मन्त्र का विचार चल रहा है। मूल मन्त्र है—

सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः। एष म आत्मान्तर्हृदय एतद् ब्रह्मैतमितः प्रेत्याभिसम्भवितास्मीति यस्य स्यादद्धा न विचिकित्सास्तीति ह स्माह शाण्डिल्यः शाण्डिल्यः।।४।।

पूर्व मन्त्र में परमेश्वर का ध्यान कहाँ करना है, यह बतलाया। ध्यान किस प्रकार करना है, इसे अब बतलाते हैं। जो रूप पहले बतला आये हैं, उसी रूप का इसी अंश में पुनः कथन किया। सर्वकर्मा, सारे कर्मों को करनेवाला तत्त्व सर्वव्यापक है, वाणी का अविषय है, संकल्प से रहित है, यह आत्मा मेरे हृदय में है, यही ब्रह्म है। इस बात का जब आदमी को निश्चय हो जाता है तब इस बात को जान लेता है कि जब यहाँ से मरकर जायेगा तब ब्रह्मरूप में ही स्थिर हो जायेगा। जिसे इस विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है, वह ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है। यह उपदेश महर्षि शाण्डिल्य ने दिया। 'महर्षि शाण्डिल्य ने दिया' यों दो बार उनका नाम लेकर इस उपासना की समाप्ति का निर्देश किया।

प्रश्न होता है कि ध्येयरूप को पुनः क्यों कहा गया? जब किसी चीज़ के गुण का निरूपण करते हैं, तो कई गुण चीज़ों के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साथ रहते हैं, पर कई नहीं रहते। ठीक से समझना : कहते हैं 'राजपुरुष को लाओ'। सिपाही को राजपुरुष कहते हैं क्योंकि वह राजा का अधिकृत पुरुष है। परन्तु जब तुम राजपुरुष को लाओगे, तब राजा तो नहीं आयेगा! या आजकल की भाषा में समझ लो, तुम कहते हो 'गजेटेड ऑफिसर आये हैं' तो क्या अपना गजट अपने सिर के ऊपर लाद के लाये हैं? या कहते हो 'सरकारी अफसर आया है', तो क्या सरकार को साथ लेकर आया है? अथवा जिसके पास तरह-तरह की गायें हैं, अनेक गायोंवाला है, ऐसा डेयरी का मालिक आये, तो क्या वे अनेक गायें उसके साथ आती हैं? जिसने समुद्र-यात्रा की है, उसको लेकर आयें, तो क्या वह समुद्र को अपने सिर पर लेकर आयेगा? यद्यपि यहाँ पर समुद्र-यात्री, सरकारी अफसर, राजपुरुष, गजेट वाला अफसर–ये सब शब्द जरूरी हैं उस व्यक्ति को बताने के लिये, यह नहीं कह सकते कि जो कहा गया, उसका कोई उपयोग नहीं है; उपयोग है; क्योंकि ये शब्द उस व्यक्ति का निर्देश कर देते हैं; तथापि निर्देश करने पर भी ये गुण ऐसे नहीं हैं कि उनके साथ आयें।

कई गुण ऐसे होते हैं, जो साथ ही आयेंगे। जैसे हमने कहा 'सफेद रंगवाली गाय को लाओ।' सफेद रंगवाली गाय सफेद रंग के साथ ही आयेगी। 'समुद्र देखे हुये को लाओ', यहाँ तो समुद्र साथ नहीं आयेगा, परन्तु 'सफेद रंगवाली गाय को लाओ' तो वह सफेद रंग साथ ही आयेगा। कुछ गुण होते हैं, जो दूसरी चीज़ों से अलग भी करते हैं और साथ में नहीं भी रहते। सामान्यरूप से विशेषण का उपयोग है कि दूसरी चीज़ों से अलग करके बतावे। कहीं एक ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फूल रखा है, तो आदमी कहता है 'खिड़की में रखे हुए फूल को ले आओ'। परन्तु वहाँ सफेद फूल भी है, लाल फूल भी है। देवी जी की पूजा करने जा रहे हैं, इसलिये लाल फूल की आवश्यकता है, तो कहना पड़ता है 'खिड़की से लाल फूल ले आओ।' क्यों कहना पड़ता है? यदि कहें 'फूल ले आओ' तो वह सफेद फूल भी लेकर आ सकता है। विशेषण का प्रयोजन हमेशा किसी चीज़ को अलग करके बताना है, व्यावृत्त करना है। विशेषण दो प्रकार के हैं–एक, जो चीज़ के साथ हमेशा रहेंगे और दूसरे विशेषण जो अलग कर बता भी देंगे, परन्तु साथ नहीं आयेंगे, जैसे हमने कहा 'सरकारी अफसर', 'अनेक गायों वाला' तो वहाँ सरकार और गायें साथ नहीं आयेंगी, परन्तु दूसरे लोगों से इस व्यक्ति को अलग कर बताने के लिये उन विशेषणों को कहना जरूरी है।

परमेश्वर का स्वरूप बताते हुए कहा था कि वह सर्व कर्म करनेवाला है, सारी कामनाएँ करनेवाला है, सारे गन्धों को लेने वाला है, सारे रसों को लेनेवाला है, सर्वत्र व्यापक है। ये सब उसके गुण बतलाए थे। क्या ये गुण ध्यान-काल में रहनेवाले हैं या नहीं रहनेवाले हैं, अर्थात् ध्यान के समय इनका ध्यान करना है या नहीं करना है? शंका हो सकती थी कि नहीं करना है। परमेश्वर तो बतला दिया इन गुणों से, परन्तु ध्यान करते समय इनका ध्यान करना जरूरी नहीं है। अतः ध्यान *कैसे* करने के प्रसंग में इन्हीं को फिर से कह रहे हैं, जिससे स्पष्ट हो जाये कि ध्यान के समय ये सब गुण तुम्हारे सामने उपस्थित रहने चाहिए। इन गुणों का ध्यान करना है; क्योंकि यह सगुण ब्रह्म का ध्यान है। बृहदारण्यक उपनिषद् में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बतलाया : हृदय-शब्द में तीन अक्षर हैं–हृ,द,य। सारी इन्द्रियाँ बाहर से विषयों को हरण करके हृदय में ला करके विज्ञान को उत्पन्न करती हैं। हृ अर्थात् हरण का मतलब है, आहरण, अन्दर लाना। इन्द्रियाँ बाहर से विषयों को अन्दर ला कर ज्ञान को उत्पन्न करती हैं, जहाँ तुम्हें लगता है 'मैंने लाल रंग जाना, मैंने पीला रंग जाना, मैंने हरा रंग जाना, मैंने रसगुल्ला खाया।' अनुभव-विषय तो बाहर हैं, उन विषयों को इन्द्रियाँ लाईं, लानेवाली इन्द्रियाँ हैं, लेकिन लाकर समर्पण तुमको किया। यह सब हरण करके 'मैं' को लाकर दिया। द के द्वारा उन्हें कहा जो दूसरे महाभूत, दूसरे प्राणी तुम्हें देते हैं। इसका अनुभव कहाँ होता है? किसी के निमन्त्रण पर तुम गये, उसने तुम्हें ऊँचे आसन पर बैठाया अर्थात् सम्मान दिया, तो उसने तुम्हारे शरीर को ऊपर बैठाया, परन्तु तुम्हें जहाँ अनुभव होता है 'मैं यहाँ सम्मानित हुआ, मुझे यहाँ सम्मान मिला' वह हृदय ही है। यहाँ विषय का हरण नहीं है। आसन ऊँचा है, बहुत बढ़िया ज़री का बना हुआ, सलमे सितारे लगे हुए हैं, खीनखाब का बना है। जो भी उस आसन पर बैठेगा, इन्द्रियाँ उसे वैसा ही देखेंगी। इन्द्रियों के द्वारा आसन का ज्ञान वही होगा, तुम बैठे तो, दूसरा बैठे तो, तुम्हारे दुश्मन को वहाँ बैठा दिया जाए तो; इन्द्रियों से तो एक ही ज्ञान होगा, लेकिन तुमको बैठाने से जो तुमको ज्ञान हो रहा है 'मुझे आदर दिया गया' यह इन्द्रियों से नहीं लाया गया। इसी प्रकार से किसी ने तुम्हारी निन्दा की, निन्दा करने पर शब्द सुनाई दिये 'बड़ा बदमाश है, गुण्डा है, रुपया खानेवाला है, हवाला करनेवाला है' यों तुम्हारी निन्दा की। तुम्हारे दुश्मन के बारे में यही कहेगा तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कान उन्हीं शब्दों को सुनेंगे, परन्तु जैसे लगा था कि इसने सम्मान दिया, वैसे यदि तुम्हारे लिये बुरा कहा तो 'यह मेरा अपमान कर रहा है' यह अनुभव ऐन्द्रिय नहीं। इन्द्रियों से विषयों का ज्ञान जहाँ हरण करके आता है और दूसरे लोग जो तुमको सम्मान इत्यादि देते हैं, वह जहाँ अनुभव होता है, वह हृदय है। 'मैं सम्मानित हुआ' लगता है, ऐसा तो बोध नहीं होता कि शरीर सम्मानित हुआ!

जब वाइस राय हुआ करते थे, तब उन्हें जो भेंट दी जाती थी, वह सारी ब्रिटिश गवर्नमेंट की भेंट मानी जाती थी, वह सारा सरकारी हिसाब में जमा हो जाता था। वाइस राय का मतलब होता है, राजा का प्रतिनिधि। जैसे राष्ट्रपति काम न करे तो राष्ट्रपति की जगह जो काम करेगा उसे 'वाइस प्रेसिडेंट' कहते हैं। वैसे ही 'राय' मायने रॉयल्टी, राजा। जो राजा की जगह काम कर रहा है, वह हुआ वाइस राय। इसलिए उसे जो भी दिया गया है, वह राजा को ही दिया गया है। अतः वह चला जाता था राजा के पास। हम चाहते थे वाइस राय को खुश करें तो हम वाइस राय को नहीं देते थे, बढ़िया हीरों का हार, मोतियों की लड़ी वाइस राय को न देकर उसकी पत्नी को दे देते थे! वह तो सरकार के यहाँ जाता नहीं था, वह वाइस राय के घर ही जाता था। उसके शरीर को भी नहीं दिया फिर भी वह मानता था कि इसने 'मेरा' सम्मान किया 'मुझे' उपकृत किया। 'मुझे उसने उपकृत किया' यह दूसरे व्यक्ति के व्यवहार से होनेवाला ज्ञान इन्द्रियों का विषय नहीं है। इसका जहाँ अनुभव होता है, वह बताने के लिए 'हृदय' में द वर्ण है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जहाँ पर सुख का अनुभव करता है वह हृदय है। सुख से दुःख भी समझ लेना। सुख और दुःख का जहाँ अनुभव करते हैं वह हृदय है। सुख-दुःख का अनुभव कई बार इन्द्रियों के विषय ग्रहण के बाद भी होता है, कई बार दूसरों ने जो दिया उसके बाद भी होता है और कई बार इन दोनों चीज़ों के बिना भी होता है! जैसे हमें ज़ोर का बुखार आ गया, सिर फट रहा है–यह तो इन्द्रियों से भान हुआ। अब जोर से पसीना आया, उतर गया। तब जो सुख होता है, वह इन्द्रियों का विषय तो है नहीं, न किसी दूसरे ने दिया है। परन्तु रोगमुक्त होते ही, दुःख की निवृत्ति होते ही अपने अन्दर ही सुख होता है, उसका भी हृदय में अनुभव होता है। इसे 'य' वर्ण से कहा। ये तीनों चीज़ें, हृ, द और य, जहाँ होती हैं, वह हृदय है।

जहाँ ये तीन अनुभव होते हैं, इस बात को समझना है कि वही सर्वकर्मा है। सब कर्मों को करनेवाला है। 'सब कर्मों को करने वाला है' यह तुम्हारा ज्ञान नहीं है, यह ध्यान है। ठीक जिस प्रकार से सामने शालिग्राम है, शालिग्राम या मूर्ति में तुम विष्णु का ध्यान करते हो, शालिग्राम या मूर्ति तो विष्णु नहीं है। मूर्ति यदि विष्णु हो तब तो मूर्ति के टूटने से विष्णु का मरना मानना पड़ेगा! मूर्ति विष्णु नहीं है, परन्तु मूर्ति या शालिग्राम में तुम विष्णु का ध्यान करते हो, यह विष्णु है ऐसा सोचते हो। इसी प्रकार जहाँ तुमको हृ-द-य ये अनुभव हो रहे हैं, वहीं यह सोचना है कि सारे कर्म यहीं से उत्पन्न होते हैं। क्यों? विचार करो, जहाँ कहीं कर्म का अनुभव होगा वहाँ पहले तुम्हें अपना, मैं का, हृदय का अनुभव होगा तभी किसी कर्म का अनुभव होगा। कोई भी कर्म तुमको अनुभव में तब आयेगा जब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम होगे। जो जिसके बिना नहीं हो सकता वह उसी का कार्य होता है। यह सामान्य नियम है। जैसे बिना मिट्टी के घड़ा नहीं मिलता, तो घड़ा मिट्टीरूप हुआ करता है। जिस भी चीज़ का तुमको अनुभव होता है, वह मैं के बिना नहीं होता, इसलिए मैं ही सर्वकर्मा सर्वकाम सर्वगन्ध सर्वरस है।

लेकिन उस 'मैं' में ये सब हैं, यह नहीं कह रहे हैं! वैसा होता तो ज्ञान होता। मैं के अन्दर इन चीज़ों का तुमको *ध्यान* करना है। 'मैं' क्यों कर्म कर पाता है, क्योंकि सर्व कर्म करनेवाला परमेश्वर यहीं हृदय में बैठा हुआ है इसलिये। क्यों मैं कामना कर पाता है, तो सर्वव्यापक परमेश्वर यहीं बैठा हुआ है, इसलिये। सब भावनाएँ होती हैं, क्योंकि परमेश्वर वहाँ बैठा हुआ है, इसलिए। इन्द्रियाँ मैं को क्यों अर्पण करती हैं? क्योंकि यहीं परमेश्वर बैठा हुआ है इसलिए। यह हमें भ्रम है कि इन्द्रियाँ मुझे दे रही हैं! इन्द्रियाँ तो परमेश्वर को दे रही हैं, दूसरे लोग आदर परमेश्वर को दे रहे हैं। जिस पिता के चरणों का स्पर्श करने से हमें पुण्य होता है, उसी पिता के हृदय से जब परमेश्वर चला जायेगा तो उसे छू कर नहाना पड़ेगा! जब तक उसे छूने के बाद नहायेंगे नहीं तब तक पानी भी नहीं पी सकते। जिस पति के साथ पत्नी साठ साल से रोज़ सो रही है, वह पत्नी जो हमेशा पति के साथ अकेले में रहना चाहती है, जिस समय यह परमेश्वर चला जाए तो उसके पास अकेले बैठने में डरती है। शाम के समय यदि पति मर जाये तो दस ग्यारह बजे तक सब लोग बैठे रहते हैं, फिर धीरे-धीरे सब खिसकने लगते हैं। जब अन्तिम व्यक्ति जा रहा हो, तब वह कहती है 'अरे तुम भी जा रहे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो, ज़रा बैठो।' क्यों, क्या बात है? डर लगता है। किस से डर लगता है? उसी से डर लगता है, जिसके साथ साठ साल से रह रही थी। आज क्या हो गया? अन्दर में रहनेवाला परमेश्वर चला गया। इस सबसे समझ आता है कि इन्द्रियाँ लेकर आती हैं तो उसके लिए, दूसरे आदर देते हैं तो उसके लिए, सुख-दुःख होते हैं तो उसको। जब बाँस की खपच्चियों पर लिटाकर डोरी से बाँध देते हैं, तब क्या कोई कहता है कि उसके नीचे गद्दे लगाओ, उसे तकलीफ होगी! तुम्हारे अन्दर विद्यमान ईश्वर है, इसलिए सुख-दुःख हो रहे हैं, मान-सम्मान हो रहे हैं, इन्द्रियाँ सब लेकर आ रही हैं। इसीलिए जहाँ हृदय है, वहीं ईश्वर का ध्यान करना है।

सारे कर्मों को करनेवाला, सारे रसों को देनेवाला, सारे गन्धों में रहनेवाला वह परमात्मा है। वह तुममें और हममें अलग-अलग नहीं। इसलिए भगवान् ने स्पष्ट कह दिया 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे तिष्ठति' सारे प्राणियों में रहनेवाला वह ईश्वर है। इन्द्र के शरीर में रहनेवाला और तुम्हारे शरीर में रहने वाला दो नहीं, एक ही है। वही सबको 'घुमा' रहा है। यहाँ कहा कि वही सब कर्म कर रहा है, वही परमात्मा तुम्हारे शरीर में बैठकर तुम्हारे शरीर के कर्म कर रहा है और चोर के शरीर में बैठकर चोर के कर्म करनेवाला भी वही है। बड़े भारी नगरसेठ के शरीर को चलानेवाला भी वही है। यह चिन्तन बार-बार करना है।

ऐसी स्थिति होने पर भी वह है कैसा? उपनिषत् कहती है—

'हृत्पुण्डरीकं विरजं विशुद्धं
विचिन्त्य मध्ये विशदं विशोकम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तररूपं
शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम् ।।'

हृदय कैसा है? पुण्डरीक, कमल की शक्ल का है। कमल जैसे ही सूर्य उदय होता है, खिल जाता है। जब जाग्रत्-स्वप्न के अन्दर अंतःकरण में आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है, जब वह सामने आता है, तब तो यह हृदय-कमल खिल जाता है और सुषुप्ति के समय जैसे ही वह लीन हो जाता है, वैसे ही यह हृदय कमल भी बन्द हो जाता है। यह हृदय निर्मल है। इसमें किसी भी प्रकार का रजोगुण का लेश नहीं है। इन्द्रियाँ इसे लाकर देती हैं, परन्तु यह उनके रज से, धूल से स्पर्शवाला नहीं होता। रजोगुण का सम्बन्ध इस हृदय के साथ नहीं होता। कल दृष्टान्त आया था, दीवार के अन्दर जो छिद्र वह न बाहर के दोषों से दोषवाला होता है, न अन्दर के दोषों से वह छिद्र दोषवाला होता है। जिस प्रकार से यह आकाश हमेशा स्पष्ट बना रहता है, चाहे जितना धुआँ, धूल-धक्कड़ हो जाये, परन्तु उसके होने से आकाश के ऊपर कोई रंग आ जाए यह नहीं होता है। धूलादि वहाँ दीखते जरूर हैं, लेकिन दीखते हुए भी वहाँ हैं नहीं। अभी जेठ का महीना आयेगा, तेज धूप पड़ रही होगी, आकाश में देखकर लगेगा जैसे आग बरस रही है। पर क्या आकाश कुछ सिकुड़ जायेगा? जैसे ही सूर्यास्त होगा, थोड़ी ही देर में आकाश फिर वैसा ही ठण्डा दीखने लगेगा। आकाश में धूल उड़ेगी वैशाख-ज्येष्ठ में, पानी पड़ा तो धूल बैठ गई, आकाश में कोई परिवर्तन आया क्या? तुम्हारे कपड़ों पर धूल पड़ी तो उसको धोना पड़ता है, सोने-चाँदी के गहनों पर धूल पड़ी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो धोना पड़ता है, आकाश को ब्रश लेकर धोना पड़ता है क्या? उसे छिद्ररूप इसलिए कहा, आकाश इसलिए कहा कि वहाँ रज का कोई लवलेश नहीं है। चाहे-जितना रजोगुण-तमोगुण दीखे, परन्तु वह सारे दोषों से रहित है। नित्य ही शुद्धस्वरूप है।

यह जो उसकी सामर्थ्य, वह 'अचिंत्यम्', तुम इसको सोच नहीं सकते, इसका चिन्तन नहीं कर सकते। बड़े-से-बड़े डाकू के शरीर के अन्दर वह डकैती कर रहा है। बड़े-से-बड़े साधु के शरीर के अन्दर बैठकर आत्मज्ञान कर रहा है। दोनों ही चीज़ें एक ही क्षण में करने की शक्ति दे रहा है, परन्तु न उसके अन्दर डकैती का फल आता है, न साधना का फल आता है। जीव में आता है; क्योंकि जीव अज्ञानवाला है। दोष आने का कारण होता है अज्ञान, अज्ञान से रहित होने से ईश्वर इससे अस्पृष्ट है। तुमने अपने अहम् को मन के साथ जोड़ कर रखा है, इसलिए तुम दोष के भागी बनते हो। परमेश्वर का ज्ञान चिन्मात्र है इसलिए वह वैसे का वैसा रहता है। दूसरे दृष्टान्त से समझ लो : रस्सी में तुमको साँप दीखता है तो तुमको डर लगता है, लेकिन रस्सी में साँप हो जाने से रस्सी में कोई फर्क आया क्या! साँप किससे बना? रस्सी से बना, रस्सी है तो साँप दीखेगा; परन्तु वह साँप रस्सी में कोई प्रभाव नहीं डालता है। इसी प्रकार सर्वकर्मा, सर्वरस, सर्वगन्ध आदि सब होने पर भी सारे संसार का अधिष्ठान होने पर भी परमात्मा तो विशुद्ध है। चूँकि हमें अज्ञान से सर्प दीख रहा है, इसलिए हम उस दुःख के भागी, उस डर के भागी बनते हैं। यह परमेश्वर की शक्ति अचिंत्य है। गीता में भगवान् ने कहा 'इन चारों वर्णों को मैंने बनाया' और अगली ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पंक्ति में कहते हैं 'इन सबको करते हुए भी तू मुझे अकर्ता जान। इन सबको करनेवाला जो मैं उसको अकर्ता समझ।' यहाँ कह रहे हैं, अचिंत्य है। सब कुछ करते हुए भी वह कुछ नहीं करता है; क्योंकि वह तो अपने अधिष्ठानस्वरूप में है। इसलिए वह अव्यक्त है, कभी व्यक्त नहीं होता! अनन्तरूप है, परमशान्त शिव है। वही सारे जगत् का कारण है।

उसका ध्येय शरीर बताया—

'उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं
त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं
समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात्॥'

चित्त में उपस्थित तत्त्व उमासहाय है। माया शक्ति के साथ वहाँ स्थित है। यहाँ सगुण ब्रह्म का ध्यान है। सारी सृष्टि के अनन्त रूपोंवाला बनने की सामर्थ्य से युक्त होकर वहाँ है। है वही, परन्तु सर्वसामर्थ्य से युक्त है। 'उमासहायं' से लग सकता है कि माया की सहायता से चलता है। जो दूसरे की सहायता से चलता है, लोग कह देते हैं कि वह उसके पराधीन है। यहाँ ऐसा भ्रम न रहे इसलिए कहा 'परमेश्वरम्' उस माया पर परम शासन करनेवाला है। माया की सहायता का मतलब यह नहीं कि उसके अधीन है! माया उसके बिना क्षणमात्र भी नहीं रह सकती और वह माया के बिना हमेशा बना रहता है। कहीं-कहीं पुराणों में इसलिए कहा है कि परमात्मा के एक-दहाई हिस्से में माया है और नौ दहाई हिस्से में वह माया से अस्पृष्ट है। यहाँ हिसाब लगाने नहीं बैठना! एक बटा दस और नौ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बटा दस तो कहने का तरीका है, तात्पर्य है कि उसके अत्यन्त छोटे हिस्से के अन्दर ही यह माया है। इसलिए 'नीलकण्ठम्' सारा शरीर भगवान् शंकर का बिलकुल गौरवर्ण है, केवल गले में थोड़ी-सी नीलिमा है, बस उतनी ही माया है। बाकी सारा-का-सारा शरीर सर्वथा गौरवर्ण है, माया का कोई स्पर्श नहीं। 'त्रिलोचनं' भगवान् शंकर की तीन आँखें हैं। सूर्य, चन्द्र और अग्नि–ये तीन उनकी आँखें हैं। इस प्रकार हम उनका ध्यान करते हैं तो ध्यान के फलस्वरूप सारे हृदय में रहनेवाले, सारे अन्धकारों से रहित साक्षी का अनुभव हो जाता है। इस प्रकार से उसका ध्यान करना चाहिए। यहाँ जिसका ध्यान कर रहे हो, वही परब्रह्म परमात्मा है। जब इस 'लिंग' की प्रतिष्ठा अपने हृदय में हो जाती है, तब जीव का कल्याण होता है।

शास्त्रों में कहा है कि जब मनुष्य के बहुत पुण्य एकत्र होते हैं, तब मनुष्य की सगुणब्रह्म में, परममहेश्वर में भक्ति उत्पन्न होती है, 'इसकी प्राप्ति मुझे हो' यह भाव आता। अन्यथा 'यह मिले – यह मिले' यों पदार्थों की भावना तो आती है, पर हमारे हृदय में रहनेवाला समस्त-साक्षी परब्रह्म परमात्मा प्रकट हो जाए, यह भाव नहीं आता। हृदय के अन्दर इस शिवलिंग की प्रतिष्ठा कर देते हैं तो पुनर्जन्म नहीं होता। वैसे तो बाह्य शिवलिंग की प्रतिष्ठा का भी बड़ा फल बतलाया, परन्तु हृदय में शिवलिंग की प्रतिष्ठा बड़ी विशिष्ट है।

प्राचीन काल में लक्ष्म्यावास नामक एक अग्रहार था। प्राचीन काल में मन्दिर के पास केवल ब्राह्मणों की बस्ती बना दी जाती थी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसे अग्रहार कहते थे। 'अग्र' मायने अग्रजन्मा, जो पहला जन्म लेते हैं। शास्त्रों में पहला जन्म ब्राह्मणों का बतलाया है। पहले उत्पन्न होने वाले ब्राह्मण ही जहाँ रहें उसे अग्रहार कहते हैं। क्योंकि पास ही पूजा-पाठ इत्यादि काम करने की सुविधा होती थी, इसलिये मन्दिर के चारों तरफ जमीन घेरकर उन्हीं की बस्ती बना दी जाती थी। उत्तर भारत में जहाँ मुसलमानों का राज्य कायम नहीं हुआ जोधपुर, उदयपुर आदि छोटे कस्बों में वहाँ भी ब्राह्मण-बस्ती होती है, उसे कहते हैं, ब्रह्मपुरी, ब्राह्मणों की पुरी। आजादी के बाद तो वह नियम नहीं रहा और ब्राह्मण लोग भी अपने मकान चाहे जिस वर्णवाले को बेच देते हैं। पहले ब्रह्मपुरी में ब्राह्मण ही रहता था, वह अपने मकान को, जमीन को किसी दूसरे को नहीं दे सकता था, केवल ब्राह्मण को ही दे सकता था। नतीजा उसका यह होता था कि जो उस वातावरण में ब्राह्मण पलते थे, वे ब्राह्मणों के आदर्शों को ही सामने रखते थे। चारों तरफ यही देखते थे कि ब्राह्मण तपस्वी-त्यागी हैं, अतः सोचते थे 'मैं भी अच्छा बनूँ'। अब सब लोग एक ही जगह खिचड़ी बनकर रहेंगे, बनिए को धनवाला देखेंगे तो ब्राह्मण सोचेंगे 'मैं भी धनवाला हो जाऊँ', उधर बनिया ब्राह्मण को देखेगा तो वह सोचेगा कि 'मैं पूजा-पाठ करूँ'। नतीजा यह होता है कि खिचड़ी बन जाती है।

लक्ष्म्यावास में बड़े उत्तम ब्राह्मण रहते थे, वेद-शास्त्रों को भली प्रकार जाननेवाले ऐसे ब्राह्मण रहते थे जो किसी भी शास्त्र का निर्णय करने में सक्षम थे। सारे वेदों का बिना संशय निर्णय करनेवाले लोग वहाँ रहते थे। वहाँ एक ब्राह्मण रहता था शंभुध्यायी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गरीब ब्राह्मण था, घर में धन था नहीं। सुनता रहता था कि शिवलिंग की प्रतिष्ठा का बड़ा महत्त्व है तो उसके मन में भी आता था 'मैं भी भगवान् शंकर के मन्दिर का निर्माण करूँ और शिवलिंग की प्रतिष्ठा करूँ'। परन्तु पास में धन नहीं था। वहाँ बड़े-बड़े ब्राह्मण वेदार्थ का निर्णय करनेवाले थे, उनसे पूछा, उन्होंने कहा 'इसमें कौन-सी बड़ी बात है! शिवलिंग की प्रतिष्ठा के लिए धन की क्या जरूरत है? तुम्हारे हृदय के अन्दर परमेश्वर बैठे हुए हैं, वहाँ क्यों नहीं शिवलिंग की प्रतिष्ठा करते? वहीं शिवलिंग-प्रतिष्ठा कर लो। सबसे उत्तम यही प्रतिष्ठा है।' ब्राह्मणों ने यह बतला दिया। उसने भी निर्णय कर लिया कि मन के द्वारा मुझे शिवलिंग की प्रतिष्ठा करनी है।

अब वह रोज़ बन्द कमरे में बैठकर ध्यान करे। मन की पूर्ण एकाग्रता को लाकर चिन्तन करे कि 'अब मैं जमीन ढूँढ रहा हूँ'। जहाँ-जहाँ उसे ज़मीन दीखे, वहाँ-वहाँ वह ज़मीन निरीक्षकों को दिखावे जो बतावें कि जमीन अच्छी है, बुरी है। जमीन का परीक्षण होवे तब पता चले कि कहाँ नींव डाली जाए, तो मजबूत रहे। यों मन में सब जगह जमीनों को देखते हुए जो उत्तम जमीन मिली वह जिस भाव में थी उसी भाव में खरीद ली; क्योंकि महादेव का मन्दिर बनाना था, महादेव के लिए ज़मीन खरीदनी थी। मन की स्थिरता और मन की दृढता इतनी होनी चाहिए कि मन की स्थिति के अनुरूप वह चीज़ उपस्थित हो जाए। उपासना की पूर्णता ही है जब ध्येय हमारे हाथ में रखे हुए आँवले की तरह प्रतीत होने लगे। फिर उसने बढ़िया-से-बढ़िया पण्डितों को बुलाया, नींव का मुहूर्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निकलवाया, निर्माण करना प्रारम्भ किया। अच्छे-से-अच्छे पत्थर कहाँ मिलेंगे इत्यादि के बारे में वह बैठकर ध्यान करता रहता था। मण्डप बन गया, गोपुर बन गए, सब उसने मन से बनाए। मन का मन्दिर बनाया। भगवान् के लिए अनेक प्रकार के वाहनों का निर्माण किया। सोने का नन्दी इत्यादि बड़े-बड़े वाहनों का निर्माण किया, क्योंकि मन्दिर के पहले ये सब चीज़ें तैयार हो जानी चाहिए। बड़ा भारी एक निर्मल तालाब खोदा, मन्दिर के साथ एक तालाब होना चाहिए जहाँ भगवान् को ले जाकर स्नान कराकर लाया जा सके। लोग वहाँ आएँ, पहले नहायें फिर भगवान् के दर्शन करने जायें। इसके लिए तालाब का निर्माण किया। फिर फूलों का एक बगीचा लगाया। मूर्ति की प्रतिष्ठा से पहले तालाब भी होना चाहिए और फूलों की जगह भी होनी चाहिए जहाँ से भगवान् की पूजा के लिए फूल आवें। यह नहीं कि बाजार से फूल लेकर आ जाओ! स्वयं फूल उगाकर, तोड़कर, माला बनाकर भगवान् को पहनाने का विधान है। फिर उस मन्दिर के लिए अनेक दास-दासियों को बुलाया। मन्दिर की सफाई करनी है, फूल लाने हैं, उस सबके लिए उनको जुटाया। मोतियों की माला से सर्वत्र सजावट की। आम, नारंगी, केले आदि सबके उसने पेड़ लगाए। भगवान् के भोग के लिए सारी व्यवस्था की। जहाँ पाकशाला थी, वहाँ चूल्हे आदि सबका सोने-चाँदी से निर्माण किया। मन्दिर बन कर तैयार हो गया तो उसने (मन में ही) ऋषियों से मुहूर्त पूछा, उन्होंने मुहूर्त बतला दिया। उस मुहूर्त में उस मन्दिर की प्रतिष्ठा होनी थी। अब वह उस दिन की बाट देख रहा था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उधर, उस देश का जो राजा था, उसने भी अपने देश में भगवान् शंकर का मन्दिर बनाया था, उसका मन्दिर भी साथ-साथ तैयार हुआ। उसने पण्डित जी से शुभ मुहूर्त पूछा तो पण्डितों ने वही मुहूर्त बताया! वही मुहूर्त अच्छा था। राजा की भी भगवान् में अच्छी श्रद्धा थी। रात में स्वप्न में आकर भगवान् ने राजा से कहा 'अभी मेरा एक भक्त शंभुध्यायी है, उसने मन्दिर बनाया है, उस दिन उस मुहूर्त में मैं वहाँ गया हुआ होऊँगा, तुम अपना मुहूर्त एक-दो दिन आगे-पीछे कर लो; क्योंकि उस दिन तुम प्रतिष्ठा करोगे तो मैं नहीं आ सकूँगा, मुझे वहाँ रहना पड़ेगा।' राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ कि मैं राजा, इतना बड़ा मन्दिर बना रहा हूँ, इसकी अपेक्षा उस भक्त के बनाये मन्दिर में क्या श्रेष्ठता है!

पता लगाकर वहाँ पहुँचा, गाँव के लोगों से कहा 'शंभुध्यायी एक मन्दिर बना रहा है, वह मन्दिर कहाँ है। बड़ा भवन और गोपुर आदि तो दीख नहीं रहे।' सब हँसने लगे! कहने लगे 'देखिए, उसका बनाया मन्दिर तो हम आपको नहीं दिखा सकते। वह जाने, उसका मन्दिर जाने। परन्तु दिखला देंगे कि शंभुध्यायी कौन है।' राजा ने शंभुध्यायी से कहा 'अरे तुम जो मन्दिर बना रहे हो वह हमें दिखाओ।' उसने कहा 'महाराज, अभी नहीं दिखा सकते, अभी हम भगवान् के बैठने के लिए रत्न का सिंहासन बना रहे हैं, हमारी वेदी तैयार हो गई है। जब उनकी प्रतिष्ठा हो जायेगी और फिर दरवाजा खुल कर कुंभ से अभिषेक होगा, उसी समय भगवान् के दर्शन हो सकते हैं, अभी नहीं हो सकते।' राजा ने कहा 'भाई ठीक है, सर्वत्र बन्द दरवाजा तभी खुलता है जब भगवान् की प्रतिष्ठा हो जाती है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परन्तु बाहर का ढाँचा तो मुझे दिखाओ।' वह बोला 'वह भी उसी दिन दीखेगा, आगे-पीछे नहीं दीखेगा। मेरी पूजा-सामग्री इकट्ठी हो गई है, बस तीन दिन बाकी हैं। आप यहाँ निवास करें तो उस दिन आपको दिखा देंगे।'

उस दिन ध्यान करने लगा तो शंभुध्यायी भगवान् शंकर से प्रार्थना करने लगा 'मेरे पास कोई धन तो था नहीं इसलिए मैंने मन के अन्दर एक मन्दिर का निर्माण किया। राजा उसे देखना चाहता है। अतः जिस दिन प्रतिष्ठा होगी उस दिन उसको आप दिखा देना।' भगवान् कहने लगे 'तुम्हारी महिमा को बतलाने के लिए मैंने ही उसको प्रेरणा दी है। तुम चिन्ता मत करो।' मुहूर्त आया और जैसे ही भगवान् शंकर के गर्भगृह का द्वार खुला, राजा वहाँ बैठा हुआ था ही, उसे उस अद्भुत मन्दिर का दर्शन हुआ! जैसा-जैसा शंभुध्यायी ने मन से मन्दिर का निर्माण किया था, सारा-का-सारा राजा को दीख गया। राजा समझ गया कि 'इसका बनाया मन्दिर मेरे बनाये मन्दिर से अद्भुत और श्रेष्ठ है, इसीलिए भगवान् ने मुझे मुहूर्त बदलने के लिए कहा, इसे मुहूर्त बदलने के लिए नहीं कहा।' शंभुध्यायी ने भी अपनी शिवध्यान की निष्ठा द्वारा शिवकृपा पाकर मुक्त होकर भगवान् शंकर के परम पद को प्राप्त कर लिया।

उपासना के द्वारा अपने अन्दर विद्यमान परमात्मतत्त्व स्फुट हो जाता है, भगवान् शंकर जो सर्वदा सिद्ध हैं, वे प्रकट हो जाते हैं। इस प्रतिष्ठा को करने के लिए ही कहा कि यही ब्रह्म है।

❖

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन : अट्ठारहवाँ

(१६.४.९८)

सामवेद की कौथुमी शाखा की छान्दोग्योपनिषद् के तीसरे अध्याय के चतुर्दश खण्ड के चतुर्थ मन्त्र का विचार चल रहा है।

परमात्मा के सर्वकर्मा, सर्वकाम, सर्वगन्ध, सर्वरस, मनोमय, प्राणशरीर, भारूपवाले स्वरूप को कहा। हृदयाकाश के अन्दर उसका ध्यान किया जाता है। किस प्रकार से ध्यान किया जाता है, इसका विवेचन प्रारम्भ में ही किया। बाकी सब जगह से चित्त को एकाग्र वहाँ किया जाता है जहाँ सारी इन्द्रियाँ हैं, सारे मान-अपमान आदि दूसरे प्राणियों से होनेवाले अनुभव हैं; ये जहाँ अपने आपको कल्पित करते हैं, वही हृदयदेश है। अर्थात् जहाँ 'मैं' की अनुभूति है उस हृदय देश में ही इसका ध्यान है। ध्यान के प्रकार को बतलाकर श्रुति कहती है 'एतम् इतः प्रेत्य अभिसम्भविताऽस्मि।' यहाँ से जाकर मैं किस स्थिति में होनेवाला हूँ? सर्वकर्मा इत्यादि स्वरूप मेरे अन्दर प्रतिष्ठित हैं, अभी भी मैं इन्हें जानता हूँ और आगे भी ये मुझसे स्फुट रहेंगे। इसलिये भगवान् वेदव्यास ब्रह्मसूत्र में कहते हैं—'संकल्पादेव तु तच्छ्रुतेः' (४.४.८) जिसे अपने अन्दर शिवभावना दृढ हो जाती है, उसके संकल्प हमेशा सत्य होते हैं। इसलिये श्रुति कहती है कि उसके संकल्पमात्र से उसकी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं। उसके मन में संकल्प हुआ इतने-मात्र से ही वह कार्य घटित हो जाता है। हमारे अन्दर रहनेवाली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्यसंकल्पता अज्ञान से आवृत है, छिपी हुई है। ऐसा नहीं है कि अभी हम असत्यसंकल्पवाले हैं, अभी हमारे संकल्प सच्चे नहीं होते और फिर हमारे संकल्प सच्चे होने लगेंगे। ऐसा नहीं है। परन्तु हमारी यह सत्यसंकल्पता अज्ञान से छिपी हुई है अर्थात् हम मन के संकल्पों को *अपना* संकल्प समझ लेते हैं। मन के साथ हमारा तादात्म्य है, इसलिए हमने अपने-आपको मन से आवृत कर लिया है, मन से ढाँक लिया है। मन के दुःखी हो जाने से हम दुःखी हो जाते हैं, मन के सुखी हो जाने से हम सुखी हो जाते हैं। इसी प्रकार मन के अन्दर जो संकल्प आते हैं, उन्हें हम अपना संकल्प समझ लेते हैं।

मन अज्ञान की 'मूर्ति' है। कई बार लोग पूछते हैं 'हमें अज्ञान कैसे समझ आवे?' बस, मन को समझ लेवें तो अज्ञान समझ आ जायेगा। अज्ञान की दो शक्तियाँ हैं, आवरण और विक्षेप। अज्ञान जिस चीज़ को ढाँक देता है उसके बजाये दूसरी चीज़ को प्रकट कर देता है। जैसे सींप का अज्ञान उसे तो जानने नहीं देता, ढाँक देता है और उसकी जगह चाँदी दिखा देता है। मन यही काम रात-दिन करता रहता है! जो चीज़ जहाँ नहीं है, उसे वहाँ दिखाता रहता है। मान लो किसी ने बताना शुरू किया 'मेरे लड़के का स्वभाव कुछ ठीक नहीं है। स्वभाव तेज है, बोलने में गरम है।' दो-चार बातें कहने पर ही उसके मन में आता है 'अरे बेटा तो मेरा है!' तुरन्त आवरण करने लगता है 'फिर भी लाखों में अच्छा है!' झट से उसके दुर्गुणों को आवृत कर देता है और उसकी जगह गुण दिखा देता है। दूसरे के गुण कोई बताये तो झट से श्रोता का मन आवृत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर देता है, उसके मन में आता है 'ये बातें तो हैं, परन्तु वह अन्दर से खोटा है।' यह मन का स्वभाव इसीलिए है कि यह अविद्या का कार्य है अत: अविद्या को उसके आवरणादि स्वभाव को बतला देता है।

अविद्या गहरी नींद में भी है, परन्तु अज्ञान का पता वहाँ लगता नहीं। जब हम जगते हैं और मन सामने आता है, तब मन उस अनुभव का परामर्श करता है। उसी अविद्या से उत्पन्न होने के कारण उसी के संस्कारों को लेकर मन इस बात को प्रकट करता है कि बड़े आराम से सोया और मैंने वहाँ कुछ नहीं जाना। अनुभव तो गहरी नींद में हुआ। परन्तु वहाँ मन नहीं था, इसलिए मन वहाँ न आनन्द को जान रहा था, न किसी अन्य चीज़ को जान रहा था। उसी अविद्या से चूँकि मन उत्पन्न हुआ, अत: उसके संस्कार उसमें आ जाते हैं। ऐसे समझ लो : तुमने लाल धागे से कपड़ा बनाया या लाल ऊन से स्वैटर बनाया तो उस कपड़े या स्वैटर में लाल रंग कहाँ से आया? अनुभव होता है कि स्वैटर लाल है। स्वैटर लाल है *क्योंकि* ऊन लाल है–ऐसी वृत्ति तो नहीं बनती है, कपड़े का धागा लाल है–ऐसी प्रतीति तो नहीं होती है। प्रतीति तो यह है कि कपड़ा लाल है, स्वैटर लाल है। तुमने सफेद कपड़ा खरीद कर लाल रंग में रंगा लिया और लाल रंग के धागे से लाल कपड़ा बना लिया तो क्या दोनों में फ़र्क पता लगता है? अथवा तुमने सफेद स्वैटर बनाकर लाल रंग से रंग दिया या रंग की ऊन से स्वैटर बना लिया तो क्या कोई फर्क लगता है? अनुभव क्या हुआ? दोनों जगह अनुभव एक ही हो रहा है–लाल कपड़ा, लाल स्वैटर। सफेद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कपड़े के ऊपर तुमने लाल रंग चढ़ाया तब भी तुमको प्रतीत होता है लाल कपड़ा और लाल रंग के धागे को लेकर तुमने कपड़ा बनाया तब भी वही प्रतीत होता है लाल कपड़ा। लाल कपड़े की प्रतीति दोनों जगह एक-जैसी। जो धागे में रंग था वही कपड़े में प्रकट हुआ। इसी प्रकार तुमने सफेद ऊन की स्वैटर बनाकर रंगा तो और लाल रंग की ऊन लेकर बनाया तो दोनों जगह प्रतीति एक होने पर भी एक जगह स्वैटर रंगा गया है, दूसरी जगह धागा रंगा गया है, जबकि दोनों के अनुभव में कोई फर्क नहीं।

इसी प्रकार से हमने सूरज को सवेरे उदय होते देखा। सवेरे उठे, दरवाजा खोलते ही सामने सूरज उदय हो रहा था। संस्कार किस पर पड़ा? मन पर। अब उस बात को डेढ़ घण्टा हो गया। जब हम स्मरण करते हैं तब याद आता है 'सवेरे सूर्य बड़ा अच्छा उगा था।' 'उगा *है*', यह अनुभव तो नहीं है। 'उगा *था*' यह किस संस्कार से हमारे अन्दर ज्ञान हो रहा है? उस समय जो सूर्य के उदय होने के संस्कार पड़े थे, उस समय में तो देखा था कि 'उग रहा *है*', देखने से मन में संस्कार पड़ा, पड़ा हुआ संस्कार ही स्मृतिरूप से प्रकट होता है 'बड़ा अच्छा सूर्योदय था'! दूसरी तरफ, गहरी नींद में मन नहीं था। इसलिए मन कुछ नहीं देख रहा था। परन्तु वहाँ क्या थी? अविद्या थी, उसी अविद्या से हम उठे तो हमारा मन फिर उसी में से उठ कर आया। अविद्या में संस्कार थे 'यहाँ अज्ञान और सुख है'। तब सुख के संस्कार अविद्या में पड़ रहे थे; क्योंकि अविद्यावृत्ति वहाँ विद्यमान थी। वही अविद्या अब मनरूप में आई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्यों आई? शास्त्रकार बतलाते हैं—

‘सुषुप्तिकाले सकले विलीने
तमोऽभिभूतः सुखरूपमेति।
पुनश्च जन्मान्तरकर्मयोगात्
स एव जीवः स्वपिति प्रबुद्धः ॥’

गहरी नींद के अन्दर तो अज्ञान के अन्दर सब लीन हो गया था। चूँकि वहाँ अविद्या की विक्षेपशक्ति काम नहीं कर रही थी, अतः सुखरूप बना रहा। फिर हमारे जन्मान्तर के कर्म फल देनेवाले बने। कर्म भोग तभी दे सकते हैं, जब जाग्रत् में हमारी इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, प्राण, सब हमारे सामने आवें। जाग्रत् में ही स्थूल विषय-भोग हो सकता है। सुषुप्ति में एकमात्र अज्ञान था, उसी अज्ञान से ये सब चीज़ें बन गईं। निमित्त कारण क्या बना? जन्मान्तर का कर्म। कर्म कारण बना निमित्तरूप से और उपादान अज्ञान है, अविद्या है। जब ये काम करने लगे, तब हम उठ गये। अविद्या में पड़े संस्कार उद्‌बुद्ध हुए, मन में अज्ञान के वे ही संस्कार आ गये। जैसे लाल रंग तो था धागे में, आ गया कपड़े में, लाल रंग तो था ऊन में, आ गया स्वैटर में। इसी प्रकार ‘कुछ न जानना और सुख’ के संस्कार तो थे अविद्या में, अज्ञान में, परन्तु उसी से बने हुये मन में वे संस्कार आ गये। अतः मन याद करता है ‘मैं वहाँ बड़े सुख से सोया, मैंने कुछ नहीं जाना।’ इस प्रकार से कारण के संस्कार कार्य में आ गये। मन में दीख रहा जो संस्कार वह मन का संस्कार है, परन्तु वह संस्कार हमारे सामने क्यों आता है? मन-प्राण के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वारा किये कर्म निमित्त बनकर फलीभूत होनेवाले हों, तब संस्कार उद्‌बुद्ध होगा। हमने कर्म किया, उसका फल उत्पन्न होना है।

कर्म का फल उत्पन्न कौन करता है? भगवान् ने कहा है : तू जीव, मैं ईश्वर; हम दोनों के अलग-अलग काम हैं। तेरा काम है, कर्म करना और मेरा काम है फल देना। तू कर्म कर सकता है, यह प्रश्न नहीं कर सकता कि मुझे फल कब, क्या और कैसे मिलेगा? मैं तुझे फल दे सकता हूँ, परन्तु मैं कर्म नहीं कर सकता! जैसे पण्डित जी को तुम कोई वरण दे देते हो तो तुमको कर्म करने की जरूरत नहीं पड़ती, पण्डित जी ने कर लिया और फल तुम्हें मिल गया। ऐसे यदि चाहो कि भगवान् कर्म कर लेवें और फल तुम्हें दे देवें तो भगवान् कहते हैं 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' कर्म करने का अधिकार जीव का है, ईश्वर का नहीं। फल देने का ही अधिकार ईश्वर को है, वह जीव का नहीं। जीव रात-दिन फल पर तो अपना अधिकार समझता है और कर्म के लिए मानता है 'कोई ऊपर बैठा करवा रहा है।' दुर्योधन से पूछा तो उसने भी कहा 'मैं कोई पाप नहीं करता हूँ, मैंने भी आचार्य से पढ़ा है। युधिष्ठिर और मेरे गुरु दो नहीं, एक ही हैं। इसलिए जितना ज्ञान युधिष्ठिर को गुरु द्रोणाचार्य ने दिया, मैं भी साथ पढ़ता था, उतना ज्ञान मुझे भी है। उतना ही धर्म मैं जानता हूँ। फर्क क्या है? जानता हूँ, पर 'धर्म करूँ' यह भावना नहीं आती।' यही बात 'सैक्यूलर' कहता है : 'मैं सारे धर्मों को मानता हूँ, परन्तु करता एक धर्म भी नहीं। इसलिए मुसलमानों में जाता हूँ तो उनको सन्देश दे देता हूँ, ईसाइयों में जाता हूँ तो उनको ईसा का सन्देश दे देता हूँ, रामलीला में जाता हूँ तो राम के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदर्श को बोल देता हूँ। किन्तु मेरा निश्चय यह है कि मुझे धर्म करना नहीं; क्योंकि सब धर्म एक-जैसे हैं!' यही बात दुर्योधन कहता है कि धर्म जानता हूँ, लेकिन करने की इच्छा मेरी नहीं है। इसी प्रकार अधर्म को भी जांनता हूँ, पाप को भी समझता हूँ, किन्तु पाप से दूर हट जाऊँ यह मन में नहीं है। मैं क्या करूँ! मेरे हृदय में कोई बैठा हुआ है, वह मुझसे सब करवाता है। भगवान् तो कहते हैं 'करनेवाले तुम और फल देनेवाला मैं', और हम लोग मानते हैं 'करनेवाला ऊपर बैठा हुआ है।' हृदय में बैठा हुआ है 'सत्संग में आना तो चाहते हैं, पर क्या करें, भगवान् डोरी नहीं खींचता!' यह जिम्मेदारी उसकी है और चिन्ता किसकी करते रहते हैं? जो अपने हाथ में नहीं है। कमाई कैसे होगी यह अपने हाथ में नहीं। बढ़िया मकान कैसे बनाऊँगा? यह भी अपने हाथ में नहीं। निरन्तर हम सोचते फल की बात रहते हैं, उसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर समझते हैं : अच्छी बहू घर में आई कि नहीं आई, इसकी जिम्मेदारी हमारी। बेटी का ब्याह ठीक से हुआ कि नहीं हुआ – यह जिम्मेदारी हमारी। सत्य है कि कर्म हम करेंगे और फल परमेश्वर देगा। परन्तु हम उलटा करते रहते हैं, कर्म करते समय कह देते हैं 'कोई दूसरा करवा देता है' और फल के समय कह देते हैं 'पता नहीं हम ये फल क्यों भोग रहे हैं, हम तो चाहते नहीं हैं भोगना।'

मन के अन्दर जब संकल्प होता है प्रारब्ध के अनुसार, तब वह संकल्प करानेवाला, संकल्प देनेवाला सत्यसंकल्प आत्मस्वरूप परमेश्वर ही संकल्प करवाता है और सत्यसंकल्प होने से वह सच्चा हो जाता है। दूसरा संकल्प जो हमारे अन्दर वासनाएँ पड़ी हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कार पड़े हैं, वे करवाते हैं। टेलिविजन में हमने दस-बीस बार कोलगेट दन्तमंजन का विज्ञापन देखा, वे संस्कार हमें प्रवृत्त करते हैं कोलगेट खरीद कर उससे दाँत साफ करने में। यह चेतन का संकल्प नहीं है, परमेश्वर का संकल्प नहीं है, उस विज्ञापन को देखकर जो मन में संस्कार पड़े हैं, उन संस्कारों से बन रहा है। चूँकि हम अपना अर्थात् चेतन का और जड का अर्थात् मन का, दोनों का फर्क समझ नहीं पाते इसलिये जब हम कोलगेट मंजन लगाने लगे और दाँत गिरने लगे तब कहते हैं 'ये क्यों गिर रहे हैं।' मन के अन्दर संकल्प एक तो होता है परमेश्वर द्वारा प्रसूत, दूसरा होता है हमारे संस्कारों से प्रसूत। हमारे संस्कारों से जो प्रसूत हुआ, वह अविद्या के रंगवाला है और परमेश्वर के द्वारा जो हुआ वह सत्यरूप है। इन दोनों संकल्पों को अलग-अलग नहीं समझने के कारण हम अल्पसंकल्पवाले हो जाते हैं। दोनों ही संकल्पों को 'अपना' संकल्प कहते हैं। कभी-कभी हमारे संकल्प सच हो जाते हैं। वे सच तो तब होते हैं, जब परमात्मा के द्वारा बनाये जाते हैं, कर्मफल देने के लिये। दोनों का फर्क नहीं समझने से हमें लगता है 'कभी हमारा संकल्प सच हो जाता है, कभी झूठ हो जाता है।' परन्तु इस उपासना से हमने अपने स्वरूप को समझा तो हम हमेशा सत्यसंकल्प ही होंगे क्योंकि जड मन के द्वारा बननेवाले संकल्पों के साथ हमें कभी भी अध्यास नहीं होगा कि ये मेरे संकल्प हैं। श्रुति ने छान्दोग्योपनिषद् में कहा कि यदि सिद्ध उपासक के मन में संकल्प हो गया तो पितर आदि सामने खड़े हो जाते हैं। जो-जो संकल्प होता जाता है, वह-वह चीज़ उपस्थित होती चली जाती है;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्योंकि उसका संकल्प सत्य है। जो चीज़ें हमें असम्भव लगती हैं, अब वे भी सम्भव हो जाती हैं।

एक राजा ऋषि के पास गया। उनके पास नन्दिनी गाय थी। राजा का मन डोल गया, ले जाने लगा तो गुरु वशिष्ठ जी ने गाय से कहा 'अपनी रक्षा स्वयं करो।' नन्दिनी ने उसी समय अनेक राक्षसों को उत्पन्न किया, राजा वहाँ से भाग गया, नन्दिनी की रक्षा हो गई। यह था वशिष्ठ जी की संकल्पशक्ति का प्रभाव। उनका संकल्प था 'राजा चला जाये' और वह चला गया। 'नन्दिनी स्वतन्त्र हो जाये' वह भी हो गई। लगता ऐसा है मानो उस नन्दिनी की शक्ति के कारण सब हुआ। तो भगवान् भाष्यकार लिखते हैं— 'निमित्तान्तरम् अपि तु यदि सङ्कल्पानुविधाय्येव स्याद् भवतु, न तु प्रयत्नान्तरसम्पाद्यं निमित्तान्तरम् इतीष्यते, प्राक् तत्सम्पत्तेर्वन्ध्य-सङ्कल्पत्वप्रसङ्गात्।' काम तो उनके संकल्प से हुआ भले ही अन्य निमित्त इसमें उपयोगी बनते गये। संकल्प पूरा करने में कोई दूसरी चीज़, निमित्तान्तर यदि दीखे भी, जैसे दीखा कि नन्दिनी ने फौज पैदा कर दी, तो भले दीखो, परन्तु निमित्तान्तर को उत्पन्न करने के लिए इस प्रकार के उपासक को कोई दूसरा प्रयत्न करना पड़े, चेष्टा करनी पड़े ऐसा नहीं है। वह तो केवल संकल्प करता है, संकल्प पूरा करने के लिए कोई निमित्तान्तर होवे तो कोई हर्ज नहीं, वह तो सिवाय संकल्प के और कुछ नहीं करता। इसीलिए उसके संकल्प को कोई रोक नहीं सकता। व्यास जी कहते हैं–'अतएव चानन्याधिपतिः' (४.४.९) क्योंकि सिवाय संकल्प के उसको दूसरा कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता, इसलिए वह किसी के अधीन नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि दूसरा कोई प्रयत्न करना होवे तो देवता उसमें विघ्न डाल सकते हैं। जैसे लोक में अनुभव है कि कार्य सम्पन्न होते-होते किसी विघ्न से रुक जाता है; क्योंकि संकल्प से अतिरिक्त अनेक निमित्त चाहिए रहते हैं, इसी प्रकार उपासक को प्रयत्नपूर्वक करना पड़ता तो बीच में कोई विघ्न आ भी जाते; ग्रह, नक्षत्र, राशियाँ, बहुत से देवता, दूसरे लोग कई विघ्न आ जाते।

एक सज्जन बतला रहे थे : उन्होंने किसी बड़े ठेके को लेने के लिए बात-चीत पक्की की, करोड़ों का मामला था, कागज तैयार थे। उन्होंने कागजों को अफसर के सामने रखा, वह दस्तखत करने वाला था, उसके सामने कलम रखी, पर उस कलम में स्याही नहीं थी! तय हुआ कि कल सुबह दस्तखत कर देंगे। बात पक्की हो गई थी, कहा 'सुबह करवा लेना।' सुबह दस बजे उसे कार्यालय में जाना था। कहता है 'जब मैंने अखबार पढ़ा सुबह छह बजे तो उसमें लिखा था कि सरकार बदल गई! अब मैं दस्तखत कराने उसके पास दफ्तर पहुँचा तो उसने कहा कि नये मन्त्री ने रोक लगा दी है। उसका तो कहना-भर था और मेरा लाखों का नुकसान हो गया।'

छोटा-सा विघ्न है, अगर कलम में स्याही होती तो दस्तखत हो गये होते, काम बन गया था, पर नहीं हुए तो अटक गया। परन्तु जहाँ एकमात्र संकल्प ही कारण है, वहाँ कोई दूसरा मालिक नहीं है जो उस पर शासन कर सके। संकल्प से ही उसकी सिद्धि हो जाती है। उसका संकल्प हुआ तो उसके अनुकूल कार्य होना ही है। मन के अधीन होकर, अविद्या के अधीन होकर वह संकल्प करता नहीं, चेतनरूप से संकल्प करता है, तो सारे कर्मों का फलदाता होने से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसका संकल्प कभी मिथ्या हो नहीं सकता। संकल्प होवे और पूरा न हो यह कभी हो नहीं सकता।

इसलिए उसको कोई संभ्रम नहीं होता। ज्ञान और उपासना में यह बड़ा भारी फर्क है। यहाँ साक्षात् सगुण ब्रह्म की उपासना बतायी है। ज्ञान एक बार उत्पन्न होते ही अज्ञान को नष्ट कर देता है, इसलिए उसको आवृत्त करने की जरूरत नहीं रहती। यह शक्ति उपासना में नहीं है। उपासना यावत्-जीवन करनी पड़ती है। जब तक जियो तब तक उपासना करते रहना पड़ता है। उपासक को इससे किंचित् भी हटकर दूसरी वृत्ति नहीं बनानी है। मृत्यु के समय तक यह वृत्ति बनानी पड़ती है। इसलिए भगवान् ने भी गीता में कहा कि जिस-जिस चीज़ का स्मरण करते हुए जीव जाता है, शरीर छोड़ता है, अगले जन्म में उसी-उसी भाव को प्राप्त करता है। जब यावत्-जीवन इस प्रकार संस्कारों का निर्माण करता है, तब वही अभ्यास बन जाता है।

यदि यह सोचो, जैसा कि बहुत-से लोग सोचते हैं, 'जल्दी क्या है, राम नाम अन्तकाल में स्मरण कर लेंगे', तो चूकोगे ही। कहते हैं 'प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते' जिस समय यहाँ से जाने का समय होता है उस समय तीनों धातु कुपित हो जाते हैं। एक भी धातु कुपित हो जाए तो आदमी के कष्ट इतने बढ़ जाते हैं जिन्हें सहना कठिन हो जाता है। एक धातु विकृत हो जाए तो हृदय बिगड़ जायेगा, रक्त में दोष आ जायेगा, यकृत बिगड़ जायेगा; जितनी तुम्हारी खाने की प्रणाली है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह सब बिगड़ जायेगी, एक 'वात' के बिगड़ने से। जब तीनों धातु बिगड़ेंगे तब क्या होगा! .

आजकल की आधुनिक चिकित्सा-पद्धति के अनुसार रोग अनन्त हैं, उन रोगों को एकत्र करके सोचने का कोई तरीका है ही नहीं। जब तक रोगों के मूल को न समझा जाये तब तक सब रोगों के अलग-अलग इलाज चलते रहते हैं। इसलिए आधुनिक इलाज का कभी अन्त नहीं होता! यदि कोई उपाय होवे, जिससे मूल कारण का पता लगे तो इलाज पूरा हो भी सकता है। ऐसा भी नहीं समझना कि यह बहुत सरल कार्य है! दार्शनिक क्षेत्र में भी सैकड़ों सिद्धान्त बने, और आज भी बन रहे हैं, इस बारे में कि मनुष्य को दुःख क्यों है। प्रकृति के कारण है या कर्म के कारण है या समय के कारण है या आजकल एक नया चला है कि वास्तु के कारण है! तुमने दरवाजा गलत जगह बना लिया इसलिये दुःखी रहते हो। कितने कारण तुम्हारे दुःखी होने के हैं, इसका कोई ठिकाना नहीं। एक दूर करो तो दूसरा आ जाता है। दरवाजा बदल लिया तो काम क्यों नहीं ठीक हुआ? दरवाजा तो ठीक हो गया लेकिन अब शनि की साढ़े साती आ गई। शनि के साढ़े सात साल पूरे हो गये, अब क्या हुआ? तुम्हारा कोई खराब कर्म आ गया। समष्टि प्रारब्ध से इस समय बाज़ार ठप्प है! मार्केट ढीला है।

केवल वेदान्त ने पता लगाया कि इन सब रोगों का, दुःखों का एकमात्र कारण अज्ञान है। जब अज्ञान दूर हो जायेगा तब न ग्रह, नक्षत्र दुःखी कर सकते हैं न वास्तु कर सकता है, न समष्टि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रारब्ध कुछ कर सकता है। मूल कारण समझ में आ गया तो उसे हटा सकते हो। एक-एक कारण को हटाना हो तो कोई-न-कोई नया उपस्थित हो जायेगा।

कफ, वात, पित्त ये तीन ही नहीं समझना, मतलब है सारे दोष। सब खड़े हो जाते हैं जब आदमी जानेवाला होता है। गले से आवाज नहीं निकलती। छोटे बच्चे थे तो 'अरे माँ, अरे माँ' रो लेते थे। थोड़ा बड़े हुए तो ईश्वर में श्रद्धा हुई 'हे राम, हे राम' कह लेते हैं। अब आदत पड़ी हुई है तो बिना विचार किये हुए भी नाम निकल जाता है। सड़क पर चल रहे हैं, अकस्मात् केले के छिलके पर पैर पड़ा, फिसलकर गिरे, तो कोई सोच कर थोड़े ही बोलते हैं 'अरे राम'। जिनको अभ्यास नहीं होता, जैसे आजकल के बच्चे, वे गिरेंगे तो कहेंगे 'आउच आउच'। वे 'राम' नहीं कह सकते, अभ्यास नहीं है इसलिए। इसी तरह, प्राण निकलने के समय जब कष्ट होगा तब क्या कोई नाम मुँह से निकल जायेगा? गला भी भर जायेगा, कोई शब्द मुँह से नहीं निकल पायेगा! मन की वही हालत है। स्मरण होगा कहाँ से? इसीलिए यदि हम अन्तकाल के लिये रुके रहेंगे तो ईश्वर-स्मरण होगा नहीं। जहाँ भगवान् ने कहा 'अन्तकालेपि मामेकं स्मरन्' वहाँ भाष्यकार आचार्य शंकर कहते हैं कि यावत्-जीवन उपासना की, तब अन्तकाल में भी वह वृत्ति बनी रहेगी। चाहे-जैसी शरीर की पीडा हो, स्थिर भाव से जो उक्त उपासना करता रहा, वह जब यह शरीर छोड़ कर जाता है तो वह जो सत्यसंकल्प परमेश्वर है, उसे ही प्राप्त करता है। वह सत्यसंकल्प आदि की भावना निरन्तर बनी रहती है अर्थात् उपासना लगातार की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाती है, तब ऐसा फल होता है। यदि अन्तकाल में भी वृत्ति इधर-उधर हो जाये तो उपासक का काम नहीं बन सकता।

एक बहुत बड़े योगिराज थे, उपासक थे। उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी, कई शिष्य थे। कोई थोड़ी भी साधनावाले होते हैं तो उन्हें मृत्यु से पहले पता चल ही जाता है। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा 'देखो, जब मैं मर जाऊँगा, मेरा जब गंगा में प्रवाह करोगे, उस समय स्वर्ग में दुन्दुभियाँ बजेंगी और पुष्पवृष्टि होगी। इससे पता लग जायेगा कि मैं परम धाम को चला गया।' उनको अपने संकल्प का पता था। उन्होंने संकल्प किया ताकि इसके द्वारा शिष्यों को पता चल जाये कि इस प्रकार से भी होता है। मरनेवाले ही थे, मृत्यु का समय आ गया था। शिष्यों को तो मौका मिला था, सोचा गुरुजी की बड़ी भारी प्रतिष्ठा करायेंगे! उन्होंने रोक लिया भक्तों को, आस-पास के गाँवों में खबर दे दी कि 'गुरुजी ब्रह्मलोक को जायेंगे इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिलनेवाला है, आप लोग सब आओ, अन्तिम दर्शन करो।' बहुत लोग आये, भारी भीड़ हो गई। उनके शिष्यों ने कहा 'जैसे ही गुरुजी का शरीर प्रवाहित होगा, गुरुजी परमधाम को गये हैं, अतः आसमान में दुन्दुभि बजेगी और पुष्प बरसेंगे।' बड़ा भारी जुलूस निकला, गंगाजी पर पहुँचे और प्रवाह किया। शिष्य ऊपर की ओर देखने लगे कि कुछ होगा। न कोई दुन्दुभि बजी और न कोई पुष्पवृष्टि हुई! अब तो बेचारे बड़े दुःखी हो गये सोचा कि 'चुप रहते तो अच्छा था, सबको पता लग गया कि गुरुजी तो ऐसे ही थे।' लोग भी कहने लगे 'अरे, आजकल ऐसा कहाँ होता है! सब कहने की बातें हैं।' सब शिष्य दुःखी हो गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दो-तीन महीने बीत गये, उनके एक गुरु-भाई थे। भ्रमण करते हुए वहाँ पहुँचे, बात-चीत होने लगी। उन्हें पता लगा कि योगी का शरीर पूरा हो गया। वे समझाने लगे 'तुम इतने दुःखी न होवो, जो आता है वह जाता ही है।' शिष्य कहने लगे 'महाराज बात यह नहीं है। मुद्दे की बात है कि उन्होंने कहा था 'ऐसा-ऐसा होगा और मुझे परम गति मिलेगी'। पर हुआ कुछ नहीं। इसका मतलब, उनकी गति नहीं हुई, अतः बदनामी हुई चारों तरफ।' उन्होंने पूछा 'क्या इस बात को तुमसे कहा था?' 'हाँ जी, कहा था।' वे कहने लगे 'सद्गति तो उनकी होनी है और स्वयं कहा था तो यह उनका संकल्प भी था।' विचार करके वे कहने लगे 'अन्त समय में जिस खटिया और बिछौने पर लेटे थे, उसको उसी अवस्था में तैयार कर दो। कर दिया तो उसके ऊपर वे उसी दिशा में सिर कर के लेट गये। थोड़ी देर तक चिन्तन करते हुए अकस्मात् उठे। वहाँ सामने दुछत्ती पर एक हण्डी थी, कहा 'इसे उतारो' उतारी, उसमें एक बेर था। उस बेर को उन्होंने तोड़ा तो उसमें एक मोटा-सा कीड़ा था! उस कीड़े को लेकर गंगाजी गये और डाल दिया। जैसे ही डाला वैसे ही दुन्दुभि भी बजी और पुष्प-वर्षा भी हुई!

शिष्य पूछने लगे 'गजब हो गया! हमारे गुरुजी की तो गति हुई नहीं और इस कीड़े की गति हो गई।' महात्मा कहने लगे 'ये तुम्हारे गुरुजी ही थे।' उन्होंने पूछा 'ऐसा कैसे हो गया?' उन्होंने बताया 'मुझे पता था कि वे पारंगत थे, इसलिए उनकी बात गड़बड़ हो नहीं सकती, सत्यसंकल्प थे, जो संकल्प किया, वह सच्चा ही होगा। किन्तु कोई विघ्न बीच में आ गया। मैंने लेटकर देखा, चारों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तरफ आँखें अच्छी तरह घुमाईं तो बस यह एक हण्डी ही वहाँ थी। जिसके सारे संकल्प मिटे होते हैं, उसके भी चित्त में किसी निमित्त से संकल्प सामने आ जाता है। अन्तिम क्षण में बजाय आत्मसंकल्प करने के, उनका संकल्प हो गया कि इसके अन्दर बेर है। बस, वह बेर खाने की वृत्ति बनी और उनका शरीर छूट गया। और तो कोई कर्म फल देने वाला नहीं था, सत्यसंकल्प थे ही। बेर का ख्याल आया तो उनको बेर के अन्दर जाना पड़ा। पर आज भी उनका ध्यान तो वैसा ही था। समझ गये थे कि अन्तिम समय में वृत्ति गड़बड़ा गई, बेर में चली गई। इसलिए जैसे ही मैंने कीड़ा-देह को खतम करके गंगाजी में डाला, चूँकि वे सत्यसंकल्प थे, तो उनका संकल्प था 'मैं जब जाऊँगा तो दुन्दुभि बजेगी और पुष्पवृष्टि होगी', तो ऐसा ही हुआ।'

इन मन्त्रों के अन्दर सबसे पहले बतलाया कि इस सारी उपासना का आधार क्या है। जो कुछ भी परिदृश्यमान जगत् है, वह ब्रह्मस्वरूप है, पहले उसका निश्चय करना है। कैसे निश्चय करना है? सबके हृदय में देखो, सब चीज़ों में देखो। चित् के अनुवेध को चेतन के अंत:करण में देखो, आनन्द के अनुवेध को शान्ताकार वृत्ति में देखो। सत् का अनुवेध सर्वत्र देखो। इस प्रकार से वह सच्चिदानन्दरूप सर्व है, ऐसा निश्चय करो। जब ऐसा निश्चय करोगे कि सब कुछ सच्चिदानन्द रूप है, वही सब रूपों में भास रहा है, तो कोई उद्वेग नहीं रह जायेगा, राग-द्वेष नहीं रह जायेंगे। चीज़ों में भेद ही राग-द्वेष को पैदा करता है। जब सब कुछ ब्रह्मरूप है, तब किसे छोड़ूँ और किसे ग्रहण करने जाऊँ! राग-द्वेषरहित होने से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शान्त हो जायेगा। ऐसा शान्त व्यक्ति ही जो उपासना यहाँ बताई है, वह कर सकता है। उपासना का स्वरूप बतलाया 'क्रतु करो, निश्चय करो।' शास्त्र में जो बात कही गई है, उसको समझो, वह क्यों ठीक है, इस बात को युक्ति के द्वारा विचार करो, तब यह अनुभव करो कि सचमुच में ऐसा ही है। जब यह निश्चय हो जाये, तब पहले सब चीज़ों में सच्चिदानन्द-अनुवेध देखो, फिर राग-द्वेषरहित बनो।

किस विषय का निश्चय करना है? कहा मन-प्राण उपाधियोंवाला जो भारूप है, प्रकाशरूप है उसका। वही सब कुछ करनेवाला है। इन गुणों वाले परमात्मा की उपासना करो। सब कुछ करनेवाला वह ईश्वर, प्रत्येक अंतःकरण को प्रकाशित करनेवाला वह ईश्वर, प्राण-इन्द्रियों का व्यवहार करवानेवाला परमेश्वर है। सारे कर्मों को करनेवाला, सारी इच्छाओं को करनेवाला, सारे रसों को लेनेवाला, सारे गंन्धों को लेनेवाला वही है। भगवान् ने गीता में जैसा स्पष्ट किया तद्नुसार 'सर्वकाम' में कौन-सी कामना परमात्मा का रूप है? धर्माविरुद्ध। दुर्विचार, बुरी कामनाएँ उत्पन्न होती हैं, अज्ञान के कारण। पाप का कारण अज्ञान होता है। परमात्मा में अज्ञान का स्पर्श न होने से उसमें ये दुःखवाली चीज़ें हो ही नहीं सकती, दुःख का सम्बन्ध परमेश्वर से हो ही नहीं सकता। अतः परमेश्वर के चिन्तन में जो सर्वकर्मा, सर्वकाम, सर्वरस, सर्वगन्ध आदि कहा, वहाँ यह सर्वत्र समझना कि अज्ञान से होने वाले नहीं।

परमेश्वर के ध्येय रूप को बतलाकर ध्यान कहाँ करना है, यह समझाया : हृदय के अन्दर करना है। वह अतिसूक्ष्म सरसों के दाने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से भी छोटा है। अतिसूक्ष्म जो हृदय-आकाश है, उसके अन्दर उस परमेश्वर का ध्यान करना है। यद्यपि वह छोटी जगह में है, तथापि बड़े-से-बड़ा है, क्योंकि सारा ब्रह्माण्ड उसी के अन्दर स्थित है! जैसे भगवान् शंकर के शरीर में छोटे से हिस्से में कालिमा लगी हुई है, ऐसे ही परब्रह्म परमात्मा में छोटी-सी अविद्या की कालिमा है, बाकी सब शुद्ध ही है। सब उपाधियों से युक्त का ध्यान करना है। ऐसा नहीं समझ लेना कि उपाधि को छोड़कर के ध्येय को बतलाया। यदि यह उपासना नहीं ज्ञान का विषय होता तो ऐसा कह सकते थे, क्योंकि ज्ञान तो यहीं हो जाता है। परन्तु यह उपासना का प्रसंग है। इस उपासना के द्वारा तुम सत्यसंकल्प आदि हो जाते हो।

उस प्रभाव से भोग तो तुम कर लेते हो परन्तु परमेश्वर के अन्दर जो सृष्टि, स्थिति, लय, फलप्रदान, तिरोधान आदि हैं, वे उसी में रहते हैं, उपासक के अन्दर नहीं आ सकते। भगवान् वेदव्यास कहते हैं 'जगद्व्यापारवर्जम् प्रकरणाद्, असन्निहितत्वाच्च' (४.४.१७) सृष्टि करना, स्थिति करना, लय करना, अनुग्रह करना, तिरोधान करना, कर्मफल देना ये सब जो ईश्वरकृत्य बतलाये हैं, ये जिसका कभी मन से स्पर्श नहीं हुआ, उस परमेश्वर के ही हैं। हेतु दिया 'प्रकरणात्'–व्यास जी कहते हैं कि शास्त्र में तब की सृष्टि बताई है, जब कोई मन था नहीं। महाप्रलय के अन्दर तो मन था ही नहीं, उस समय सृष्टि करनेवाला जीव हो ही नहीं सकता। मन बनने से पूर्व जीव-सृष्टि का सन्दर्भ असम्भव है। प्रकरण ईश्वर का है, वहाँ जीव 'असंनिहित' अर्थात् उसकी प्राप्ति नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भोगों के लिए उपासक सत्यसंकल्प हो जाते हैं। भोग-सामग्री के लिए तो विरोध नहीं होता, हमारे संकल्प से हमें आम खाने को मिल गया, तुम्हारे संकल्प से तुम्हें आम खाने को मिल गया! लेकिन सृष्टि आदि में अनेक अधिकृत हों तो असम्भव स्थिति होगी। इसीलिए यहाँ इस उपासना में कहीं भी सृष्टि-स्थिति-लय का नाम लिया ही नहीं है। जो यहाँ कहे गये हैं वे सारे गुण प्रकट हो जाते हैं, उनसे अन्य जो ईश्वर के गुण हैं, वे ईश्वर के ही हैं।

यह उपासना का प्रकरण है। महर्षि शाण्डिल्य ने इस प्रसंग का प्रतिपादन किया इसलिए इसे **शाण्डिल्य विद्या** कहते हैं। परमात्मा का इस प्रकार से अनुभव करके आप लोग कल्याण के भागी बनें।

❖

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitlzagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi